हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna • Quarterly Magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada
वर्ष १३, अंक ५२, अक्टूबर २०११ • Year 13, Issue 52, October 2011

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

इस अंक में

सम्पादकीय		03
सम्वाद.....		
व्यंग्य सामाजिक ...	● पंकज सुबीर	05
जनमेजय सामाजिक...	● डॉ. मनोज श्रीवास्तव	11
प्रेम जनमेजय : औरों	● प्रदीप पंत	15
नवल-प्रेम एक...	● डॉ. हरीश नवल	17
मेरे पालनहार ...	● सूरज प्रकाश	21
प्रेम डियर! नायलॉन...	● डॉ. अशोक चक्रधर	25
व्यंग्य को विधा के...	● मनोहर पुरी	29
अपनी अकृत्रिमता में ...	● सूर्यबाला	31
विसंगतियों का...	● तरसेम गुजराल	33
प्रेम जनमेजय-	● यज्ञ शर्मा	37
प्रेम जनमेजय और मैं...	● नरेन्द्र कोहली	39
प्रेम जनमेजय से ...	● उषा राजे सक्सेना	47
बिना स्कैंडल के चर्चा...	● अनिल जोशी	50
'सरस्वती' जैसी महान...	● गिरीश पंकज	52
मुझे अपनी इस मित्रता...	● ज्ञान चतुर्वेदी	54
सरापा व्यंग्यकार है...	● महेश दर्पण	57
व्यंग्य के दिशायुक्त...	● डॉ. अजय अनुरागी	59
प्रेम जनमेजय के दो...	● प्रताप सहगल	65
डॉ. प्रेम जनमेजय के...	● प्रो. हरि शंकर आदेश	69
प्रेम जनमेजय...	● अविनाश वाचस्पति	71
एक आत्मीय...	● राधेश्याम तिवारी	72
उनके व्यंग्य ...	● डॉ. अजय नावरिया	74
व्यंग्य के फ्रेम में...	● डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	77
व्यंग्य अपने लक्ष्य...	● लालित्य ललित	79
कविताएं.....		
व्यंग्य और 'प्रेम'	● अमित कुमार सिंह	36
अन्य		
आखिरी पन्ना	● *सुधा ओम ढींगरा*	84

प्रेम जनमेजय विशेषांक

''हिन्दी चेतना'' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनायें प्रकाशन हेतु हमें भेजें। सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि ''हिन्दी चेतना'' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन। एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकें। इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें। अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें।

रचनाएँ भेजते हुये निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

1. हिन्दी चेतना अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर तथा जनवरी में प्रकाशित होगी।
2. प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
3. पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जायेंगी।
4. रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
5. प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा।
6. पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

•

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक

श्री श्याम त्रिपाठी, कैनेडा

•

सम्पादक

डॉ. सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

•

सहयोगी सम्पादक

डॉ. निर्मला आदेश, कैनेडा
अभिनव शुक्ल, अमेरिका
डॉ. अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
आत्माराम शर्मा, भारत
अमित कुमार सिंह, भारत

•

परामर्श मंडल

पद्मश्री विजय चोपड़ा, भारत
मुख्य सम्पादक, पंजाब केसरी पत्र समूह
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
सम्पादक, अभिव्यक्ति, अनुभूति
तेजेन्द्र शर्मा, लंदन
महासचिव, कथा यू.के.
विजया माथुर, कैनेडा
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्री नाथ द्विवेदी, कैनेडा
डॉ. कमल किशोर गोयनका, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
डायरेक्टर, रेडियो सबरंग,
अध्यक्ष, वैश्विक समुदाय रेडियो प्रसारण माध्यम

•

विदेश प्रतिनिधि

आकांक्षा यादव, अंडमान निकोबार
मुर्तजा शरीफ, पाकिस्तान
राजेश डागा, ओमान
दीपक मशाल, यू.के.
उदित तिवारी, भारत
डॉ. अंजना संधीर, भारत
विनोद चन्द्र पाण्डेय, भारत

•

सहयोगी

सुषमा शर्मा, आलोक गुप्ता, भारत
अदिति मजूमदार, डैनी कावल, कैनेडा

'व्यंग्य-यात्रा' पर चले मन में भर विश्वास
भाषा को नित दे रहे नए-नए आभास
नए-नए आभास सत्य का बिगुल बजाया
'गगनांचल' पर इन्द्रधनुष का चित्र सजाया
कभी न कम हो जीवन में आनंद मात्रा
बढ़े लक्ष्य की ओर अनवरत 'व्यंग्य-यात्रा'।

– अभिनव शुक्ल

Hindi Chetna is a literay magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. Shiam Tripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475 - 7165 Fax : (905) 475 - 8667
e-mail : hindicehetna@yahoo.ca

'हिंदी चेतना' की सर्वदा यही अभिलाषा रही है कि हम उत्तम और रुचिकर साहित्य अपने पाठकों तक पहुँचाएँ और देश-विदेश के उन साहित्य रत्नों से परिचित कराएं, जिन्होंने अपने जीवन को साहित्य के लिए समर्पित कर दिया है। इस विषय पर हमारी टीम बहुत चिन्तन और मनन करती है, तभी हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच पाते हैं। कुछ ही दिनों में 'हिंदी चेतना' का विशेषांक आपके समक्ष होगा। इस बार हमने हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय जी पर केन्द्रित विशेषांक निकाला है। प्रेम जी के इतने अधिक प्रेमी होंगे इसका मुझे ज़रा भी अनुमान नहीं था। व्यंग्य विधा के इतने सिपाही होंगें और दिल खोल कर लिखेंगे कि मैं चकित रह गया। अब हमारे सामने समस्या यह आई कि इतनी सामग्री कैसे आयोजित करें क्योंकि हमारी भी कुछ सीमाएं हैं। मन और विचारों के विमर्श तथा कई और तरह के मंथन उपरांत (जिसमें आर्थिक सोच भी थी कि पृष्ठ संख्या अधिक न हो, अमेरिका, कैनेडा के अतिरिक्त दूसरे देशों में भेजने के साथ-साथ इस बार तक़रीबन 500 प्रतियाँ भारत भेजी जानी हैं) हमने यही निर्णय लिया कि हम लेखक का नाम नहीं, केवल रचनाएँ ही देखेंगे। निर्णय और भी कठिन हो गया, हम कौन-सा लेख छोड़ें और किसका लगाएँ क्योंकि हर आलेख मौलिक, रोचक और सारगर्भित था और हम किसी के साथ अन्याय नहीं कर सकते थे। मेरे लिए तो हर लेखक अकबर के नव रत्नों के समान है। हर लेखक का अपना अंदाज़ है। मैं सभी व्यंग्य लेखकों को साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने अपनी लेखिनी से प्रेम जनमेजय विशेषांक और 'हिंदी चेतना' को गौरवान्वित किया।

आज देश में भ्रष्टाचार के विरुद्ध आदरणीय अन्ना हजारे ने जो आन्दोलन प्रारम्भ किया है और जिनके साथ भारत का अधिकतर वर्ग है, ठीक उसी प्रकार प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य के माध्यम से हिंदी साहित्य में अन्ना हजारे की भूमिका निभाई हैं। हिंदी साहित्य में व्यंग्य को जो पराकाष्ठा प्राप्त हुई है, वह प्रेम जी का ही सत्याग्रह है। शायद प्रेम जी का जन्म व्यंग्य के लिए ही हुआ है। आज भारत जिन परिस्थितियों से गुज़र रहा है उन्हें ध्यान में रखते हुए यह विशेषांक अत्यंत सार्थक सिद्ध होगा, ऐसा मेरा मत है।

निःसंदेह इस विशेषांक के विस्तार के कारण हम अपने नियमित स्तम्भ नहीं लगा रहे हैं जैसे कि कविता, कहानी, पुस्तक समीक्षा, पत्र, हिंदी की सूचनाएँ, पुस्तकें व हमारा नया स्तम्भ 'अधेड़ उम्र में थामी कलम' आदि। पाठको! आपको निराश हम कभी नहीं करना चाहते पर इस विशेषांक के माध्यम से आपको जो नया पढ़ने को मिलेगा उसे ध्यान में रखते हुए टीम ने यही निर्णय लिया कि ये स्तंभ आगामी अंकों में नियमित आते रहेंगे। किसी भी लेख को टीम छोड़ना नहीं चाहती थी, हालाँकि कई लेख विवशतावश सधन्यवाद लौटने भी पड़े। पत्रिका के पृष्ठों पर अंतिम दृष्टि डालते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हुआ कि 'हिंदी चेतना' की टीम ने यह निर्णय लिया। मुझे आशा है कि पाठकगण हमारे इस निर्णय और 'प्रेम जनमेजय विशेषांक' का स्वागत करेंगे।

अंत में मैं 'हिंदी चेतना' परिवार की ओर से उन सभी लेखकों, पाठकों और विज्ञापनदाताओं का हृदय से आभारी हूँ जो वर्षों से हिन्दी चेतना का साथ दे रहे हैं और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनका सहयोग मिलता रहेगा। दीपावली की शुभकामनाएँ, नया वर्ष सबके लिए मंगलकारी और कल्याणकारी हो।

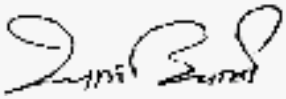

आपका
श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://KathaChakra.blogspot.com

घर बैठे पुस्तकें प्राप्त करें :
http://www.pustak.org

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com
or http://vibhom.com/
hindi%20chetna.hotmail

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

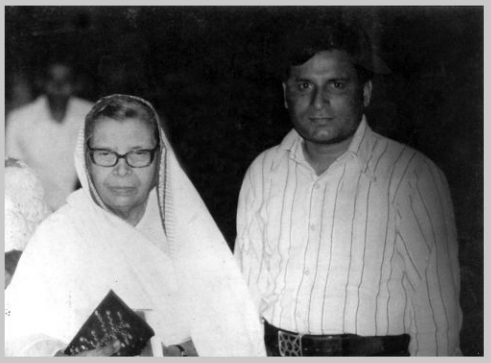

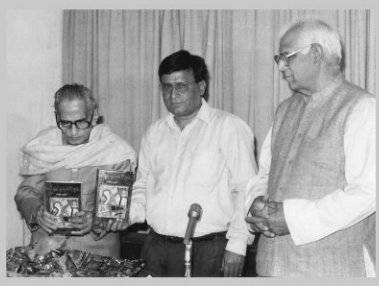

व्यंग्य

प्रेम जनमेजय विशेषांक

सामाजिक आवश्यकतानुसार अपनी भूमिका के साथ उपस्थित होता रहा है...

युवा कथाकार, उपन्यासकार पंकज सुबीर एक व्यंग्यकार भी हैं और अब तक 50 से अधिक व्यंग्य लिख चुके हैं। 'हिन्दी चेतना' के सम्पादकीय मंडल के अनुरोध पर उन्होंने डॉ. प्रेम जनमेजय से व्यंग्य विधा और उससे जुड़े कई मुद्दों पर बातचीत की।

पंकज सुबीर : प्रेम जी व्यंग्य एक ऐसी विधा है जिसको लगातार पिछले कुछ सालों से उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। क्या इसके पीछे कहीं न कहीं ये कारण है कि अब समाज में व्यंग्य को सहने की क्षमता नहीं रह गई है या कुछ और कारण है। इसी के साथ एक बात जोड़ता हूं- हास्य और व्यंग्य ये दोनों विधाएं एक दूसरे की पूरक हैं। लेकिन आपके विचार में किसी व्यंग्य लेख में हास्य का पुट कितना होना आवश्यक है, या आवश्यक है भी अथवा नहीं।

प्रेम जनमेजय : सुबीर जी धन्यवाद कि आपने अपने सवालों का आरंभ सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ, व्यंग्य को विधा कहकर किया। इसका अर्थ यह है कि आप व्यंग्य के स्वरूप से परिचित हैं अन्यथा अधिकांशत: मुझे व्यंग्य के अनपढ़ प्रश्नकर्ताओं से सामना करना पड़ता है। व्यंग्य को लेकर ऐसे सवाल केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं पाश्चात्य साहित्य में भी उभरे हैं। ऐसा नहीं है कि केवल हिन्दी साहित्य में ही व्यंग्य को अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा हो, पाश्चात्य साहित्य में भी व्यंग्य के स्वतंत्र रूप को बहुत किंतु परंतु के साथ 'अंतत:' स्वीकार किया गया। अठाहरवीं शताब्दी में, जब पाश्चात्य साहित्य में कामदी (Comedy) पर चर्चा का बाजार गर्म था, व्यंग्य की उपेक्षा ही की गई। व्यंग्य को कामदी के व्यापक अर्थ में मिलाकर देखा गया। परंतु धीरे-धीरे व्यंग्य शब्द, व्यंग्य की ध्वनि, और रचना के व्यंग्यात्मक रूप के अंतर स्पष्ट हुए। रचना में व्यंग्य और व्यंग्य रचना के अंतर को स्वीकार किया गया। रोनॉल्ड पॉलसन इस बात को अपनी पुस्तक Satire में स्वीकार करते हुए लिखते हैं- in the 1940s and 1950s attempted to distinguish 'Satire' a form from satiric. संस्कृत साहित्य में तो व्यंग्य ध्वनि के रूप में ही दिखाई देता है। वाच्य से अधिक रमणीय को व्यंग्यात्मक ध्वनि कहा गया। बाद में इसे हास्य के साथ जोड़कर देखा गया।

हिन्दी व्यंग्य पाठकों की नहीं आलोचकों की उपेक्षा का शिकार रहा है। साहित्य से दूर होते पाठकों को इसी ने साहित्य से जोड़ा है। इस विधा को तो पाठकों का बहुत स्नेह मिला है। ये दीगर बात है कि व्यंग्य रचनाकारों ने उस स्नेह की रक्षा नहीं की। मुझे लगता है कि इस समय व्यंग्य की अधिक आवश्यकता है। आज राजनीतिक ही नहीं सामाजिक विसंगतियां अधिक चुनौतियां प्रस्तुत कर रही हैं। एक भयंकर षड्यंत्र चल रहा है और पूंजीवाद हमारा स्वामी बनने के लिए अनेक प्रकार 'आयोजन' कर रहा है। कभी अचानक हमारे देश की दो एक सुंदरियों को विश्व सुंदरी बनाकर यहां अपना बाजार फैला लिया जाता है और कभी आपकी भाषा को सर्वप्रिय बनाने के छद्म में आपकी भाषा छीनी जाती है। वैश्वीकरण और विश्वव्यापार की स्थितियां सभी को प्रभावित कर रही हैं। एक समय था बीस कोस पर भाषा बदल जाती थी और तीस कोस पर पानी बदल जाता था। आजकल सब जगह एक-सा ही पानी मिलता है- बोतल में बंद तथाकथित मिनरल वॉटर। दिल्ली को उसकी गलियां छोड़कर चली गई हैं और उनका स्थान मॉल-संस्कृति ने ले लिया है। पहले हर शहर की एक पहचान होती थी जो उसकी भाषा, संस्कृति, खान-पान तथा गलियों- कूचों से जुड़ी होती थी, पर अब वो धीरे-धीरे गायब होती जा रही हैं। केवल शहरों का चेहरा ही नहीं बदल रहा है, व्यक्ति के अंदर का चेहरा भी बदल रहा है।

नव उदारवाद अधिक आर्थिक अर्जन की जठराग्नि में निरंतर घी डालकर उसे धधका रहा है। वर्तमान व्यवस्था में पैसे की ताकत ने समाज को विवश कर दिया है कि उसका एकमात्र लक्ष्य, जैसे-तैसे अधिक धन का उपार्जन रह जाए। ये पैसे की ताकत ही है कि पचास रुपए की चोरी करने वाला पुलिस के डंडे खाता है, जेल जाता है और पचासों करोड़ की चोरी करने वाला टीवी चेनलों में हीरो बनता है। इतने आर्थिक घोटाले हुए हैं पर कितने को हमारी न्यायव्यवस्था ने सजा के योग्य समझा ये किसी से छुपा नहीं है। हमारी जनता की स्मृति बहुत

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

परसाई मेरे पसंदीदा रचनाकार हैं और अनेक अर्थों में मेरे आदर्श भी। परंतु इसका अर्थ ये नहीं है कि अन्य रचनाकार कमतर हैं। मेरे सामने तो हिन्दी व्यंग्य का एक कोलॉज है जिसमें कबीर, भारतेंदु, परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली आदि आते हैं। परसाई भी नहीं चाहते थे कि कोई भी रचनाकार अपने आपको किसी सीमा में बांधकर सीमित कर ले।

क्षीण है। आज नंगई की मार्केटिंग का धंधा जोरों पर चल रहा है और साहित्य में भी ऐसे धंधेबाजों का समुचित विकास हो रहा है। कुटिल-खल-कामी बनने का बाजार गर्म है। पिछले दस वर्षों में पूँजी के बढ़ते प्रभाव, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों की 'संस्कृति' के भारतीय परिवेश में चमकदार प्रवेश ने हमारी मौलिकता का हनन किया है। अचानक दूसरों का कबाड़ हमारी सुंदरता और हमारी सुंदरता दूसरों का कबाड़ बन रही है। सौंदर्यीकरण के नाम पर चाहे वो भगवान का हो या शहर का, मूल समस्याओं को दरकिनार किया जा रहा है।

आज का समय विसंगतियों से भरा हुआ है और चकाचौंध में सामाजिक सरोकार तथा मानवीय मूल्य धुंधलाते जा रहे हैं। अस्मिता पर लुके-छिपे हमले हो रहे हैं। ये सब ईमानदार मस्तिष्क पर निरंतर अपने प्रभाव छोड़ते रहते हैं। मुझे लगता है कि जिस तरह से पिछले डेढ़ दशक में पूंजी के प्रभाव से भारतीय समाज में विसंगतियां बढ़ी हैं तथा वर्तमान व्यवस्था आपको हताश-निराश एवं अवसाद में अकेला महसूसने को विवश कर रही है, ऐसे में इन सबसे लड़ने का एक मात्र हथियार व्यंग्य ही है। व्यंग्य के उपमान हमें बदलने होंगे, वे मैले हो चुके हैं। हमें एक नई दृष्टि के साथ सामयिक विसंगतियों को देखना होगा।

जहां तक हास्य और व्यंग्य के मिश्रण का प्रश्न है मैं आपकी बात से सहमत नहीं हो पा रहा हूं कि ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी साहित्य में अधिकांशत: व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़कर देखने की प्रवृत्ति है। हास्य और व्यंग्य को देखने का यह एक बहुत ही सरलीकृत रूप है। दोनों का आधार विसंगति है परंतु प्रभाव और प्रक्रिया भिन्न है। दोनों की विधागत आवश्यकताएं एवं 'टूल' भिन्न हैं। व्यंग्य -चेतना मनुष्य के पूर्ण बौद्धिक विकास का शंखनाद है। आदि मानवीय मस्तिष्क ने जब पशुत्व से सभ्य, सुसंस्कृत विवेकशील मस्तिष्क तक की यात्रा तय कर ली तो व्यंग्य की उपस्थिति दर्ज हुई। व्यंग्य मूलत: सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा है। यह एक सायास अभिव्यक्ति है। अपने आदिकाल से मानव-मन को विसंगतियों पर हंसी आती थी पर धीरे-धीरे विसंगतियां उसे विद्वेलित करने लगीं और उसके विवेकशील मस्तिष्क ने व्यंग्य का हथियार के रूप में प्रयोग किया। हास्य एक सहज स्वाभाविक मनोभावना है, जबकि व्यंग्य बौद्धिक प्रक्रिया का सायास प्रयास। हास्य में निश्छलता, मृदुलता, सहजता आदि आपेक्षित है जबकि व्यंग्य अपने स्वभाव में आक्रामक, सायास एवं बौद्धिक आधार ग्रहण किए हुए होता है। व्यंग्य के प्रयोग में बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है। मेरा मानना है कि व्यंग्य को हास्य की बैसाखी की आवश्यकता नहीं है। व्यंग्य की सामयिक स्थिति यह हैं कि वह समकालीन परिस्थितियों तथा अपनी प्रकृति के कारण यह एक लोकप्रिय विधा है। पर अधिक लोकप्रियता के मोह में हास्य का हास्यास्पद मिश्रण किया जाता है। आवश्यकता है कि व्यंग्य की गंभीरता को बनाए रखने के लिए हास्य का हास्यास्पद मिश्रण न किया जाए तथा व्यंग्य को सुशिक्षित मस्तिष्क की विधा ही रहने दिया जाए। व्यंग्य और हास्य तथा हास्य और भौंडे हास्य के अंतर को समझा जाए। हास्य रचना को अधिक संप्रेषणीय बनाता है पर इसका मोह व्यंग्य की ताकत को कुंद भी कर देता है।

पंकज सुबीर : हास्य की जिस प्रकार की समृद्ध परंपरा उर्दू साहित्य में देखने को मिलती है उस प्रकार का कुछ हिन्दी में नहीं देखने में आता। हिन्दी साहित्य ने हास्य से हमेशा एक दूरी बनाकर रखी या यूं कहें कि उससे परहेज ही किया। इसे आप किस रूप में लेते हैं।

प्रेम जनमेजय : आपका कहना बहुत सीमा तक सही है। पर आप ये भी देखें कि हास्य के मोह में फंसा उर्दू साहित्य प्रखर व्यंग्य रचनाएं नहीं प्रस्तुत कर पाया। उर्दू व्यंग्य हास्य की बहुलता के नीचे दबा हुआ है। हिन्दी साहित्य में एक बहुत ही मज़ेदार स्थिति है- हास्य, कविताओं, विशेषत: मंचित कविताओं के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जबकि व्यंग्य, गद्य में अपनी सत्ता स्थापित किए हुए है। काव्य में आप परसाई, जोशी, शुक्ल या त्यागी की टक्कर का रचानाकार नहीं पाते हैं। यहां तक कि गोपालप्रसाद व्यास ने हास्यजनक कविताएं लिखी हैं पर जब वे गद्य की ओर रुख करते हैं तो उनकी रचनाओं में व्यंग्य प्रमुख हो जाता है।

हिन्दी में भद्र हास्य की बहुत कमी है। ऐसा नहीं है कि हास्य का रेगिस्तान विद्यमान हो। अनेक गद्य व्यंग्य ऐसे हैं जो स्वस्थ हास्य की सृष्टि करते हैं और उर्दू की किसी भी श्रेष्ठ रचना से टक्कर लेते हैं।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

पंकज सुबीर : इन दिनों युवा कहानीकार जो कहानियां लिख रहे हैं उनमें व्यंग्य इस प्रकार से अंतर्निहित होता है कि समझना मुश्किल होता है कि ये कहानी है अथवा व्यंग्य लेख। ये व्यंग्य के हित में है अथवा इससे व्यंग्य का एक विधा के रूप में नुकसान होगा।

प्रेम जनमेजय : सुबीर जी, आपको रचना में व्यंग्य, व्यंग्यात्मक टिप्पणी और व्यंग्य रचना के अंतर को समझना होगा। समाचार-पत्रों अथवा कुछ पत्रिकाओं में अनेक नियमित स्तंभों के माध्यम से जो कुछ प्रकाशित हो रहा है वह instant literature होता है। किसी भी घटना या स्थिति पर तत्काल प्रकट की गयी व्यंग्यात्मक टिप्पणी होती है। बहुत कम हैं जो रचना के रूप में अपना स्वरूप ग्रहण कर पाते हैं और विसंगति यह है कि जब इनके रचनाकार इनको संकलन के रूप में प्रकाशित करवाते हैं तो इन रचनाओं का संपादन नहीं करते हैं। संकलन बहुत आगे तक जाने वाली कृति होता है। साहित्य का इतिहास अवश्य होता है और साहित्य रचनात्मक इतिहास भी प्रस्तुत करता है परंतु साहित्य कोरा इतिहास नहीं होता है। यदि कोई लेखक, विषय की मांग का सम्मान करते हुए रचना में व्यंग्य का प्रयोग करता है तो वह स्वागत योग्य है और व्यंग्य साहित्य के हित में ही है।

पंकज सुबीर : अपने समय के दो बड़े व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी और शरद जोशी जी का लेखन समकालीन लेखन है, लेकिन आज का जो व्यंग्य लेखन है वो केवल अपने समय पर ही केंद्रित है, उसे समकालीन नहीं कहा जा सकता। आप इस बात से कितना सहमत हैं?

प्रेम जनमेजय : अधिकांशतः व्यंग्यकार समकालीन विसंगतियों से ही प्रेरित होता है। मेरे विचार से तो लगभग सभी रचनाकार समकालीन परिस्थितियों से ही प्रेरित होते हैं, इसके बाद वे तय करते हैं कि उसे किस रूप में प्रस्तुत करें। पुराकथाओं पर आधारित लेखन की रचना करने वाले रचनाकार भी उनकी प्रासंगिकता आज में ही ढूँढ़ते हैं। सैकड़ों रामकथाएं लिखी गईं और सभी ने अपने आज को कल के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। व्यंग्यकार भी अतीत के स्वरूप को अपनी रचना का आधार बनाता है। वे मिथक का प्रयोग करता है, पर वह मिथक की रक्षा नहीं करता है और न ही उसकी पुर्नव्याख्या करता है अपितु उसे तोड़ता है। वह तो मिथक का प्रयोग अपनी रचना के व्यंग्य को अनेक अर्थ देने के लिए करता है। आज भी मिथकों को तोड़ा जा रहा है। ज्ञान चतुर्वेदी ने 'मरीचिका' में एवं विष्णु नागर ने 'स्वर्ग में आदमी' में इसका प्रयोग किया है।

शरद जोशी, मनोहरश्याम जोशी, परसाई आदि के लेखन का मूल्यांकन हो गया है और उनका पूरा साहित्य हमारे समक्ष है। जबकि आज के रचनाकार अभी लिख रहे हैं। मेरा मानना है कि आज के भी अनेक रचनाकार सार्थक व्यंग्य की परंपरा में गुणात्मक वृद्धि कर रहे हैं। आज का रचनाकार भी उतना ही जागरूक है जितना कि भूतपूर्व रचनाकार थे।

पंकज सुबीर : एक व्यंग्यकार के रूप में आपके पसंदीदा व्यंग्य लेखक कौन- कौन हैं तथा भाषा, शैली और शिल्प के स्तर पर आप उनमें से किसको सर्वश्रेष्ठ पाते हैं?

प्रेम जनमेजय : परसाई मेरे पसंदीदा रचनाकार हैं और अनेक अर्थों में मेरे आदर्श भी। परंतु इसका अर्थ ये नहीं है कि अन्य रचनाकार कमतर हैं। मेरे सामने तो हिन्दी व्यंग्य का एक कोलॉज है जिसमें कबीर, भारतेंदु, परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली आदि आते हैं। परसाई भी नहीं चाहते थे कि कोई भी रचनाकार अपने आपको किसी सीमा में बांधकर सीमित कर ले।

पंकज सुबीर : एक व्यंग्यकार के लिये तीनों कालखंडों पर नज़र रखनी आवश्यक होती है, भूत, भविष्य तथा वर्तमान। यदि वो ऐसा नहीं करता तो उसका लेखन कमज़ोर हो जाता है। एक व्यंग्यकार के रूप में आप इस बात से कितना सहमत होते हैं।

प्रेम जनमेजय : सुबीर जी, मैं आपकी बात से पूर्णतः सहमत हूं। इस प्रश्न के माध्यम से आपने एक बहुत ही महत्वपूर्ण आवश्यकता की ओर युवा व्यंग्यकारों का ध्यान आकर्षित कर दिया है। हमारे अधिकांश युवा व्यंग्यकार कोल्हू के बैल की तरह रचना की ज़मीन पर एक बंधे बंधाए घेरे में ही घूमने को रचनाकर्म मान रहे हैं। व्यंग्यकार साहित्यकार से अलग कोई विशिष्ट वस्तु नहीं है। उसके सामाजिक सरोकार भी वही हैं जो एक साहित्यकार के हैं। मेरा मानना है कि साहित्यकार का दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए। लीक- लीक कौन चलता है आप जानते ही हैं।

पंकज सुबीर : इन दिनों ज्यादातर व्यंग्य राजनीति के आस-पास घूमते हैं, समाज की विसंगतियों और विद्रूपताओं की ओर जाने का प्रयास नहीं करते, इसके पीछे आप क्या खास कारण समझते हैं?

प्रेम जनमेजय : इसका कारण है स्तंभ लेखन और हमारे समाज का दृष्टिकोण। आजकल हमारे नायक कौन हैं या फिर किन्हें बनाया जा रहा है, यदि आप इस पर ध्यान देंगे तो आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। सुबीर जी, जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि आज आवश्यकता है परंपरागत विषयों से हटकर नई विसंगतियों पर प्रहार करने की। हमारे समाचार-पत्र, टीवी चैनल आदि राजनेताओं की गतिविधियों के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। बहुत कम हैं जो सामाजिक विषयों पर आपका ध्यान आकार्षित करते हैं। जो बिक सकता है, वही चर्चा में है और दूसरे सत्ताकर्मियों से आम जनता का दिन-रात का वास्ता है। स्वतंत्रता के बाद से हम उनकी विसंगतियों को देख रहे हैं और कुढ़ रहे हैं। आजकल अनेक नेता मनोरंजन के पात्र भी बनकर सामने आ रहे हैं। समाचार में रहने के लिए वे किसी भी तरह का सर्कस कर लेते हैं। वे चटपटे स्वाद के आलंबन हैं। इसलिए जब भी कुछ पाठकों के सामने कुछ भी चटपटा प्रस्तुत करना होता है तो ये आलंबन बन जाते हैं और उन्हें उसी रूप में अधिकांश रचनाकार प्रस्तुत करते हैं। जबकि स्थिति

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

बहुत ही भयानक, विचारणीय और चिंतनीय है। क्या आप ये नहीं देख रहे हैं, जितने भी घोटाले हो जाएं, जितने भी सत्ताकर्मी विभिन्न मुकदमों में पकड़े गए हों, मुकदमे चले हों पर निष्कर्ष क्या निकला है? ताज़ा किस्से पर गर्मागर्म बहस होती है, चेनल और अखबार जुगाली करते हैं तथा धीरे-धीरे समय का अंतराल सब लील जाता है। ये सब आई वॉश है। आपको प्रजातंत्र के नाम पर तथा प्रजातंत्र ज़िंदा है, ये अहसास दिलाने के लिए, अनेक नौटंकियां खेली जाती हैं, आंदोलन करवाए जाते हैं, परंतु नतीजा- सांपनाथ के स्थान पर नागनाथ। राजनैतिक विसंगतियां भी बहुत विषम हैं पर उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। आपका कहना सही है कि राजनैतिक विसंगतियों का इतना पिष्ट पेषण न किया जाए कि व्यंग्य अभिधा की शक्ल ग्रहण कर ले।

पंकज सुबीर : एक व्यंग्यकार के रूप में नहीं बल्कि एक संपादक के रूप में आप 'व्यंग्य' को किस प्रकार से परिभाषित करेंगे तथा उसके किन आवश्यक तत्वों की व्याख्या करना चाहेंगे।

प्रेम जनमेजय : दोनों ही रूपों में व्यंग्य की परिभाषा तो एक ही होगी। पत्रिका में मेरी जवाबदेही एक संपादक के रूप में है, जबकि व्यंग्यकार के रूप में एक लेखक की। व्यंग्यकार के रूप में तो मैं अपनी बात को कहता हूं और पाठकों के दरबार में निर्णय के लिए छोड़ देता हूं। मेरा कर्म रचना लिखने के बाद समाप्त हो जाता है। जबकि एक संपादक के रूप में दूसरे की रचना को अपने दृष्टिकोण से भी अलग देख पाने की दृष्टि चाहिए। अपनी रचना के प्रति आपका मोह हो सकता है, आप निर्मम भी कम होते हैं पर संपादक के रूप में आप अधिक निर्मम हो जाते हैं। आपकी व्यंग्य के बारे में मान्यताएं कसौटी के रूप में प्रस्तुत हो जाती हैं। व्यंग्य के संबंध में मैंने विचार आरंभ में व्यक्त किए ही हैं। मुझे लगता नहीं कि इनमें और विस्तार की आवश्यकता है।

पंकज सुबीर : हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं ने व्यंग्य लेखों का स्पेस धीरे- धीरे घटाते हुए लगभग उसे शून्य ही कर दिया है। यद्यपि आज भी पाठक किसी पत्रिका में व्यंग्य को ही सबसे पहले पढ़ता है। जो चीजें पाठक पढ़ना चाहता है वो नहीं है, और जिन चीजों को पाठक देखता तक नहीं, उनकी भरमार है। क्या ये एक प्रकार की वैचारिक दादागिरी नहीं है।

प्रेम जनमेजय : सभी पत्रिकाओं में ऐसा नहीं है। ये एक संकुचित सोच का परिणाम है। कुछ शुद्ध-प्रबुद्ध पतिव्रताएं इसे अछूत दृष्टि से देखती हैं। आप जानते ही हैं कि हमारे समाज में भी ऐसी ब्राह्मणवादी सोच रही है। हिन्दी साहित्य भी ऐसे अनेक ब्रह्मणों से समृद्ध है। ये दादागिरी नहीं, उनकी बेचारगी है। ऐसे धृतराष्ट्रों की अनेक संजय भी सहायता नहीं कर सकते हैं।

पंकज सुबीर : साहित्य में पहले विधाएं होती थीं अब विमर्श हैं। व्यंग्य हमेशा से ही विमर्श रहा है। लेकिन वो विचारधाराओं में बंधा विमर्श नहीं रहा। वो अपने ही मानदंडों पर चलता हुआ विमर्श है। क्या इसीलिये विचारधाराएं अब व्यंग्य के खिलाफ हो गईं हैं।

प्रेम जनमेजय : आपने बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न किया है और इसके माध्यम से आवश्यक सवाल उठाया है। साहित्य की दुनिया भी परिवर्तनशील है। इस दुनिया में निरंतर किए जाने वाले सवालों का ही परिणाम है कि इसकी गतिशीलता बनी हुई है। व्यंग्य को साहित्य से भिन्न मानने वालों का दृष्टिकोण ही खिलाफत के लिए राजनीतिक व्हिप अथवा धार्मिक फतवा जारी करता है। व्यंग्य सामाजिक आवश्यकतानुसार अपनी भूमिका के साथ उपस्थित होता रहा है।

पंकज सुबीर : कुछ समय पहले तक व्यंग्य बाबा नागार्जुन की कविताओं से लेकर रेणु की कहानियों तक, सबमें फैला हुआ था। मगर उन सबके बीच भी कई सारे व्यंग्यकार जिनमें आप भी शामिल हैं अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रहे। आज वैसा कुछ दिखाई नहीं देता, क्यों?

प्रेम जनमेजय : आपने बाबा नागार्जुन की बात कह मेरी स्मृति के तालाब में कंकरी मार दी है या कहूं कि चुनाव की घोषणा कर पार्टियों में हलचल मचा दी है। इस कारण अनेक क्षण सजीव हो रहे हैं। मुझे न केवल बाबा से मिलने का सौभाग्य है अपितु अपने घर ठहराने और घंटों बतियाने का भी सुख प्राप्त है। उनको मैंने नाच-नाच का काव्य पाठ करते या फिर बादल को घिरते देखा है जैसी कविता का पाठ करते समय गंभीर मुद्रा में देखा है। बाबा में जो फक्कड़पन था वो आज के रचनाकारों में नहीं है। आज सहज व्यंग्य करने के स्थान पर तुरत-फुरत व्यंग्यकार बन जाने की चूहा दौड़ अधिक है। व्यंग्य सहज नहीं रहा है और इस कारण संवेदना से नहीं जुड़ता है। व्यंग्य रचनाएं लेखकीय संवेदना से जुड़ने के स्थान पर किताबी अधिक हो गई हैं। मैं फिर दोहरा रहा हूं कि व्यंग्य लेखन साहित्य लेख नहीं है और व्यंग्यकार के वही सामाजिक सरोकार हैं, साहित्यिक उद्देश्य और संप्रेषणीयता है जो किसी भी साहित्यकार की होती है।

पंकज सुबीर : व्यंग्य यात्रा का अब तक का सफर आपके लिये कैसा रहा? क्या आप संतुष्ट हैं? इसी से जुड़ता सवाल कि जब कोई रचनाकार, संपादक बन जाता है, तो उसके अंदर की रचना प्रक्रिया को उससे नुकसान होता है। वो रचना प्रक्रिया धीमी हो जाती है। क्या आप इससे सहमत हैं? आपके अनुभव क्या रहे हैं?

प्रेम जनमेजय : इस संदर्भ में मेरे अनुभव अत्यधिक ही शिक्षाप्रद रहे हैं। 'व्यंग्य यात्रा' मेरे लिए एक मिशन की तरह है और यह व्यंग्य को अत्यधिक गंभीरता से लेने वाले चिंतनशील सृजनधर्मियों की सामूहिक सोच का परिणाम है। मैं तो माध्यम मात्र हूं। अच्छी रचनाओं का रचनात्मक सहयोग नहीं मिलता तो पत्रिका अच्छी कैसे हो सकती थी और क्यों इसे 'राग दरबारी' के प्रकाशन के बाद हिन्दी व्यंग्य की दूसरी बड़ी घटना माना

साहित्य की दुनिया भी परिवर्तनशील है। इस दुनिया में निरंतर किए जाने वाले सवालों का ही परिणाम है कि इसकी गतिशीलता बनी हुई है। व्यंग्य को साहित्य से भिन्न मानने वालों का दृष्टिकोण ही खिलाफत के लिए राजनीतिक विल्प अथवा धार्मिक फतवा जारी करता है। व्यंग्य सामाजिक आवश्यकतानुसार अपनी भूमिका के साथ उपस्थित होता रहा है।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

जाता। 'व्यंग्य यात्रा' के लिए मुझे सभी से अपेक्षित सार्थक सहयोग मिला है और ये सहयोग अर्थ से शब्दार्थ तक का है। मैंने इसके 23वें अंक के संपादकीय में लिखा भी था- यह पत्रिका का 23वां अंक है, अर्थात् हम 'व्यंग्य यात्रा' के छठें वर्ष के द्वार पर खड़े हैं। प्रयोग के रूप में मात्र पांच अंक निकालने की मेरी योजना को आपने झुठलाया तथा अपने निरंतर सहयोग की संजीवनी देते रहे। यह आप लोगों का मात्र आर्थिक सहयोग ही नहीं अपितु रचनात्मक सहयोग ही है जिसने पत्रिका को गुणवत्ता प्रदान की है। समस्त विधाओं तथा प्रतिबद्धताओं के रचनाकारों ने इसे अपना सहयोग दिया है। शायद यही कारण है कि रामशरण जोशी जैसे प्रसिद्ध रचनाकार फोन करते हैं और व्यंग्य यात्रा के निष्पक्ष मंच के रूप को रेखांकित करते हुए प्रशंसा करते हैं, बधाई देते हैं। अंक निकालने में अत्यधिक संपादकीय व्यस्तता के चलते अपने लेखकीय पक्ष की हानि देख अंदर बैठा कोई कृष्ण कहता है कि प्यारे इस संपादक ने तेरे लेखकीय रूप की बहुत ग्लानि कर दी है, अब तो लेखक के रूप में अवतरित हो। जैसा गालिब के साथ हुआ था और अक्सर हर रसरंजन प्रिय व्यक्ति के साथ होता है, वैसा ही मेरे साथ भी होता है। गालिब सुबह अपनी खाट पर बैठे होते और उनके हितचिंतक समझाते कि गालिब अब तो शराब से तौबा कर लो। गालिब भी अपने हितचिंतकों की बात मानते और दोनों कानों को हाथ लगाकर कहते- 'तौबा, तौबा शराब से तौबा' यह तौबा सुबह की होती और शाम होते ही सुबह का भूला वापस आ जाता। गालिब शाम को अपने रंग में आ जाते। उनके हितचिंतक देखते और कहते- गालिब आपने सुबह ही तो तौबा की थी और कहा था, तौबा, तौबा शराब से तौबा। गालिब सहज भाव से शराब को गिलास में उड़ेलते और बिना कानों को हाथ लगाए आश्चर्य मिश्रित स्वर में कहते- 'तौबा, तौबा और शराब से तौबा!' हितचिंतक कहते कि ये नहीं सुधारेगा और गालिब अपने से कहते हैं कि तुम सुधरने के लिए नहीं बने हो।

मेरे साथ भी 'व्यंग्य यात्रा' को लेकर ऐसा ही गालिबाना प्रसंग होता है। हर अंक निकालने के बाद सोचता हूं कि अब 'व्यंग्य यात्रा' से तौबा करूंगा परंतु जब श्रीलाल शुक्ल, रामशरण जोशी, गौतम सान्याल जैसे अनेक महानुभाव अंक मिलने के बाद रक्तवर्द्धक फोन करते हैं तो मन कह उठता है- 'तौबा तौबा और व्यंग्य यात्रा से तौबा! यही नहीं जब लंदन से इंद्रजीत जैसे ग्राहक अंक न मिलने पर बेचैनी जाहिर करते हैं तथा दक्षिण भारत के मैंगलोर शहर से भगवत सिंह राव जैसे 'सज्जन' ब्लैंक चैक भेज देते हैं कि 'व्यंग्य यात्रा' के लिए जो भी निकाल लें तो मन ब्लैंक हो जाता है और 'व्यंग्य यात्रा' के सिवा और कुछ नहीं सोचता है।''

आपने सही कहा कि पत्रिका आपकी ऊर्जा का सर्वश्रेष्ठ ले लेती है। इसी के कारण मैं 'गगनांचल' और 'व्यंग्य यात्रा' की नावों में सवार था तो मैंने पाया कि मैं लेखक तो रह ही नहीं गया हूं। इसी कारण मैंने 'गगनांचल' से मुक्ति ली।

पंकज सुबीर : संपादक के रूप में व्यंग्य रचनाओं का चयन करते समय आप किन बातों का ध्यान रखते हैं?

प्रेम जनमेजय : निश्चित ही अच्छी रचना संपादक की पहली पसंद होती है। रचनाएं अच्छी, उत्कृष्ट, गुणवत्तापूर्ण होंगी तभी तो पत्रिका भी ऐसी गुणसंपन्न होगी। मैं अपनी संपादकीय दृष्टि से बहुत कम समझौते करता हूं। अच्छी रचना देखते ही चील की तरह झपट्टा मार लेता हूं। बहुत लोग आपको पहले चंदा भेजते हैं और फिर रचना इस अंदाज में भेजते हैं कि हम ग्राहक हैं इसलिए ये स्वीकृत तो होगी ही। ऐसे अनेक लोगों के चंदे और रचनाएं मैंने वापस की हैं। दूसरे जब तक मैं अंक से संतुष्ट नहीं होता हूं अंक प्रकाशन के लिए नहीं देता हूं। चाहता हूं कि अंक नियमित निकले पर इस दबाव में कैसा भी अंक नहीं निकालता हूं। अंक चाहे विलंब से आए अथवा संयुक्तांक के रूप में आए, स्तरीय होना चाहिए।

पंकज सुबीर : व्यंग्य लेखन में महिलाओं का योगदान बहुत कम रहा है, क्या आप इससे सहमत हैं, इसके पीछे क्या कारण आपको दिखाई देते हैं?

प्रेम जनमेजय : मैंने इस संदर्भ में एक स्थान पर लिखा भी है कि यदि सूर्यबाला, अलका पाठक जैसी महिला व्यंग्यकार नहीं होतीं तो व्यंग्य को पुरुषोचित विधा मान लिया जाता। मेरे हिसाब से आपका यह प्रश्न इस दिशा में शोध की चुनौती प्रस्तुत कर रहा है, जिसमें दम है वो आगे आए और बताए कि इसके पीछे क्या कारण हैं।

पंकज सुबीर : 'राग दरबारी जैसा व्यंग्य उपन्यास जब भी आया है तो पाठकों ने उन्हें हाथों

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

यदि आप सक्रिय हों तो योजनाएं आपका पीछा नहीं छोड़ती हैं। लेखन और व्यंग्य से जुड़े अन्य संदर्भों को लेकर बहुत कुछ करने का मन है। पहले तो दो अधूरे व्यंग्य उपन्यासों और व्यंग्य नाटकों के लिए समय निकालने में प्रयत्नशील हूं। मेरे चरित्र में न जाने क्यों ऐसा है कि मैं किसी भी चीज़ के लिए न नहीं कह पाता हूं और इस चक्र में पुराने अधूरे काम पीछे रह जाते हैं और उनके स्थान पर नया अपनी मांग के साथ उपस्थित हो जाता है।

हाथ लिया है। लेकिन उसके बाद भी व्यंग्य उपन्यास लेखन में एक प्रकार का ठंडापन है। सफलता के बाद भी इस ठंडेपन को आप किस रूप में लेते हैं।

प्रेम जनमेजय : ऐसा नहीं है कि ठंडापन है परंतु ये कहा जा सकता है उत्कृष्टता उस ऊँचाई तक नहीं पहुंची है। 'राग दरबारी' तो क्लासिक है और क्लासिक दोहराए नहीं जाते हैं। दूसरे हम बहुत दिनों से 'राग दरबारी के आतंक में भी जी रहे हैं। ज्ञान चतुर्वेदी ने इस आतंक को तोड़ा है। इसके साथ ही नरेंद्र कोहली, विष्णु नागर, सुरेश कांत, गिरीश पंकज, विनोद साव, सत्यपाल सिंह सुष्म, जवाहर चौधरी, आशा रावत आदि ने इस दिशा में रचनात्मक योगदान दिया है। नरेंद्र कोहली ने तो 'पांच एब्सर्ड' उपन्यास के माध्यम से नया शिल्पगत प्रयोग किया है।

पंकज सुबीर : व्यंग्य के भविष्य को आप किस प्रकार देखते हैं ?

प्रेम जनमेजय : मैं बहुत ही आशावान प्राणी हूं और व्यंग्यकार के रूप में नकारात्मक दृष्टि होने के बावजूद सकारात्मक दृष्टिकोण रखता हूं। मेरा मानना है कि एक व्यंग्यकार का नकारात्मक दृष्टिकोण किसी चिकित्सक-सा सकारात्मक है। किसी चिकित्सक के सामने यदि कोई सुंदरी इलाज के लिए पड़ी है जिसकी जांघ पर भयंकर फोड़ा है और उसमें से मवाद बह रहा है तो डॉक्टर का ध्यान उसके कमल नयनों की ओर नहीं जाएगा। वह सुंदरी की कोमल जांघों पर भी नश्तर चलाएगा, उसे चीरेगा और मवाद को बाहर निकालेगा। वह ये सब इसलिए करेगा जिससे सुंदरी और सुंदर हो जाए। बहुत कुछ ऐसा ही व्यंग्यकार मानव के लिए बेहतर और सुंदर समाज के निर्माण के लिए करता है। अपने इसी आशावान और सकारात्मक दृष्टिकोण के चलते मुझे व्यंग्य का भविष्य बहुत ही सुंदर दिखाई देता है। अनेक ऐसे युवा व्यंग्यकार हैं जो व्यंग्य को गंभीर कर्म मान सृजन कर रहे हैं। मेरा विश्वास है कि व्यंग्य आलोचना के औज़ारों का निर्माण होगा और स्वस्थ आलोचना समक्ष आएगी।

पंकज सुबीर : एक व्यंग्यकार के रूप में भविष्य को लेकर आपकी क्या योजनाएं हैं। किन विषयों पर आप काम कर रहे हैं तथा उनके परिणाम पाठकों को कब तक मिलेंगे ?

प्रेम जनमेजय : आपने मेरी दुखती रग को छेड़ दिया है। यदि आप सक्रिय हों तो योजनाएं आपका पीछा नहीं छोड़ती हैं। लेखन और व्यंग्य से जुड़े अन्य संदर्भों को लेकर बहुत कुछ करने का मन है। पहले तो दो अधूरे व्यंग्य उपन्यासों और व्यंग्य नाटकों के लिए समय निकालने में प्रयत्नशील हूं। मेरे चरित्र में न जाने क्यों ऐसा है कि मैं किसी भी चीज़ के लिए न नहीं कह पाता हूं और इस चक्र में पुराने अधूरे काम पीछे रह जाते हैं और उनके स्थान पर नया अपनी मांग के साथ उपस्थित हो जाता है। मैं बहुत ही घरेलू और पारिवारिक किस्म का व्यक्ति हूं। परिवार के साथ समय बिताना मुझे बहुत ही अच्छा लगता है। दूसरे यात्राओं में बहुत रुचि है। रेलगाड़ी की आवाज़ सुनते ही पांव थिरकने लगते हैं। पोते- पोतियां घर आ जाएं तो वे प्राथमिक हो जाते हैं। उनके होते ही मैं इतना कबीर तो हो ही जाता हूं कि - मसि काग़ज़ छुओ नहीं, कलम गही नहीं हाथ। 'व्यंग्य यात्रा' भी समय ले लेती है। अनेक बार सारे दिन में अपनी रचनात्मकता का लेखा- जोखा करता हूं कि छह-सात घंटे काम किया है पर उस समयावधि में बीस-पच्चीस रचनाएं पढ़ी हैं तथा पंद्रह-बीस पत्र लिखे हैं। आप आशीर्वादमुद्राप्रधान साहित्यकार हो जाएं तो पुस्तकों की भूमिका से लेकर ब्लर्ब तथा मार्गदर्शन जैसे सतकर्म भी आपको करने पड़ते हैं। पर शुक्र है कि कॉलेज में पढ़ाता हूं और इस कारण अपनी साहित्येत्तर भूमिका के लिए समय पा लेता हूं।

अब आप देखिए आपके द्वारा उठाए गए इतने महत्वपूर्ण प्रश्नों में उलझा-सुलझा और ये कुछ दिन तक तो दिमाग में छाए रहे और कुछ दिन इन्होंने काग़ज़ में उतरने के लिए ले लिए। अब सवाल ये उठ सकता है कि पांच हज़ार शब्दों का साक्षात्कार प्राथमिक है या किसी रचना का सृजन। पर यदि आप लेखक हैं तो इन सब से बच नहीं सकते हैं।

पंकज सुबीर : बहुत-बहुत धन्यवाद प्रेम जी, आपने जो उत्तर दिये हैं वो कई सारी परतों को खोलने वाले हैं।

प्रेम जनमेजय : धन्यवाद आपका भी।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

जनमेजय

सामाजिक घटनाओं के रडार हैं

■ *डॉ. मनोज श्रीवास्तव*

हिन्दी के अधिकतर समीक्षकों, आलोचकों और पाठकों की धारणा है कि हिन्दी का व्यंग्य-लेखन अंग्रेजी साहित्य की व्यंग्य-विधा से अभिप्रेरित है। वे जब कभी हिन्दी की व्यंग्य-विधा की चर्चा करते हैं तो वे इसे अंग्रेजी साहित्य में प्रचुर मात्रा में लिखे गए व्यंग्य से अनुप्राणित और अभिप्रेरित घोषित करते हैं, जबकि प्रेम जनमेजय समेत हिन्दी व्यंग्यकारों की विशाल भीड़ तथा व्यंग्य-रचना के प्रति उनकी तल्लीनता को देखते हुए हिन्दी में लिखे जा रहे व्यंग्य को इस दोषारोपण से पहली नज़र में ही मुक्त किया जा सकता है। बेशक अंग्रेज़ी साहित्य में अठारहवीं शताब्दी से ही व्यंग्य-लेखन की परंपरा का सूत्रपात हुआ और उस दौर में अंग्रेज़ी व्यंग्यकारों यथा- एडिसन, स्टील, ड्रायडन, अलेक्ज़ेंडर पोप आदि एवं उनके बाद जे.स्विफ्ट, एडमंड बर्क आदि ने तत्कालीन समाज की विसंगतियों और राजनीतिक कुचक्रों का पर्दाफाश करने के लिए प्रचुर मात्रा में व्यंग्य लिखे। दरअसल, साहित्य की व्यंग्य-विधा सामाजिक व्यवस्था की देन है जो अलग-अलग देशों और समाजों में व्याप्त परिस्थितियों के अनुरूप अपना ढांचा निर्धारित करती है। चूँकि साहित्य का प्रयोजन समसामयिक समाज में फैले बुरे तत्वों की गलाफोड़ भर्त्सना करना होता है, इसलिए व्यंग्य जैसी विधा का प्रादुर्भाव होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मैथ्यू अर्नाल्ड की 'कल्चर एंड अनार्की' इस बात का जीवंत उदाहरण है। इसी प्रकार स्विफ्ट का 'गुलिवर्स ट्रेवेल्स' तत्कालीन राजनीतिक विसंगतियों पर करारा कटाक्ष करने वाली एकमात्र रचना है। सामाजिक अनाचार और भ्रष्टाचार ने ही साहित्यकारों की दृष्टि को व्यंग्योन्मुख बनाने के लिए सदैव विवश किया है। इसलिए किसी भी भाषा के लेखक पर यह आक्षेप नहीं लगाया जा सकता कि उसने अंग्रेजी के व्यंग्यकारों को पढ़ने के पश्चात् अपनी भाषा में व्यंग्य लिखने की प्रेरणा प्राप्त की है। हिंदुस्तान की सरजमीं भ्रष्टाचार के खाद-पानी से इतनी उर्वर हो चुकी है कि खासतौर से हिन्दी के अधिकतर लेखकों का नज़रिया अपने-आप ही व्यंग्य उन्मुख हो जाता है। वह चाहे कवि हो या कथाकार, ललित निबंधकार हो या नाटककार।

यह बात प्रेम जनमेजय पर पूरी तरह खरी उतरती है कि यहाँ की सामाजिक पृष्ठभूमि ने ही उन्हें व्यंग्यकार बनने के लिए विवश किया है। तभी तो उनकी आरंभिक काव्य रचनाओं और कहानियों में व्यंग्य का स्वर प्रधान है। जब उनमें व्यंग्य का यह स्वर अत्यंत अभिभावी हो गया तो उनकी रचनाधर्मिता एक विशुद्ध व्यंग्यकार के रूप में कायांतरित हो गई। उनके पूरे रचना-संसार से अवगत होने पर यह सहज कहा जा सकता है कि वे पैदा ही इसलिए हुए थे कि वे अपने व्यंग्यास्त्र के माध्यम से, निरर्थक और गुमराह हो रहे मानवीय समाज को सार्थक ताने-बाने से एक सौष्ठवपूर्ण आकार-प्रकार प्रदान कर सकें। नानाविध विसंगतियों से बाग-बाग हो रहे भारतीय समाज पर चाहे वे ठठाकर हंस रहें हो या आऊँ-आऊँ करते हुए रो रहे हों, पाठक को उनकी हँसी और रुल्लाई कम, लेकिन व्यंग्य का विस्फोटक स्वर ज्यादा सुनाई देता है। उनके लेखकीय स्वभाव में व्यंग्य की तीक्ष्णता, कटाक्ष की ऊष्मा और हास्य की पराकाष्ठा अंतर्विष्ट है। इसके साथ-साथ करुणा और पीड़ा के जरिये भी वे व्यंग्यात्मक स्थिति का सृजन करने में सिद्धहस्त है। विशेषतया हिन्दी के रसिक पाठक इस बात से अनभिज्ञ हैं कि पीड़ा भी व्यंग्योक्ति का एक हथियार बन सकता। किन्तु इस बात को जनमेजय ने अपनी व्यंग्य-रचनाओं में प्रतिपादित करके दिखाया है। उनके संप्रेषण में वक्रोक्तिजन्य ने अपनी व्यंग्य-रचनाओं में शिष्टाचार, सदाचार, सभ्यता, सुसंस्कृति, सांप्रदायिक सद्भाव और सामाजिक साहचर्य का सबक देने के लिए सदैव तत्पर है। व्यंग्य की तीसरी पीढ़ी के व्यंग्यकारों में वे अजातशत्रु, लतीफ़ घोंघी, शंकर पुणताम्बेकर, सुदर्शन मजीठिया, सूर्यबाला, पूरण सरमा और दामोदर दत्त दीक्षित जैसे लेखकों के बीच एकमात्र ऐसे व्यंग्यकार के रूप में मुखर होते हैं जिन्होंने साहित्य की दूसरी विधाओं में फ़िज़ूल ताक-झाँक करने के बजाय व्यंग्य-विधा को ही अपनी सृजनात्मकता की ज़मीन बनाई।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

"व्यंग्य मूलतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा है। यह एक प्रहारात्मक हथियार है, जिसका उद्देश्य विसंगतियों का न केवल उद्घाटन करना है अपितु इन पर सृजनात्मक तथा सार्थक और दिशायुक्त प्रहार भी करना है। व्यंग्य हृदय की भाववुकता को उभारने के स्थान पर सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न करता है। व्यंग्य एक सोद्देश्य धनात्मक सोच की रचना है जो नैतिकता तथा सामाजिक यथार्थ के साथ गहरी जुड़ी होती है तथा पाठक को सही समाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करती है।"

यद्यपि जैसा कि वे स्वयं दावा करते हैं कि वे कथा और कविता लेखन से व्यंग्य लेखन में प्रवृत्त हुए, जब से उन्होंने व्यंग्य-लेखन शुरू किया तब से उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बस, व्यंग्य-लेखन को ही अपनी आदत में शामिल किया। इसके अतिरिक्त अपने पीछे हिन्दी व्यंग्य साहित्य की समृद्ध परम्परा से भी उन्होंने कभी मुँह नहीं फेरा; उससे बहुत कुछ सीखा है नव-प्रयोग भी किये। वे अपने पूर्ववर्ती व्यंग्यकारों की शैली, भाषा और स्वर के प्रति सदैव संवेदनशील रहे, उनके आग्रही रहे। व्यंग्य-विधा की सेहत को लेकर उनकी चिंता जगजाहिर है। इस विधा को साहित्य में एक सम्मानित पद प्रदान करने की बात वे बार-बार करते हैं। व्यंग्य के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सकारात्मक और व्यंग्य-लेखन की मान्यताओं के अनुकूल है। वे स्वयं कहते हैं।

'व्यंग्य मूलत: एक सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा है। यह एक प्रहारात्मक हथियार है, जिसका उद्देश्य विसंगतियों का न केवल उद्घाटन करना है अपितु इन पर सृजनात्मक तथा सार्थक और दिशायुक्त प्रहार भी करना है। व्यंग्य हृदय की भाववुकता को उभारने के स्थान पर सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न करता है। व्यंग्य एक सोद्देश्य धनात्मक सोच की रचना है जो नैतिकता तथा सामाजिक यथार्थ के साथ गहरी जुड़ी होती है तथा पाठक को सही समाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करती है।'

नि:संदेह! समाज के स्वास्थ्य निर्माण के लिए सामाजिक विसंगतियों को मिटाकर सकारात्मक, धनात्मक और अनुकूल सोच का सृजन करना अत्यंत आवश्यक है। इसकी महती भूमिका होती है। सामाजिक विद्रूपताओं के प्रति जुगुप्सा पैदा करना व्यंग्य का एक प्रमुख कार्य है। जैसा कि जनमेजय कहते हैं, व्यंग्य जितनी बेचैनी बढ़ाता है, उतना ही अधिक श्रेष्ठ होता है। यह बेचैनी तभी रचनात्मक होगी जबकि बुराइयों के प्रति मानवीय घृणा का भाव अपरिमित और असीम हो। अपनी इस भूमिका में, जनमेजय शुद्ध व्यंग्यकार के मापदंडों पर खरे उतरते हैं। वे एक ऐसी ऊंचाई पर खड़े सामाजिक घटनाओं का जायज़ा लेते नज़र आते हैं, जहाँ से एक रडार, शत्रु की सभी गतिविधियों का सूक्ष्मावलोकन कर सकता है और फिर उनकी सही जानकारी हमें देता है; उसके बाद शत्रु पर स्टीक निशाना साधने के लिए हम रणनीतियां तैयार करते हैं।

पहली पीढ़ी के शीर्ष व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई उनके प्रमुख प्रेरणा-स्रोत रहे है और उन्होंने इस बात से कतई इंकार नहीं किया है। परसाई की तरह वे गहरे पानी पैठकर मोती निकालने के लिए सदैव भागीरथी प्रयास करने को आतुर रहे हैं। शरद जोशी व्यंग्य-भाषा की विश्लेषक-क्षमता को वे कहीं न कहीं आत्मसात करते हैं और अपनी रचनात्मकता को गाम्भीर्य के पुट से लबरेज़ करने में पूर्णतया सक्षम होते हैं। अपनी विश्लेषक भाषा के जरिए वे धीरे- धीरे सामाजिक विद्रूपताओं की तह तक जाते हैं और आख़िरकार वे उन विद्रूपताओं को कटाक्ष के ब्रह्मास्त्र से धराशायी करके ही दम लेते हैं। उनके अनुसार, ऐसा तभी संभव है जबकि शाश्वत व्यंग्य लिखे जाएँ। वे पूरे व्यंग्यकार-समुदाय से अपेक्षा करते हैं कि वे क्षणभंगुर व्यंग्य लिखने से बाज आएँ और ऐसी रचनाएँ करें जिनमें सर्वकालिकता, सार्वत्रिकता और सार्वभौमिकता की विशिष्टताएँ विद्यमान हों। अर्थात एक विशेष काल में लिखे गए व्यंग्य परवर्ती कालों में भी प्रासंगिक और सार्थक हों। वे परसाई और जोशी द्वारा कभी-कभार लिखी गई क्षणभंगुर रचनाओं को भी आड़े हाथों लेने से नहीं चूकते हैं।

हमारे दोनों वरिष्ठ व्यंग्यकार क्षणभंगुर व्यंग्य लिखने का विचित्र साहस कर रहे हैं... परन्तु यह एक खतरा है जिसकी ओर संकेत करना आवशयक है।

नि:संदेह ! उन्हें आशंका ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि नई पीढ़ी के व्यंग्यकार परसाई और जोशी की चुनिन्दा क्षणभंगुर रचनाओं को अपना आदर्श मानते हुए ऐसी ही क्षणभंगुर रचनाओं में दत्तचित हो जाएँगे, जिससे व्यंग्य का स्तर गिरता जायेगा और इस विधा का छीछालेदर हो जायेगा। चुनांचे, क्षणभंगुर व्यंग्य रचनाओं के स्वरूप, उनकी संरचना, उनके भावपक्ष और अन्य विशिष्टताओं के सम्बन्ध में जनमेजय जी की कोई सटीक संकल्पना नहीं है। क्या वे क्षणभंगुर रचनाएँ उन्हें मानते हैं जो आजकल अनेकानेक अख़बारों, लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओं आदि के व्यंग्य-स्तंभों में बहुतायत से प्रकाशित हो रही हैं तथा जिन्हें पाठक

एक साँस में पढ़ना चाहता है? यद्यपि इन व्यंग्य-स्तंभों के कुछेक पेशेवर लेखक भाषाई लप्पेबाजी के जरिय जनमानस पर अपना धौंस जमाना चाहते हैं, तथापि इस बात से कतई इंकार नहीं किया जा सकता कि कतिपय प्रतिष्ठित व्यंग्यकार इस स्तंभों की शोभा कई दशकों से बढ़ा रहे हैं। के.पी. सक्सेना, गोपाल प्रसाद व्यास, शंकर पुणताम्बेकर, गोपाल चतुर्वेदी आदि जैसे कई लब्ध-प्रतिष्ठ नाम इस स्तंभों के साथ जुड़े हुए हैं। अस्तु, यह बात पुन: ध्यातव्य है कि पत्र-पत्रिकाओं के स्थायी स्तंभों में नामी-गिरामी व्यंग्यकार भी अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराते रहे हैं क्योंकि इन स्तंभों के जरिये लेखक की लोकप्रियता तेज़ी से बढ़ने लगती है और वह प्रिंट मीडिया के बाज़ार में बेशकीमती हो जाती है। इन स्तंभों के कुछेक उदीयमान व्यंग्यकारों ने तो अपना खास स्थान भी बना रखा है और पाठक उनका नाम देखते ही उनके व्यंग्यालेख का आस्वादन करने लगता है। बेशक जनमेजय इन स्तंभों से काफी परहेज करते हैं क्योंकि इन छोटे-मोटे व्यंग्य-आलेखों में कोई गंभीर चर्चा नहीं की जाती है; बस समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विडम्बनाओं तथा मानवीय कुवृत्तियों पर ही कटाक्ष लिया जाता है। पर ये व्यंग्य अपने तीक्ष्ण कटाक्ष और धारदार प्रहार के बलबूते पर होते हैं बड़े प्रभावशाली जो जनमानस को झकझोर कर रख देते हैं।

हाँ, जनमेजय ने चुनिन्दा अपवादों के अतिरिक्त ऐसे स्तंभों में लिखने के लिए कभी कोई ज़हमत नहीं उठाई। नि:संदेह इन स्तंभों के लिए लिखे गए व्यंग्य ही उनकी दृष्टि में क्षणभंगुर हैं। अस्तु आखरी स्तंभों के व्यंग्य मुख्यता राजनीतिपरक और बहुत प्राय: व्यक्तिपरक होते हैं जो राजनीतिक हस्तियों पर अपना निशाना साधते हैं; किन्तु इन व्यंग्य-रचनाओं की सारगर्भिता और मारक क्षमता से बिलकुल इंकार नहीं किया जा सकता। ये तत्कालीन समाज की विद्रूपताओं पर जितना ज़ोरदार हमला बोलते हैं, वैसा लम्बे-लम्बे साहित्यिक उचाव वाले व्यंग्य कदापि नहीं कर सकते। मैं समझता हूँ कि जनमेजय समेत सभी महत्वपूर्ण व्यंग्यकारों को अपने इस नज़रिए में सुधार करना चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं के व्यंग्य-स्तंभों के जरिए पाठक जितनी सहजता से व्यंग्य की विधा से परिचित होता जा रहा है और इसका प्रशंसक बनता जा रहा है, वह इस विधा की सेहत के लिए बहुत अनुकूल है। अब समय आ गया है कि हम ऐसी व्यंग्य-रचनाओं के प्रति सकारात्मक और स्वीकारात्मक नज़रिया अपनाएं और स्तंभकार व्यंग्यकारों के योगदानों का समुचित मूल्यांकन करें।

व्यंग्य-स्वर का शाश्वत होना व्यंग्य-विधा का एक प्रमुख तत्व मना गया है। इंग्लैंड के अलेक्ज़ेंडर पोप की व्यंग्य-रचनाओं को उस दौर में सिर्फ इसलिए आलोचनाओं का बज्राघात झेलना पड़ा क्योंकि वे व्यक्तिगत संबंधों पर कटाक्ष करने के आदी थे। अंग्रेजी साहित्य के जान ड्रायडन की 'मैक फ्लेकानो' और अलेक्ज़ेंडर पोप की 'दी रेप ऑफ़ दी लाक' जैसी कृतियाँ भी व्यक्तिगत संबंधों का उपहास उड़ाने वाली रचनाएँ थीं जिनकी आलोचकों ने भरपूर भर्त्सना की थी। चूँकि उनकी व्यंग्य-रचनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव था, इसलिए उन्हें आलोचना का शिकार होना पड़ा। प्रकारांतर से जनमेजय जी की दृष्टि से देखने पर उनकी रचनाएँ क्षणभंगुर हैं। नि:संदेह, जनमेजय जी हिन्दी के व्यंग्यकारों से आशा करते हैं कि वे वैयक्तिकता और निजता से ऊपर उठते हुए पूरे मानव समाज के उन्नयन और परिमार्जन के लिए व्यंग्य लिखें। वे स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं।

'हिन्दी व्यंग्य साहित्य में सैकड़ों ऐसी रचनाएँ है जो आज अपने संदर्भ से कटकर भोथरी और प्रवाभहीन हो गई हैं'।

एक अन्य स्थान पर वे पुन: कहते हैं कि 'क्षणभंगुर रचनाएँ लिखने का विचित्र साहस करना रोमानी विद्रोह की मुद्रा तो हो सकती है व्यंग्य साहित्य की आवश्यकता नहीं। लगे हाथ, वे उन पत्रकारों की भी नुक्ताचीनी करने से नहीं चूकते जो अपने-अपने अख़बारों के व्यंग्य-स्तंभों में मौजूदा हालातों पर व्यंग्य-रचनाएँ छपवाने की गन्दी आदत के शिकार हैं। छपास की आस लिए ऐसे लेखकों को वे आगाह करते हैं कि यदि वे सामाजिक उद्धार के लिए कटिबद्ध हैं तो निश्चित तौर पर गंभीर हो जाएँ और ऐसे व्यंग्य लिखें जो प्रासंगिक हों और सामाजिक संदर्भ से जुड़े हुए हों।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

बहरहाल, कोई भी व्यंग्य-रचना स्वयं- स्फूर्त होती है। वह नावक के तीर की भांति प्रभावशाली होती है। वह एक ऐसी चिकित्सक की भांति होती है जो अपनी अचूक औषधियों के माध्यम से रोगी को रुग्ण बनाने वाले वायरसों और बैक्टीरिया को नष्ट करता है तथा व्यक्ति को रोगमुक्त बने रहने का अभयदान प्रदान करता है। कोई चिकित्सक ऐसा तभी कर सकता है जबकि वह रोगी के साथ अपने निजी संबंधों, उसके प्रति अपनी वैमनस्यता, उसकी सामाजिक स्थिति आदि को पूरी तरह नज़रअंदाज़ करते हुए पूरी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी से उसके रोग के निदान का उपक्रम करता है। इन मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में जनमेजय जी एक व्यंग्यकार की भूमिका का आशानुरूप निर्वाह करते हैं तथा इस रुग्ण समाज के एक असरकारी चिकित्सक के रूप में उभरकर सामने आते हैं। नरेंद्र कोहली उनके व्यंग्य-साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालते हुए कहते हैं, 'प्रेम की रचनाओं में एक सजग नागरिक के साथ-साथ एक मौलिक सर्जक के दर्शन सहज ही हो जाते हैं। व्यंग्यकार के लिए एक प्रखर भाषा ही नहीं, सूक्ष्म दृष्टि भी आवश्यक है। बिना निरीक्षण के सृजन नहीं होता। इधर समाज में कोई नई प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और उधर प्रेम की रचनाओं में वह प्रगट हो जाती है। रचनाकार सामाजिक घटनाओं का रडार होता है, इसे प्रेम ने अपने लेखन से बखूबी प्रमाणित किया है।'

एक कैलिडोस्कोप की भांति वे एक ही समय में अनेकानेक दिशाओं में अपनी नज़र डालने में

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

सक्षम हैं। घर, पड़ोस सरकारी निकायों, राजनीतिक गलियारों, सांस्कृतिक संस्थाओं, साहित्यिक तबकों आदि में छिपे अवांछित हानिकर तत्वों की नंगाझोरी करते हुए उन्हें समाज से बहिष्कृत करने की भरपूर चेष्टा करते हैं। बहरहाल, जिन व्यंग्य-कथाओं के द्वारा वे सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन करते हैं, उनमें उनकी स्वयं की उपस्थिति कथ्य को और रोचक बना देती है। राधेलाल जैसा पात्र उनका 'माउथपीस' बनकर हमें अंग्रेजी के व्यंग्यकार एडिसन के माउथपीस पात्र 'सर रोज़र' की याद दिलाता है। जब वे अपनी रचनाओं में करुणा का भाव पैदाकर व्यंग्यात्मक पृष्ठभूमि का सृजन करते हैं तो पाठक आत्मविभोर होकर वाह-वाह कहे बगैर नहीं रह सकता। अपनी व्यंग्य-रचना 'युद्धिष्ठिरी सच' में वे मौजूदा सच के स्वरूप की मार्मिक चर्चा करते हैं।

''कानून का सच अँधा होता है और भूख का सच नंगा होता है। वकील का सच उसका गवाह होता है, उसकी रोजी होता है। भूखे का सच रोटी होता है। सच ढंका हुआ होता है, सच नंगा होता है, सच अधनंगा भी होता है। जो सत्य के इन कोणों को नहीं जानता-इन कोणों को नहीं समझता है, वह आदमी नहीं रहता, धोबी का कुत्ता हो जाता है। वह दूसरों का विश्वासपात्र होकर तो जी सकता है, पर उस विश्वास को खा-पी नहीं सकता।''

इस सच में उनकी अपनी पीड़ा भी परिलक्षित होती है जिसे उन्होंने अपने जन्म-स्थान इलाहाबाद से दिल्ली के बीच अपनी लम्बी जीवन यात्रा में झेला है। इस जीवन-यात्रा में उन्होंने भ्रष्टाचार के जो विविध रूप देखे, उनका ब्यौरा भी कम हृदय-विदारक नहीं है।

'...कलियुग-जीवन के भ्रष्टाचार से भी काला युग है। आसुरी शक्तियां अपना आधिपत्य जमा लेती हैं। बाबू सब्जी खरीदते समय बैंगन चुराकर थैले में डाल लेता है। दुकानदार से गलती में मिले दस पैसे को वह चुपके से जेब में डाल लेता है और चेहरे पर बेईमानी के भाव को आने तक नहीं देता। पत्नी द्वारा छिपाए काले धन की खोज में बाबू अपने ही घर में चोरी करता है। बच्चे पिटते हैं, पत्नी चिड़चिड़ाती है। विश्व-युद्ध के बादल मंडाराने लगते हैं। घर में अनेक विस्फोट होते हैं। जेब में सिगरेट होते हुए भी बाबू दोस्तों से सफ़ेद झूठ बोलता है। इस समय न कोई मित्र होता है, न कोई पत्नी और न कोई भाई-बंधु होता है, क्योंकि जेब में पैसा नहीं होता है। कलियुग का समय दस से पंद्रह दिन का होता है। भूखे पेट भजन करता हुआ बाबू सतयुग के आने की बेकरारी से प्रतीक्षा करता है। (राधेलाल जी का कलियुग)

जनमेजय की व्यंग्यात्मक दृष्टि किसी को भी माफ़ी देने की ज़ुर्रत नहीं करती। भ्रष्टाचार का फल खा रहे पुलिस, अधिकारी, छात्र, दुकानदार, नेता-अभिनेता, खिलाड़ी, व्यापारी, औरत-मर्द सभी उनके निशाने पर हैं। उनकी दृष्टि का यह पैनापन उन्हें तीसरी पीढ़ी के व्यंग्यकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है। अपनी पत्रिका 'व्यंग्य-यात्रा' में विभिन्न व्यंग्यकारों की व्यंग्य-रचनाओं का विविधतापूर्ण प्रस्तुतिकरण भी उनकी दृष्टि के व्यापक होने का सबूत देता है। ऐसे में यदि यह कहा जाए कि वे सामाजिक घटनाओं के रडार हैं तो यह उक्ति अतिरंजित नहीं होगी। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम जनमेजय
औरों से हटकर

■ *प्रदीप पंत*

पिछले दिनों हिन्दी भवन न्यास, नई दिल्ली द्वारा 'व्यंग्यश्री सम्मान' मिला और मैं चुपके से मनोहर श्याम जोशी, श्रीलाल आदि की कतार में खड़ा हो गया। सम्मान समारोह का संचालन व्यंग्यश्री प्रेम जनमेजय कर रहे थे। मैंने सोचा, वे प्राध्यापक हैं, लिहाज़ा इस मौके पर मेरी पैंतालीस मिनट की क्लास तो ले ही लेंगे, लेकिन इसके बरक्स उन्होंने चोर का भाई गिरहकट का धर्म निभाया। वे भी व्यंग्यकार, मैं भी व्यंग्यकार। इसलिए उन्होंने घिसाई भरी क्लास लेने के बजाय मेरी तारीफ के पुल बांध दिए। मेरे बोलने की बारी आई तो यही काम मैंने किया। हम दोनों के भाषणों का लब्बो-लुबाब यह रहा कि आज हिन्दी में दो ही बड़े व्यंग्यकार हैं- एक मैं और एक प्रेम जनमेजय। अब यहां अपने बारे में तो क्या कहूं, पर प्रेम जनमेजय के बारे में थोड़ा-कुछ कहना चाहता हूं। इस थोड़े कुछ को ही बहुत-कुछ जानिए और मानिएगा।

मेरा एक व्यंग्य-संग्रह 'ठेठ उत्तर आधुनिक ठाठ' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस से प्रकाशित हुआ है जिसका समर्पण इस प्रकार है- 'अखबारी व्यंग्यों के कारण व्यंग्य की दुर्दशा से चिंतित व्यंग्य यात्री प्रेम जनमेजय के प्रति।' ऐसा नहीं कि प्रेम दैनिक पत्रों में व्यंग्य नहीं लिखते। लिखते हैं- लेकिन कभी-कभार। अखबारी व्यंग्य लिखने वालों का एक अलग ही वर्ग बन गया है। ऐसे व्यंग्यकार दैनिक पत्रों में तीन सौ से पांच सौ शब्दों के व्यंग्य लिखकर परम-चरम संतुष्ट और आत्ममुग्ध रहते हैं। मेरा एक पड़ौसी व्यंग्यकार जेब में हर समय अपने दैनिक पत्रीय व्यंग्यों की फोटो कापियां लिए घूमता है। हाल में उसने एक समाचार-पत्र का ज़िक्र करते हुए कहा, 'उसमें प्रकाशित अपने व्यंग्य में हमने सोनिया जी पर ऐसे तीर चलाए हैं कि पढ़ेंगी तो छटपटा उठेंगी।' मैं सामने टी.वी. पर खबरें देख-सुन रहा था। एक-दो खबरों बाद सोनिया जी किसी समारोह में बैठी मुस्कुराती नज़र आईं। मैंने कहा, 'यार, ये तो मुस्कुरा रही हैं। अखबारी व्यंग्यकार बोला, हमारा व्यंग्य अभी पढ़ा नहीं होगा।' मैं चुप न रहता तो और क्या करता।

> अब ऐसे अखबारी व्यंग्यकारों के लिए भला क्या कहा जाए। अगर प्रेम जनमेजय तात्कालिक घटनाओं पर तुरत-फुरत व्यंग्य नहीं लिखते तो अच्छा ही रहता। अक्सर ये अखबारी व्यंग्य उतने ही फूहड़ और सतही होते हैं, जितनी कि कवि-सम्मेलनी हास्य कविता। प्रेम जनमेजय इस स्थिति से बचकर चलने वाले व्यंग्यकार हैं और व्यंग्य-कर्म को पूरी गंभीरता से निभाते हैं। उनके व्यंग्य सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं पर तात्कालिक सतही हास्यास्पद प्रतिक्रिया नहीं है और यही कारण है कि वे क्षणभंगुर नहीं हैं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

दूसरे दिन वही व्यंग्यकार मिला तो बोला, 'आज भी हमारा व्यंग्य छपा है। हमने लालकृष्ण आडवाणी जी की ऐसी-तैसी कर दी। भाजपाई आकर अब किसी दिन हमारे घर पर तोड़फोड़ मचाएंगे।' पर तोड़फोड़ मचाने कोई नहीं पहुंचा। तीन-चार दिन बाद उसने मुलायम सिंह और मायावती पर एक साथ लिखे व्यंग्य की फोटोकॉपी मुझे देते हुए कहा, 'इसे पढ़ना, हमारे व्यंग्य की धार को महसूस करोगे।' मैंने जवाब दिया, 'फुरसत से पढूँगा, आजकल फिलहाल प्रेम जनमेजय की व्यंग्य पुस्तक पढ़ रहा हूं'- 'कौन कुटिल खल कामी'। उसने पूछा, 'ये प्रेम जनमेजय कौन से व्यंग्यकार हैं? असली व्यंग्यकार तो हम हैं और दैनिक पत्रों में थोक के आज माल सप्लाई करने वाले हमारे जैसे कुछ अन्य हैं।'

अब ऐसे अखबारी व्यंग्यकारों के लिए भला क्या कहा जाए। अगर प्रेम जनमेजय तात्कालिक घटनाओं पर तुरत-फुरत व्यंग्य नहीं लिखते तो अच्छा ही रहता। अक्सर ये अखबारी व्यंग्य उतने ही फूहड़ और सतही होते हैं, जितनी कि कवि-सम्मेलनी हास्य कविता। प्रेम जनमेजय इस स्थिति से बचकर चलने वाले व्यंग्यकार हैं और व्यंग्य-कर्म को पूरी गंभीरता से निभाते हैं। उनके व्यंग्य सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं पर तात्कालिक सतही हास्यास्पद प्रतिक्रिया नहीं है और यही कारण है कि वे क्षणभंगुर नहीं हैं। उनके यहां अनेक नए विषय भी हैं और अभिव्यक्ति का नया ढंग भी है। उन्होंने कम्प्यूटर, एक्सचेंज ऑफर, टी.वी. के कारण बदलती जिंदगी की छवि, जुगाड़ संस्कृति, महत्वाकांक्षी प्रवासी लेखिकाओं जैसे अनेक नए विषयों पर व्यंग्य रचना की है। बात कहने का उनका अपना नया और अलग अंदाज भी है। इस नए और अलग अंदाज का एक उदाहरण देखिए- 'मैया मोही विदेश बहुत भायो' से - राधेलाल के लिए विदेश जाने का प्रस्ताव ऐसा था जैसे बिल्ली के भाग से छींका टूटा, पुलिस वाले को मर्डर केस मिला, भ्रष्ट मंत्री को भ्रष्टाचार निरोधक मंत्रालय और अमेरिका को बिन लादेन मिला।'एक और उदाहरण व्यंग्य 'हिन्दी कम्प्यूटर' से देश की सेवा करने वालों के चरणों पर जनता पाई जाती है, सुरक्षा करने वालों के चरणों पर कानून पाया जाता है, धर्म के सेवकों के तले धर्म और साहित्य के सेवकों के चरणों में साहित्य।'

सामाजिक, रक्षा संबंधी, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों के विरोधाभासों पर एक ही वाक्य में व्यंग्य कर देना प्रेम जनमेजय के लेखकीय कौशल का प्रतीक है। विस्तार से तो बातें बहुत से लेखक कह देते हैं, पर संक्षेप में अनेक मुद्दों को एक साथ वह भी व्यंग्यात्मक तेवर में- कितने व्यंग्यकार उठा पाते हैं। यही कहना है कि प्रेम हमें बहुत से व्यंग्यकारों से अलग खड़े नज़र आते हैं। ऐसी पंक्तियों से यह भी जाहिर होता है कि उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में अद्भुत खिलंदड़ापन है जो उनकी रचनाओं को चमकदार बनाते हुए तरोताज़ा रखता है। इसका का एक कारण यह भी है कि जैसा ऊपर बताया गया है, प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य में प्राय: नए विषयों को उठाया है, वरना तो हमारे अधिकांश व्यंग्यकारों के प्रिय विषय 'नेतागण' हैं। कहना न होगा कि अब तक जितने नेता नहीं पिटे होंगे, उससे अधिक यह विषय पिट चुका है। ऊपर दिए गए उदाहरणों से यह भी संकेत मिलता है कि प्रेम जनमेजय की सफलता के पीछे एक और रहस्य है। सो यह कि वे कहीं-कहीं परंपरागत मुहावरेदार भाषा का इस्तेमाल भले ही करते हैं, किंतु प्राय: अपने ढंग का अलग मुहावरेदार शब्द विन्यास लेकर उपस्थित होते हैं। अगर प्रेम 'बिल्ली के भाग से छींका टूटा' कहते हैं तो 'भ्रष्ट मंत्री को भ्रष्टाचार-निरोधक मंत्रालय' मिलना भी कहते हैं। पुरानी शब्दावली में इसे ही 'चोर के हाथ में चाबी देना' कहा जाता है। इसी तरह एक अन्य व्यंग्य में वे एकदम नए अंदाज में कहते हैं कि 'परिवार और मोहल्ले के लिए मैं विश्व बैंक हो गया।' मुहावरा है कि 'सामने कुआं और पीछे खाई'। प्रेम जनमेजय नया मुहावरा गढ़ते हैं कि 'सामने पुलिसवाला था, पीछे कसाई'। उनके कुछ अन्य दिलचस्प प्रयोग हैं- 'तयशुदा सम्मान, व्ययशुदा सम्मान' या 'व्यंग्यकारों द्वारा ज्वलंत विषयों पर ज्वलनशील व्यंग्य' अथवा 'राधेलाल के चेहरे पर कृषि दर्शन वाली शुष्कता'। जिन्होंने दूरदर्शन का उपयोग होते हुए भी आकर्षणविहीन 'कृषि-दर्शन' कार्यक्रम देखा होगा, वे प्रेम जनमेजय के व्यंग्यों के स्थायी चरित्र राधेलाल के चेहरे की शुष्कता को सहज ही समझ लेंगे।

सामाजिक, रक्षा संबंधी, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों के विरोधाभासों पर एक ही वाक्य में व्यंग्य कर देना प्रेम जनमेजय के लेखकीय कौशल का प्रतीक है। विस्तार से तो बातें बहुत से लेखक कह देते हैं, पर संक्षेप में अनेक मुद्दों को एक साथ वह भी व्यंग्यात्मक तेवर में- कितने व्यंग्यकार उठा पाते हैं।

दरअसल प्रेम जनमेजय ऐसे व्यंग्यकार हैं जो भले ही बड़ी मात्रा में न लिखते हों, किंतु वे जब भी लिखते हैं, उनका व्यंग्य पिछली रचना से दो कदम आगे, पुनरावृत्ति से मुक्त और पहले से अधिक तराशा हुआ होता है। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उनका कोई व्यंग्य-संग्रह अपने पिछले व्यंग्य-संग्रह के प्रकाशन के एक लंबे अंतराल के बाद आता है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

नवल-प्रेम एक लव स्टोरी!

■ *डॉ. हरीश नवल*

बिना किसी पूर्व सूचना के श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी जी के देहरादून वाले घर में पहली बार मैं और प्रेम जनमेजय 1991 के दिसंबर मास में गए थे। घंटी बजाई, श्रीमती त्यागी ने अपने कक्ष की खिड़की का परदा हटाकर बरामदे में खड़े प्रेम तथा कुछ दूरी पर लॉन की तरफ फूलों को ताकते मुझे देखा, भीतर से त्यागी जी की आवाज़ आई, कौन है?' श्रीमती त्यागी की आवाज़ गई, इधर तो प्रेम जनमेजय हैं, उनके साथ कोई दूसरे भी हैं, शायद हरीश नवल ही होंगे, मैं ड्रांइगरूम का दरवाज़ा खोलती हूँ। मैं और प्रेम एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराए तभी त्यागी जी की वाणी गूँजी, शायद क्यों? होंगे ही हरीश नवल। जहाँ प्रेम वहाँ नवल, जहाँ नवल वहाँ प्रेम।

'शरद जोशी प्रसंग' पर भोपाल में भी यही हुआ। नईम जी ने मुझे देखा, बोले, 'प्रेम कहाँ है?' सरोज कुमार जी उधर प्रेम से हाथ मिलाते हुए पूछ रहे थे, 'हरीश कहाँ है?' दयाप्रकाश सिन्हा, नंदन जी, यशवंत व्यास, ज्ञान चतुर्वेदी से लेकर आशुतोष देशमुख तक हम दोनों को एकदूजे के बिना पहचान भी नहीं रहे थे।

इतनी घनिष्ठता होने या दीखने पर मुझे प्रेम जनमेजय के विषय में लिखने में समझ नहीं आता कि कहाँ से शुरू करूँ। छोड़ने का मन नहीं होता पर इतिहास छोड़ दूँ और केवल प्रेम के व्यक्तित्व के विषय में लिखना चाहूँ तो उसकी इतनी सारी शेड हैं कि परीक्षार्थी की भाँति खंड-खंड में रेखांकित करना होगा।

व्यंग्यकार के रूप में प्रेम की सबसे बड़ी ताकत मुझे उसकी भाषा और उपमान लगते हैं। जीवन की नित्यप्रति देखी जाने वाली तथा अमहत्वपूर्ण समझी जाने वाली स्थितियों पर जब प्रेम लिखते हैं तो हम सोचते हैं, 'अरे! इस पर भी लिखा जा सकता था?' और यह आश्चर्य वैसा ही होता है जैसा ब्रेख्त के नाटकों के विषय देखकर होता है।

कमसिन अवस्था में ही प्रेम व्यंग्यकार के रूप में ख्यात हो गए थे। उस दिन एक शोधकर्ता मिल गए, प्रेम के विषय में बात करते रहे, प्रेम-साहित्य को पढ़कर और अपने बचपन से निरंतर पढ़ने पर उनको लगा था कि प्रेम जी की अमृत जयंती होने वाली होगी।

हिन्दी गद्य व्यंग्य लेखन पर 1991 में माध्यम का युवा सम्मान पाने के प्रथम हकदार प्रेम ही थे। इस श्रेष्ठ और जेनुइन चयन पर चयनकर्ता भी

व्यंग्यकार के रूप में प्रेम की सबसे बड़ी ताकत मुझे उसकी भाषा और उपमान लगते हैं। जीवन की नित्यप्रति देखी जाने वाली तथा अमहत्वपूर्ण समझी जाने वाली स्थितियों पर जब प्रेम लिखते हैं तो हम सोचते हैं, 'अरे! इस पर भी लिखा जा सकता था?' और यह आश्चर्य वैसा ही होता है जैसा ब्रेख्त के नाटकों के विषय देखकर होता है।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

साधुवाद के अधिकारी रहे। प्रेम के लिए यह उसको मिला पहला सम्मान था जो पहले प्यार की तीव्र अनुभूति के साथ-साथ प्रेम में यह गौरव भी देता है कि उनका नाम शरद जोशी जैसे समर्थ और यशस्वी नाम के साथ जुड़ा था जिन्हें वरिष्ठ सम्मान मिला था। कुछ वर्ष पहले स्नेहलता व्यंग्य-भूषण पुरस्कार उन्हें उनके हक़के कारण ही मिला है।

1949 में इलाहाबाद में जन्मे, दिल्ली में युवा हुए और मूलत: पंजाब से संबद्ध प्रेम के व्यक्तित्व में हम इलाहाबादी बौद्धिकता, भाषा संस्कार, पानसुख और लेखकीय अंदाज़, दिल्ली की वैभवप्रियता, ईमानदारी से धन अर्जन-वर्द्धन की कामना, सोसायटी मूवता, अहिंसक चतुराई और व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा पंजाब की मस्ती, कबीरपन और मेहनतप्रियता देख सकते हैं।

प्रेम (ढाई आखरवाला) के जितने रंग होते हैं प्रेम जनमेजय के भी उतने ही हैं बल्कि अनेक विरोधी रंग भी हैं। शेयर मार्किट का ब्रोकर मंगल सोच भी नहीं सकता कि प्रेम एक बड़े साहित्यकार हैं, बकौल उसके वह शेयर बाज़ार के विषय में प्रेम के व्यापक ज्ञान में से शेयर करता है (हुए ना आप भी हैरान!)। क्रिकेट मैच देखने/कमेंट्री सुनने में भी उसकी मशहूरी है। उसके पड़ोसी श्री मलिक को पता ही नहीं कि जिन प्रेम प्रकाश जी के साथ वह सुबह सैर करता हुआ क्रिकेट पुराण वाचन और श्रवण करता है, जिसके लिए क्रिकेट के मामले में प्रेम व्यास जी और स्वयं सूत जी महाराज हैंवे ही प्रसिद्ध लेखक प्रेम जनमेजय हैं। अपने कॉलेज की स्टाफ एसोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. प्रेम प्रकाश जो दो वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के लिए एक हव्वा बने हुए थे, उनके लिए शिक्षक संघ के पदाधिकारी कल्पना भी नहीं कर पाते होंगे कि जिस एक व्यक्ति की ढाल के कारण उनके तीर तलवार खुंडे हो रहे थे, वह व्यंग्य का एक महत्वपूर्ण तीरंदाज़ है। बढ़िया से बढ़िया खाने-पीने के शौकीन प्रेम को नरूला रेस्टोरेंट के आईसक्रीम पार्लर के सेल्समैन, कॉफी होम के वेटर, मोती महल और सिंह कबाब के सरदार जी, बी. वन मार्केट का पान वाला एक बड़ा और बिगड़ा रईस ही समझते हैं जो टिप हमेशा डबल ही देता है और आइसक्रीम भी डबल खाए बिना उसे मज़ा नहीं आता।

साक्षरा अपार्टमेंटस के अनेक निवासी प्रेम को अलसुबह, मुद्रिका सड़क पर सैर करते देखते हैं तो अक्सर बात करते हैं कि प्रेम जी इतना घुमते-घामते रहते हैं कुछ लिख पढ़ भी लिया करें। जब प्रेम जी साक्षरा अपार्टमेंट्स की सोसायटी के सचिव थे और दिन-रात सोसायटी के काम में लगे रहते थे तब भी बुजुर्गनुमा पड़ोसीजन उन्हें लिखने-पढ़ने के लिए चेताया करते थे और यह तब की बात है जब प्रेम का तीसरा व्यंग्य संग्रह 'पुलिस पुलिस' आ चुका था और 'मैं नहीं माखन खायौ' छप रहा था। भारती जी की भाँति सारा दिन व्यस्त रहने वाले प्रेम लिखने के मामले में भी उन जैसे अगले दिन लिखने वाले ही हैं।

आगे बढ़ने से पूर्व मैं आपको इत्तिला दे दूँ कि प्रेम शेयर मार्किट ब्रोकर मंगल, कमेंट्री शौकीन मलिक, शिक्षक संघ के पदाधिकारी, सिंह कबाब के सरदार जी और बी-वन का पान वाला-ये सब दूर-दूर तक मुझे नहीं पहचानते और साक्षरा में ही मैं रहता था पर सैर करता पाया नहीं जाता था तो भी हमारी दोस्ती बेजोड़ रही है, मैंने बताया था न कि ये ही तो प्रेम के वशिष्ट अंदाज़ हैं। हम दोनों ने एम.ए. एक ही कॉलेज से किया है, मैं एम.ए फाईनल में था और प्रेम एम.ए. पूर्वार्द्ध में। हमने आठ साल तक एक ही कॉलेज में पढ़ाया। जब मैं उस कॉलेज का विभागाध्यक्ष था, तब मैंने प्रेम और रमेश उपाध्याय को उस विभाग में शामिल कर विभाग की शान बढ़ाई थी। हम तीनों की तिकड़ी उस समय प्रसिद्ध थी और हम साहित्यिक चर्चाओं में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया करते थे। मैंने और प्रेम ने कई साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए, जिसमें व्यंग्य पर किया गया 1974 का कार्यक्रम, क्या व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा है, खासा चर्चा में रहा। उस कार्यक्रम में जैनेन्द्र कुमार, रवीन्द्र नाथ त्यागी, कन्हैयालाल नंदन और विजयेन्द्र स्नातक जैसे दिग्गज साहित्यकारों ने भाग लिया और मीडिया में भी उसकी विशेष चर्चा हुई, धर्मयुग में रिपोर्ट छपी।

हम दोनों की रचनायें समांतर रूप से धर्मयुग

1949 में इलाहाबाद में जन्मे, दिल्ली में युवा हुए और मूलतः पंजाब से संबद्ध प्रेम के व्यक्तित्व में हम इलाहाबादी बौद्धिकता, भाषा संस्कार, पानसुख और लेखकीय अंदाज़, दिल्ली की वैभवप्रियता, ईमानदारी से धन अर्जन-वर्द्धन की कामना, सोसायटी मूवता, अहिंसक चतुराई और व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा पंजाब की मस्ती, कबीरपन और मेहनतप्रियता देख सकते हैं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

और सारिका में छपती रहीं। हम दोनों ने एक साथ प्रयास किया कि व्यंग्य विधा को गम्भीरतापूर्वक लिया जाए और हमारे प्रयास सफल भी हुए। हम दोनों ने अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ हिन्दी वालों की छवि सुधारने का प्रयास किया। हमने ठान लिया कि हम यह कभी नहीं लगने देंगे कि हिन्दी के अध्यापक किसी और से कुछ कम हैं। यह कहा जा सकता है कि हमने हिन्दी अध्यापकों की छवि को फेसलिफ्ट दिया। हम दोनों ही प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. उदय भानू सिंह, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. राम दरश मिश्र और डॉ. निर्मला जैन जैसे श्रेष्ठ अध्यापकों से पढ़े हैं। हम दोनों ही गगनांचल पत्रिका से जुड़े रहे और संपादक कन्हैयालाल नंदन जी के सहायक भी रहे। हिन्दी व्यंग्य के उत्थान के लिए हम दोनों अनूप श्रीवास्तव के निर्देशन में चल रही संस्था माध्यम के साथ भी जुड़े रहे और लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय संगोष्ठियों और नवीन विषय चयन में भी भूमिका निभाते रहे हैं।

साहित्यिक आयोजन के इतर हमारी दोस्ती और भी कई संदर्भों में जीवित रही और पुष्पित व पल्लवित होती रही। मैं शहादरा में रहता था और प्रेम की ससुराल शहादरा बनी तो आशा, यानि प्रेम की अर्धांगनी का मेरी बहन होना स्वाभाविक ही हो गया है। हम दोनों एक साथ ही यूनिवर्सिटी टीचर्स ग्रुप हाउसिंग कोपरेटिव सोसायटी के मेम्बर बने थे। हमारे घर भी एक ही ब्लॉक में निकले, मेरी स्टडी प्रेम की छत के नीचे है।

यह प्रेम बहुत ही स्वाभिमानी है, इससे दोस्ती करने से पहले कई चेतावनियाँ मैं आपको दूँगा। फिलहाल उसके स्वाभिमान के केवल दो किस्से बताता हूँ। नंदन जी को आप जानते ही हैं, जी हाँ अपने कन्हैयालाल नंदन जिन्हें आदमी को समझने की खूब तमीज़ थी, हम दोनों को ही बहुत प्यार करते थे। प्रेम एक दफा उनसे मिलने 'सारिका' के दफ्तर गए, भीतर चिट भिजवाई- नंदन जी ने बुलवाया नहीं, बाहर ही बाहर से बाहर कर दिया। घर लौटकर प्रेम भाई ने एक तीखा व्यंग्यात्मक पत्र नंदन जी को पोस्ट कर दिया। नंदन जी समझ गए भूल हो गई, उनका भी बड़प्पन कि प्रेम को प्रेमपत्र लिखा और फिर आलम यह हुआ कि आख़िर तक नंदन जी प्रेम से घबराते थे कि कहीं उसका स्वाभिमान टूटे नहीं और कहीं एक दनदनाता पत्र फिर से न आ धमके।

जब प्रेम के यहाँ टेलीफोन नहीं था, वह पड़ोस के फोन का प्रयोग करता था। एकाध बार उसने सुन लिया कि पड़ोसी प्रेम के फोन-प्रयोग की व्याख्या निंदनीय शब्दों में कर रहे हैं- अब प्रेम तो ऐसे हैं कि जो दिल में बुरा-अच्छा विचार हो यदि उन्हें बता दिया जाए तो स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत-प्रशंसा, अप्रस्तुत निंदा उन्हें बेचैन कर देती है।

यह शख्स कभी-कभी अनायास चुप्पी साध लेता है, आप सोचेंगे नाराज़ है, गुस्से में है, कुछ पूछेंगे, नहीं बताएगा, गहरी से गहरी बात दिल में कहीं गहरे में रख लेगा। शुरू-शुरू में जब ऐसा हुआ तो मैं और मेरी पत्नी सुधा यही सोचते रहते थे कि हमने कौन-सी बात ग़लत कह दी जो नहीं कहनी चाहिए थी।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि एक सप्ताह में फोन लगवा लूँगा। अब भला एक सप्ताह में उन दिनों में फोन लगता था क्या? अभी फोन बुक भी नहीं कराया था। भोपाल से डॉ. अंजनी चौहान को बुलाया और उनकी करामात से वी.आई.पी. कोटे से तुरंत फोन लगवाया-आखिरकार वो लेखक और पत्रकार तो थे ही। जो फोन लगा वह पूरे अपार्टमेंट्स में सबसे खूबसूरत फोन था।

यह शख्स कभी-कभी अनायास चुप्पी साध लेता है, आप सोचेंगे नाराज़ है, गुस्से में है, कुछ पूछेंगे, नहीं बताएगा, गहरी से गहरी बात दिल में कहीं गहरे में रख लेगा। शुरू-शुरू में जब ऐसा हुआ तो मैं और मेरी पत्नी सुधा यही सोचते रहते थे कि हमने कौन-सी बात ग़लत कह दी जो नहीं कहनी चाहिए थी, दर्जनों बातों की लिस्ट बन जाती। धीरे- धीरे जन प्रेम खुले तो उन्होंने एक दिन रहस्य बताया कि यदि कहीं भी किसी की कोई बात उन्हें चुभ जाती है तो वे शिथिल-से हो जाते हैं, बहुत कोशिश करते हैं पर तुरंत मूड नहीं बदल पाते। बात चुभेगी कॉलेज में किसी सहयोगी की और वे चुप्पी साध लेंगे और परिवेश के सभी लोग सोचते रह जाएँगे कि शायद कोई ग़लती उनसे हो गई है। अजब से डिप्रेशन में आ जाते हैं प्रेम।

पिछले लगभग पचास वर्षों से हर सोमवार को प्रेम व्रत रखते हैं। कोई धार्मिक भावना नहीं केवल इसलिए कि स्व. लाल बहादुर शास्त्री ने एक वक्त

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

का भोजन छोड़ने की प्रेरक बात कही थी-प्रेम ने दोनों वक्त का ही छोड़ दिया था। मुझे भी यह भली आदत उनके संसर्ग से सात बरस तक रही पर मैं किसी-किसी सोमवार भूल जाता था- वे कभी नहीं भूलते थे।

एक पान वाले से प्रेम नियमित रूप से पान खाते थे, वह एक उत्साही किशोर था। उसकी आगे बढ़ने की इच्छा देखते हुए प्रेम ने उसकी खासी आर्थिक मदद की और आज वह एक छोटी दुकान का मालिक है। पान के पैसे नहीं लेना चाहता किंतु प्रेम सदैव देते हैं और उसे प्रेरित करते हैं कि उसे अच्छी मार्किट में बड़ी दुकान खोलनी है, उस दुकान के खुलने पर वे नि:शुल्क पान की सोचेंगे। आप दो-तीन वर्ष में ही उसकी दुकान मार्किट में देख लेंगे क्योंकि मैं जानता हूँ कि आजीवन उससे नि:शुल्क पान खाने की व्यवस्था प्रेम बहुत जल्द कर लेंगे।

बड़े जीवट वाले जीव रहे हैं प्रेम जनमेजय। अंजनी चौहान के शब्दों में रफ-टफ हीमैन। प्रात: से अपने स्कूटर पर निकलकर वे सत्तर किलोमीटर का दिल्ली का चक्कर लगाकर शाम को घर पहुँचते थे, यदि चंडीगढ़ जाने का कार्यक्रम बन जाए (जहाँ उनके माता-पिता, व भाई रहते थे) तुरंत अपनी कार निकालकर तीन सौ किलोमीटर दूर चंडीगढ़ पहुँच जाते और जाते ही बिना कुछ खाए-पीए भतीजे-भतीजियों को चंडीगढ़ की सैर कराने ले जाते थे, वे बहुत ही पॉपुलर ताया जी रहे हैं।

ताया जी जब वेस्टइंडीज़ से लौटकर आए, पारिवारिक ज़िम्मेदारियों में लद गए। बड़े भाई होने के नाते संपूर्ण परिवार की देख-रेख का जिम्मा वे स्वयं बिना कहे लेते रहे हैं। लौटकर उन्होंने अपने बेटों के विवाह संपन्न किए। उनके स्थायी आवास के प्रबंध किए। भतीजे-भतीजियों की शिक्षा-दीक्षा, कैरियर का ध्यान रखा। छोटे भाइयों को संबल दिया और बीमार पिता के रोग से युद्ध किया। पिताजी चंडीगढ़ में थे और प्रेम उन्हें नियमित रूप से फोन करते थे। उस दिन मैं और प्रेम हिन्दी भवन में डॉ. गोविंद व्यास के पास बैठे थे, एक गोष्ठी आरंभ होने को थी कि चंडीगढ़ से ज़रूरी फोन आया-पिताजी नहीं रहे थे। काँपते से प्रेम ने अपने को दृढ़ किया, हमें सूचना दी और मौन पर शांत उपक्रम से घर की ओर चल दिए तथा उसी संध्या परिवार को लेकर चंडीगढ़ स्वयं कार ड्राइव कर गए।

जून 2008 में प्रेम की श्रद्धेया माता जी का देहांत हो गया। मृत्युपर्यंत उनकी सेवा-सुश्रुषा प्रेम और आशा मन से करते रहे और वर्षों से उनसे छिपाकर रखा कि किस महारोग का उपचार किया जा रहा था। अब बताया जा सकता है कि माँ जी को कैंसर था। माँ को खुश रखने में कभी प्रेम ने अपने भीतर का दु:ख प्रकट नहीं होने दिया।

इस महाकष्टमय परिस्थिति के मध्य प्रेम का लेखन निरंतर गतिवान रहा, अच्छा लिखते हैं, स्तर से नहीं गिरते-अपने दम पर एक बड़ी पत्रिका व्यंग्य यात्रा प्रकाशित करते हैं-वहाँ भी स्तर के साथ समझौता नहीं। सब कुछ जारी है-प्रेम स्वयं संभलते हैं, सबको संभालते हैं... एक लाख का पुरस्कार मिला, तब भी खुश, न भी मिलता तब भी खुश रहते। वे एक प्रकार से स्थितप्रज्ञ हैं?

फिलहाल मैं ही खुद को संभालता हूँ। प्रेमगाथा तो कभी विस्तार से मुझे लिखनी ही है फिलहाल इसे उसका पुरोवाक् मान लिया जाए तो बेहतर रहेगा। मेरे पास प्रेमगाथा लिखने की अपार सामाग्री है, मैं ही लिखूँगा क्योंकि रवींद्रनाथ त्यागी जी ने सच कहा था, जहाँ प्रेम वहाँ नवल, जहाँ नवल वहाँ प्रेम। सो शेष फिर कभी। आमीन! ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

मेरे पालनहार
प्रेम जनमेजय

■ *सूरज प्रकाश*

हमें एक मूर्ति बनानी है। आदमकद। आवक्ष बन जाये तो वह भी चलेगी। नहीं, किसी चौराहे पर लगाये जाने के किसी नेता की नहीं, बल्कि किसी दूसरे फील्ड के आदमी की। किसी दूसरे ही मकसद से बनानी है। बस, मूड आया तो बनानी है। हमें अपने निजी संग्रह के लिए चाहिये। प्रसिद्ध तो हम उन्हें इस मूर्ति से क्या ही करेंगे, वे पहले से ही नामी, गिरामी और सुनामी हैं। हम ये भी चाहते हैं कि जब विद्वान लोग या विभिन्न सम्मान कमेटियों के लोग आते-जाते इस मूर्ति को देखें तो नोबल या ज्ञानपीठ न सही, मूर्तिदेवी, व्यास या इसी कद का कोई और सम्मान दे ही डालें। पद्मश्री भी चलेगी।

तो हम बनाते हैं ये मूर्ति। इसमें लगने वाला सामान मैं बताता चलता हूं, आप जुटाते चलिये। ध्यान रहे, कुछ छूट न जाये। वरना बाद में अफसोस होता रहेगा, ये तो डाला ही नहीं और वो डालना याद नहीं रहा।

कद पांच फुट सात इंच, भव्य सफेद बाल, फोटोजेनिक चेहरा, मंद-मंद मुस्कुराहट, सिगरेट पीने का कोई ऐब नहीं, जूआ खेलने का टाइम नहीं, पक्के यारबाश, दोस्तों से मिलने दूर-दूर जाने में कोई परहेज नहीं, अच्छे वक्ता, समय के पाबंद, वैसे पैंट शर्ट पहनते हैं, लेकिन साहित्यिक जमावड़ों में या छुट्टी के दिन रंग-बिरंगे कुर्ते में देखे जा सकते हैं। बच्चों से बेहद प्यार करते हैं। सिस्टेमेटिक जीवन जीते हैं और खूब घुमक्कड़ी करते हैं। दोस्तों के निकट सम्पर्क में रहना उन्हें अच्छा लगता है।

सबसे पहले आप एकदम काली जुल्फों से शुरू करते हुए झक्क सफेद बालों वाली उम्र तक पहुंचने लायक अध्यापकी का बेस लें। ये सबसे ज्यादा लगेगा। इसमें सही अनुपात में देसी, कच्ची, पक्की और विदेशी अध्यापकी डालें। ये बेस पहले से ही बहुत बारीक छना हुआ और विशुद्ध है इसलिए ज्यादा चिंता करने की ज़रूरत नहीं। अब इसमें 1967 से शुरू करते हुए आपको ढेर सारा लेखन इसमें डालना है। लेखन में ख्याल रखें कि कुछ छूट न जाये। कहानी की गठरी से शुरू करते हुए आप व्यंग्य की भरी भरकम बोरियों में रखा अमूल्य माल धीरे-धीरे डालना शुरू करें। ये आइटम सबसे ज़्यादा है और सबसे ज़्यादा अहम भी। एक-एक शब्द कीमती है और बहुत मन से, जुड़ाव से और आस्था से रचा गया है।

और जो रचनात्मक चीज़ें पड़ेंगी वे इस तरह से हैं - 30 पुस्तकों में सहेज कर रखा गया विपुल साहित्य जिसमें कहानी, कविता, व्यंग्य, नाटक, रेडियो नाटक, उपन्यास, बाल उपन्यास, समीक्षाएं, आलोचनाएं, नवसाक्षरों के लिए लेखन, बाल कथाएं, पुनर्लेखन, संपादन सब आ जायेंगे। लेखक के लिए पहली कहानी का खास अर्थ होता है इसलिए उस कहानी का नाम भी ले लेते हैं- कल आज और कल जो गाजियाबाद से प्रकाशित खिलते फूल के प्रवेशांक में 1967 में छपी थी।

अब एक काम करते हैं - असली नाम बाद में देखेंगे, मूर्ति की पहचान बनी रहे इसलिए हम फिलहाल इसे प्रयागराज के किनारे पंडित जी द्वारा किया गया नाम दे देते हैं- त्रिवेणी प्रसाद। पिता का

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

दिया गया और साहित्य में पैठ बनाने के लिए लड़कीनुमा जो अलग-अलग उपनाम रखे गये थे, मसलन निर्मल, शैल वगैरह, इन पर भी हम बाद में ध्यान देंगे।

तो अगली सामग्री लगेगी - दर्जनों की संख्या में मिले स्थानीय, देशी, विदेशी, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मान और पुरस्कार। ये सब सम्मान और पुरस्कार न हो कर रचे गये शब्द के प्रतिमान हैं। हम मोहल्ला रामलीला कमेटी, कबड्डी कमेटी और लूनिया मोहल्ला ऑल इंडिया यंग क्रिएटिव एंड आर्ट लवर्स कमेटी और आल इंडिया लव लेटर राइटर्स एसोसिएशन द्वारा उनके अप्रतिम योगदान के लिए दिये गये सैकड़ों हज़ारों सम्मानों को नहीं लेंगे क्योंकि वे बहुत ज्यादा हैं और हमारा अनुपात गड़बड़ा जायेगा। पढ़ाई तो खैर उन्होंने की ही है और भरपूर की है और घाट-घाट का पानी पीते हुए की है। सारी डिग्रियों पर दर्ज प्रशस्ति गान लेने होंगे।

अब आते हैं उनके द्वारा देश- विदेश में धारण किये गये पदों की क्रीम पर। ये सारी की सारी लेनी है। देश- विदेश में अतिथि आचार्य, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, साहित्य अकादमी, सांस्कृतिक संबंध परिषद् एवं अक्षरम् के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कार्यक्रमों में भागीदारी को भी सही अनुपात में लेना है। संयोजन कार्य, अध्यक्षीय पद, लेख पाठ एवं चर्चाओं में अध्यक्षता, आलेख पाठ एवं भागेदारी, सैकड़ों संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में व्याख्यान, साहित्यिक गोष्ठियों तथा सम्मेलनों की अध्यक्षता/रचना पाठ/आलेख पाठ वगैरह जुटा लिये गये हैं, बारी-बारी से लेते चलें।

फिर आती हैं सभी चर्चित, अचर्चित पत्रिकाओं, अखबारों में टेम्पो भर प्रकाशित रचनाएं जिन्हें पढ़-पढ़ कर पाठकों का टैम्पो बना रहा। फिर दूरदर्शन के लिए धारावाहिकों का लेखन है, अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों में भागेदारी है, आकाशवाणी के राष्ट्रीय प्रसारण से अनेक नाटकों का प्रसारण है, अनेक रचनाओं के अंग्रेजी, पंजाबी, गुजराती तथा मराठी में अनुवाद हैं, अन्य संस्थाओं से सम्बद्धता है, विषय विशेषज्ञ के रूप में सेवाएं हैं, पाठ लेखन समितियों में भागीदारी है, सलाहकार पद है, हिन्दी - निधि, त्रिनिडाड एवं टुबैगो में काम है, भारतीय सांस्कृतिक सम्बद्ध परिषद् की पत्रिका गगनांचल का सम्पादन है, रूसी सांस्कृतिक केंद्र में इंडो रशियन लिट्रेरी क्लब के महासचिव का पद है, उत्तरप्रदेश सरकार, महाराष्ट्र सरकार, माध्यम संस्थान, लखनऊ तथा युवा साहित्य मंडल, गाजियाबाद की पुरस्कार दात्री समितियों की सदस्यता है, सलाहकार पद है, आदि है, इत्यादि है। 15 अगस्त 1998 को स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती समापन समारोह के आकाशवाणी से सीधा प्रसारण है, 15 अगस्त, 1999 को त्रिनिडाड रेडियो से सीधे प्रसारित भारतीय स्वतंत्रता दिवस पर आयोजित कार्यक्रम के हिन्दी के एकमात्र कमेंटेटर की भूमिका है, भारतवंशियों के महत्वपूर्ण योगदान पर आधारित रचना 'जहाजी चालीसा' का त्रिनिडाड और टुबैगो के तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा लोकार्पण है, ढेरों देशों की यात्राएं हैं, हँसी है, ठहाके हैं, दिल्ली विश्वविद्यालय में कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज में एसोसिएट प्रोफेसर का पद है, घर है, परिवार है, बीवी है, बच्चे हैं, बहुएं हैं, उनके बच्चे हैं, लाखों पाठक हैं, हजारों दोस्त हैं, यार बाशी है, इंटरनेट पर मौजूदगी है, जीमेल, हीमेल, शीमेल है, फेसबुक है और भी बहुत कुछ है जो मोतियों, सुनहरे धागों की तरह मूर्ति को अलंकृत करेंगे, सब के सब आइटम ले लें। इनके अलावा दोस्तों और दुश्मनों द्वारा समय- समय पर इनके सम्मान में लिखे गये हज़ारों शब्द हैं, पत्रिकाओं के यशस्वी संपादकों द्वारा इन पर निकाले गये कई विशेषांक हैं, उन्हें लेना है।

अब सारी सामग्री करीने से लगा देने के बाद हमारे सामने जो मूर्ति बनेगी वह होगी देश के हिन्दी के विश्व प्रसिद्ध व्यंग्य शिरोमणि श्री त्रिवेणी प्रसाद, उर्फ प्रेम प्रकाश उर्फ प्रेम प्रकाश 'निर्मल' उर्फ प्रेम प्रकाश शैल उर्फ परीक्षित कुंद्रा उर्फ प्रेम जनमेजय की। ये सारे नाम तो रहेंगे लेकिन मूर्ति पर नेम प्लेट प्रेम जनमेजय के नाम की रहेगी।

कद पांच फुट सात इंच, भव्य सफेद बाल, फोटोजेनिक चेहरा, मंद-मंद मुस्कुराहट, सिगरेट पीने का कोई ऐब नहीं, जूआ खेलने का टाइम नहीं, पक्के यारबाश, दोस्तों से मिलने दूर-दूर जाने में कोई परहेज नहीं, अच्छे वक्ता, समय के पाबंद, वैसे पैंट शर्ट पहनते हैं, लेकिन साहित्यिक जमावड़ों में या छुट्टी के दिन रंग-बिरंगे कुर्ते में देखे जा सकते हैं। बच्चों से बेहद प्यार करते हैं। सिस्टेमेटिक जीवन जीते हैं और खूब घुमक्कड़ी करते हैं। दोस्तों के निकट सम्पर्क में रहना उन्हें अच्छा लगता है।

प्रेम जनमेजय नाम का यह बंदा अच्छे-खासे खाते-पीते घर का बंदा है। खाते और पीते। खाने से ज्यादा पीने में विश्वास करने वाला। पीने से ज्यादा पिलाने में विश्वास करने वाला। खाने और पीने से खिलाने और पिलाने में ज्यादा सुख पाने वाला। वे बेहतरीन मेज़बान और उससे भी बेहतरीन साका (साकी का पुल्लिंग शायद यही होगा) हैं और जब पिलाते समय पुराने किस्से छेड़ते हैं तो फिर समां बांधने के लिए अकेले ही काफी होते हैं।

बेशक इन्होंने अपने हिस्से के संघर्ष किये हैं, लेकिन कभी भूले से भी उनका जिक्र करना पसंद नहीं करते। हमारी मुलाकातें या तो दिल्ली में होती हैं या मुंबई में। अक्सर दोनों ही जगह वे ही मेज़बान की भूमिका निभाने की पुरज़ोर कोशिश करते हैं।

बेशक वे कई बार खरी-खरी सुनाते हैं लेकिन अब हम व्यंग्य लेखन का चालीस बरस का अनुभव रखने वाले व्यंग्य लेखक से बापू आसाराम या बापू सुदर्शन की तर्ज पर रामकथा की चौपाइयां तो सुनने की उम्मीद नहीं न कर सकते। मैंने तो ऐसे-ऐसे व्यंग्य लेखक भी देखे हैं जो अपनी प्रेमिका से प्रणय निवेदन करते समय भी ज़हर बुझे बाण छोड़ना नहीं भूलते। प्रेम जी बेशक तीखी बात कहते हों लेकिन उनका मन साफ रहता है क्योंकि वे लम्बे चलने वाले रिश्ते में विश्वास रखते हैं।

मैं उन्हें उनके लेखन से पिछले पैंतीस बरस से और व्यक्तिगत तौर पर पैंतीस में से तीस कम यानी लगभग पांच बरस से जानता हूं। अलबत्ता, वे मुझे कब से जानते हैं या कब से नहीं जानते ये मुझे नहीं

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

पता लेकिन इतना ज़रूर पता है कि वे हमेशा मेरे प्रति अपार स्नेह रखते हैं और मिलने की जुगत भिड़ाते रहते हैं।

मेरा सौभाग्य रहा कि उन्होंने दो बार मुझे खुदकशी करने से बचाया। मुंबई में दो ऐसे मौके आये जिनमें मुझे कोई सम्मान लेना था और दोनों ही मौके ऐसे थे कि अगर मेरे साथ प्रेम जनमेजय न होते तो मैं खुदकुशी कर लेता। सम्मान पाने से ज्यादा वे पल अपमान पाने के थे। प्रेम जनमेजय मेरी हिम्मत बढ़ाते रहे और सूली चढ़ते समय सूली के आख़िरी पायदान तक मेरा हाथ थामे रहे। मैं दोनों बार बच गया। लेकिन कसम खा ली कि अगला सम्मान तब तक नहीं लूंगा जब तक मेरी हिम्मत बढ़ाने के लिए मेरे साथ प्रेम जनमेजय नहीं होंगे। यहां दोनों किस्से बयान करना ज़रूरी है ताकि भविष्य में इस तरह से सम्मानित होने वाले लेखक प्रेम जनमेजय के सानिध्य का लाभ ले सकें और खुदकुशी करने से बच सकें। किसी को खुदकुशी करने से बचाने से बड़ा पुण्य और क्या होगा। प्रेम जनमेजय को ये पुण्य कमाने का चस्का है।

पहले मौके पर मुंबई की एक सम्मानदात्री संस्था (ये संस्था पिछले चालीस बरस से सिर्फ सम्मान करती आ रही है और कुछ नहीं करती।) द्वारा एक साथ पांच दर्जन यानी 60 लोगों को सम्मानित किया जाना था और उन साठ में से एक मैं भी था। मैं पसोपेश में था लेकिन प्रेम जनमेजय ने हिम्मत बढ़ायी कि वे कुछ दे ही तो रहे हैं मांग तो कुछ नहीं रहे, ले लो और फिर इस तरह के अनुभव बाद में बहुत काम आते हैं। घबराते क्यूं हो, हम हैं ना। भरोसा उनका और जाना हमारा। हम गये। तीन बजे का कार्यक्रम था और चार बजने तक शुरू होने के कोई आसार नहीं थे। कारण ये रहा कि जिन मंत्रियों के हाथों पुरस्कार दिये जाने थे उनके आने या न आने के बारे में तब तक कोई खबर आयोजकों के पास नहीं थी। खैर साढ़े चार बजे तय हुआ कि सर्वाधिक उम्र के जिन महानुभावों का भी सम्मान किया जाना था, उन्हीं के हाथों बाकियों को सम्मान दे दिये जायें। उन बुजुर्गों को कौन सम्मानित करता या किसने किया होगा, ये हमें पता नहीं क्योंकि हम तो सम्मानित होते ही अपना पदक, शॉल और तुलसी का पौधा लिये तुरंत ही बाहर आ गये थे। अगर न आते तो शर्म के मारे मर जाते और हमें देखते ही और भी सम्मानित रचनाकार मरने को प्रेरित होते और इलजाम हम पर लगता। वैसे आयोजकों की नीयत खराब नहीं थी, वे तो बेचारे पिछले चालीस बरस से बिना कुछ मांगे हर तरह के फिल्मी और इल्मी सम्मान देते चले आ रहे थे लेकिन उनकी निगाह ही कमज़ोर हो तो कोई क्या कर ले। अब हुआ ये कि सम्मान के लिए जिस क्रम से 60 पदक रखे थे, वह क्रम गड़बड़ा गया। सम्मानित होने वाले अब सम्मानित कर रहे थे, क्रम तो बिगड़ना ही था। अब जिस क्रम से सम्मानित होने वाले रचनाकारों के लिए स्लाइड बनाये गये थे, वे भी एनाउंसर की सूची से मिसमैच करने लगे। वह बेचारा रेडियो एनाउंसर था, आवाज़ के लटके- झटके पैदा करके माहौल को फिल्मी बनाने की कोशिश कर रहा था। उसका साथ दे रही थी बार-बार अपनी साड़ी का पल्लू संभालती आवाज़ की दुनिया की तथाकथित महारानी यानी आयोजन-कम-सम्मान-कम-पुरस्कार-कम और अपमान ज्यादा देने वाली संस्था के इकलौते मालिक की इकलौती बेटी। वे दोनों मिलकर समां बांधते सम्मानित होने वाले रचनाकार को बुलाने के लिए और उसकी तारीफ के पुल बांधते, उधर स्लाइड किसी और रचनाकार का चल रहा होता और पीछे की तरफ रचनाकार के नाम का पदक ढूंढ़ने की मुहिम चल रही होती। बेचारा रचनाकार अपनी सीट से उठकर आ चुका होता और अपने अपमान का सामान सौंपे जाने का इंतजार करता रह जाता।

मुंबई में दो ऐसे मौके आये जिनमें मुझे कोई सम्मान लेना था और दोनों ही मौके ऐसे थे कि अगर मेरे साथ प्रेम जनमेजय न होते तो मैं खुदकुशी कर लेता। सम्मान पाने से ज्यादा वे पल अपमान पाने के थे। प्रेम जनमेजय मेरी हिम्मत बढ़ाते रहे और सूली चढ़ते समय सूली के आख़िरी पायदान तक मेरा हाथ थामे रहे। मैं दोनों बार बच गया। लेकिन कसम खा ली कि अगला सम्मान तब तक नहीं लूंगा जब तक मेरी हिम्मत बढ़ाने के लिए मेरे साथ प्रेम जनमेजय नहीं होंगे।

मेरा नम्बर सूची के हिसाब के चौंतीसवां था, लेकिन बुलवाया गया पच्चीसवें क्रम पर। मुझसे पहले बीस इस शहादत का शिकार हो चुके थे। चार आये नहीं थे। न आने वालों की वजह से भी सभी क्रम गड़बड़ा रहे थे। मैंने प्रेम जी को इशारा किया कि सम्मान लेते ही मैं बाहर निकल जाऊंगा और वे भी मेरे पीछे- पीछे खिसक लें।

हम बाहर आये। इरोज सिनेमा के पास पार्क की गयी कार तक पहुंचे। जेब में देखा तो कार की चाबी नहीं। कार के अंदर झांक कर देखा तो इग्नीशन में लटकी नज़र आयी। कार पर हाथ रखा

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

> बेशक वे कई बार खरी-खरी सुनाते हैं लेकिन अब हम व्यंग्य लेखन का चालीस बरस का अनुभव रखने वाले व्यंग्य लेखक से बापू आसाराम या बापू सुदर्शन की तर्ज पर रामकथा की चौपाइयां तो सुनने की उम्मीद नहीं न कर सकते। मैंने तो ऐसे-ऐसे व्यंग्य लेखक भी देखे हैं जो अपनी प्रेमिका से प्रणय निवेदन करते समय भी ज़हर बुझे बाण छोड़ना नहीं भूलते। प्रेम जी बेशक तीखी बात कहते हों लेकिन उनका मन साफ रहता है क्योंकि वे लम्बे चलने वाले रिश्ते में विश्वास रखते हैं।

तो हलका सा कंपन महसूस हुआ। पता चला कि कार स्टार्टिंग में ही है। पिछले चार घंटे से। मेरा सारा गुस्सा गायब हो गया। मैं अब पूरी तरह से तनावमुक्त था। प्रेम जी परेशान कि सूरज इस समय भी इतना सहज कैसे रह सकता है। रविवार का दिन था। आसपास की दुकानों से स्टील का दो फुट्टा स्केल खोज अभियान शुरू हुआ। बंद कार खोलने का ये मेरा आजमाया हुआ टोटका है। अक्सर चाबी अंदर रह जाती है। वैसे एक ऐसा ही स्केल कार के अंदर रखा हुआ है, मेरे पिछले अभियान की निशानी के रूप में। काफ़ी खोजबीन के बाद एक फुट का स्केल मिल गया। उसी को कार के दरवाजे में ऊपर-नीचे करके दरवाज़ा आख़िर खोल ही लिया। वहां खड़े बीसियों तमाशबीनों ने भी मेरे साथ ही राहत की सांस ली। वह फुट्टा मैंने कार पार्किंग का काम देख रहे छोकरे को गिफ्ट कर दिया ताकि किसी और के काम आ सके। तो इस तरह से प्रेम जनमेजय के नेतृत्व में मेरा पहला सम्मान समारोह सम्पन्न हुआ।

दूसरा सम्मान समारोह तो अलग तरह से ही खुदकुशी के लिए प्रेरित करने वाला था। अचानक ही रंगीन आर्टपेपर पर छपी हुई कुछ किताबें आनी शुरू हो गयीं जिनमें किसी पत्रकार, संपादक, प्रकाशक, वितरक और न जाने क्या-क्या गतिविधियों के करने वाले एक मोटे से आदमी की हज़ारों तस्वीरें होंती और इस पूरे जनम में किये गये उसके योगदानों का कारनामा होता। मैं इन अयाचित डाक का कोई जोड़ नहीं बिठा रहा था। आती रही, आती रही। तभी एक दिन एक खत आया कि अलां संस्था मेरे फलां साहित्यिक योगदान के लिए मुझे सम्मानित करेगी! मैं डर गया। अभी सम्मानित होने के पुराने ज़ख्म सूखे नहीं थे। तभी संस्था की ओर से एक फोन आया कि मैं तय दिन आ कर सम्मानित हो ही जाऊं। संयोग से सम्मान वाले दिन प्रेम जनमेजय शहर में थे। उन्हें बताया। वे बोले, चिंता मत करो, हम हैं ना। चले चलेंगे। मेरी हिम्मत बढ़ाने के लिए मेरी पत्नी मधु, प्रेम भाई और उनकी पत्नी आशा भी साथ हो लिये। डर अपनी जगह और रोमांच अपनी जगह।

जब हॉल में पहुंचे तो बस, कार्यक्रम शुरू ही हुआ था। पत्रकारिता की चुनौतियों पर बात हो रही थी। मंच पर पांच-सात विभूतियां बैठी थीं लेकिन नज़र एक ही आ रही थी। यह वही व्यक्ति था जिसके प्रशस्ति गान की किताबें कई दिन से मेरे घर आ रही थीं। हर कुर्सी पर भी उसी का ढेर सारा साहित्य पहले से रखा था। वह आदमी बेशक सफेद कपड़ों में था, बुश्शर्ट के तीन बटन खोले बैठा था लेकिन किसी गैंडे के माफिक बैठा था। उसने मंच पर इतनी जगह घेरी हुई थी कि बाकियों के लिए जगह कम पड़ रही थी। थोड़ी देर में प्रदेश के उप मुख्यमंत्री पधारे और गैंडे की बगल में दुबक कर बैठ गये। पूरे मंच पर सिर्फ वही गैंडा नज़र आ रहा था। जब पुरस्कार दिये जाने शुरू हुए तो पुरस्कार लेने वाले के बारे में कम और देने वाले उस गैंडे के बारे में अधिक बताया जा रहा था। बेशक हॉल भरा हुआ था और मेरे अलावा कुछ और हस्तियां भी गैंडामल के माध्यम से उप मुख्यमंत्री के हाथों सम्मानित होने वाली थीं लेकिन इस बात की शर्त लगायी जा सकती थी कि आज से पहले उस गैंडे ने या उसकी पुरस्कार चयन समिति ने हमारी किताबें देखना या पढ़ना तो दूर, हमारा नाम तक न सुना होगा। ये बात पिछले सम्मान के बारे में कही जा सकती थी लेकिन उस आयोजक ने बेशक मुझे पढ़ा न हो, मेरा नाम ज़रूर सुन रखा था। यहां तो पूरा माहौल ही गैंडामय था और हम सब को सम्मान देकर जैसे हम पर वह गैंडा अहसान कर रहा था। हम वहां से भी कार्यक्रम खत्म होने से पहले ही लुटे-पिटे बाहर आ गये। ज़रा-सी भी देर करते बाहर आने में तो मुझे खुदकुशी के लिए प्रेरित करने का इलज़ाम गैंडे पर ही लगता। लेकिन प्रेम जनमेजय ने एक बार फिर मुझे बचाया और आज भी मैं न केवल ज़िंदा हूं बल्कि उनके बारे में दो शब्द भी लिख रहा हूं।

भगवान प्रेम जनमेजय का भला करे और उनके हाथों ये सत्कर्म कराता चले।

अस्तु। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

प्रेम डियर !

नाथलॉन पूल अगेन...

■ *डॉ. अशोक चक्रधर*

जीवन की आपाधापी के बीच, कभी-कभी किसी बहाने, सायास या अनायास, कुछ ऐसे क्षण भी आते हैं, जब आप कुछ रुककर अपने अतीत को बड़े दुलार से निहारते हैं। विगत के तालाब में स्मृति एक हल्की-सी कंकरिया मार दे तो यादों के अनेक वृत्त आपके वजूद को घेरने लगते हैं। उन वृत्तों के बीच अपने अंतर्लोक के कुछ अंतवृर्त्त भी जा मिलते हैं, एक दूसरे को काटते, फैलाते हुए से। कुछ स्पष्ट से कुछ अस्पष्ट से, अपनी बहुरंगी उपस्थितियों से अहसास दिलाते हैं कि भइए तुम कितनी दूर चले आए हो। तालाब के इस छोर पर और कंकड़ी तो वहां गिरी थी, जीवन के केन्द्र में।

ऐसा भी अक्सर होता है कि एक समय में समानांतर यात्रा करने वाले जब साथ-साथ हों और यात्रा के उतार-चढ़ावों को मिलकर याद करें, अपने-अपने अनुभवों और परिस्थितिजन्य संघर्ष में अपने चुने हुए रास्तों का तुड़ा-मुड़ा नक्शा खोलकर बैठें, तो अतीत में झांकना अच्छा लगता है, क्योंकि उस नक्शे में बहुत कुछ अपना भी होता है।

व्यंग्य-यात्रा'के संपादक और व्यंग्य सहयात्री प्रेम जनमेजय के साथ अपनी हास-परिहास की यात्रा लगभग चालीस वर्ष पुरानी है। एक साल सीनियर हुआ करते थे एम.लिट में, लेकिन पूरी ज़िन्दगी में सीनियर-जूनियर हम दोनों ने कभी नहीं देखा। हम जिस भी काम में लगे रहे मस्ती के साथ और बेबाकी से, एक सकर्मक चेतना से सम्पृक्त।

एक ओर हम लोग, यानी प्रगतिवादी थे, जो 'प्रगति' नाम की संस्था चलाते थे और दूसरी ओर वह लेखक-वर्ग था जो वैचारिक स्वातंत्र्य की चेतना-धारा के साथ अलग-अलग-सा था, पर समय की धारा में सब साथ-साथ बह रहे थे। 'प्रगति' और 'एम.ए. एम.लिट. संघर्ष समिति' के बुलेटिन हम लोग स्टेंसिल काट कर साइक्लोस्टाइल कराते थे, कविता-पोस्टर बनाते थे, कंधे पर टंगा झोला प्रकाशित सामग्री से भरा रहता था। उन्हीं दिनों हिन्दी विभाग के छात्रों-अध्यापकों ने ''मुट्ठियों में बंद आकार'' का प्रकाशन किया जिसमें उस समय के लगभग सभी युवा रचनाकार थे। सुखबीर सिंह के संपादन में 'दिविक' निकला तो एक तरह की अखाड़ेबाजी आरंभ हो गई। अखाड़ेबाजी के इस दौर में प्रेम 'दूसरा दिविक' में दिखाई दिए तो सुरेश ऋतुपर्ण द्वारा संपादित 'समीकरण' में भी दिखाई दिए। हमारे प्रगतिशील खेमे से अलग कृष्णदत्त पालीवाल, प्रताप सहगल, दिविक रमेश, सुरेश धींगड़ा, सुरेश किसलय, हरीश नवल, सुरेश ऋतुपर्ण, पवन माथुर और भी बहुत सारे साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय युवा रचनाकार थे। एक तरह की मीठी प्रतिद्वन्द्विता 'प्रगति' और 'साहित्य-संगम' में रहती थी। कार्यक्रमों के लिए होता था कला-संकाय का कक्ष संख्या बाइस। हमें थोड़ी जद्दोजहद के साथ मिलता था, उन्हें आसानी से। एक-दूसरे की गोष्ठियों में अतिथियों से प्रश्न करना और अपना ज्ञान दिखाना, ये तीरंदाज़ी चला करती थी। हमारी गोष्ठियों में नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर, सर्वेश्वर, प्रयाग शुक्ल, भैरों प्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, सव्यसाची, खगेन्द्र ठाकुर, कांति मोहन, कर्ण सिंह चौहान, सुधीश पचौरी, रमेश गौड़ और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े हुए वरिष्ठ रचनाकार आते रहते थे। इनके अलावा नए-नए साहित्यकार जैसे राज कुमार सैनी, चंचल चौहान, रमेश रंजक, महेश उपाध्याय, जोगेन्द्र शर्मा, रामकुमार कृषक, पुरुषोत्तम प्रतीक, बंसीलाल, कृष्ण कुरड़िया, रेखा अवस्थी आदि का जमावड़ा रहता था।

एक बार प्रेम जनमेजय ने मुझसे कहा था- 'भई, प्रगति के पोस्टर बहुत ही रचनात्मक और कलात्मक होते हैं।' प्रगति को एक विशेष अन्दाज़ से लिखने का तरीका मैंने ही इजाद किया था और उसका लोगो भी बनाया था। उस लोगो में एक चिंतनशील युवक ठोढ़ी पर हाथ रखे हुए है और उसके सहारे एक इंक वाला पैन है, जिसकी निब ऊर्ध्वमुखी है और समानांतर रेखाओं से चौखटे में एक संतुलन बनाया गया है। यह लोगो मेरे हाथ पर

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

इतना सध गया था कि मैं आँख मूंदकर भी बना सकता था। इसी तरह प्रगति भी लिखने में समस्या नहीं आती थी। मेहनत हम लोग खूब करते थे और बड़बोलेपन के शिकार रहते थे। प्रेम से जब भी चर्चाएं हुईं, वे साहित्यकारों के बीच साहित्यिक असहिष्णुता के प्रति चिंतित दिखाई दिए। एक दूसरे से वैचारिक मतभेद हों, परंतु वो खिलाड़ी भावना की तरह होना चाहिए। हम लोग उन दिनों मध्यमार्गी सोच से दूरी बना कर रखते थे। साहित्य प्राथमिक नहीं, जीवन-संघर्ष प्राथमिक है, ऐसा मानते थे। कविता, कहानी से ज्यादा नाटकों और नुक्कड़ नाटकों पर ध्यान देते थे। कविताएं आंदोलनधर्मी हुआ करती थीं।

दरअसल, उस समय वैचारिक रेखाएं इतनी तीखी और अलगाव करने वाली होती थीं कि जैसे एक परिवार में बांट लिया जाए कि चाचा तेरा, ताऊ मेरा। बुआ तेरी, मौसी मेरी। इसी तरह से साहित्यकारों का बंटवारा भी कर लेते थे, उनके मन, मिजाज और विचारधाराओं के रंगों के आधार पर। अपनी समन्वयवादी सोच को प्रेम ने आज तक ज़िंदा रखा है। उनके मित्रों के दायरे में लगभग सभी सोच के सहचर हैं। उनकी यही सोच उनके द्वारा संपादित 'व्यंग्य-यात्रा' में भी दिखाई देती है। प्रेम ने 'धर्मयुग', 'सारिका', 'दिनमान' में लिखा तो प्रलेस के 'जनयुग' में भी लिखा। वे परसाई के न केवल प्रशंसक हैं, बल्कि उन्हें अपना आदर्श भी मानते हैं।

इकहत्तर से पिचहत्तर तक दिल्ली विश्वविद्यालय में एक जीवंत साहित्यिक वातावरण रहा। हमारी तरफ़ कर्ण-सुधीश की विद्वत्ता का जलवा हुआ करता था। प्रेम जनमेजय, पवन माथुर, मुकेश गर्ग, बंसी लाल, मनीष मनोजा हम सब लोग लायब्रेरी से फैकल्टी आते हुए या फैकल्टी से लायब्रेरी जाते हुए या कभी रिसर्च फ्लोर पर कभी सीढ़ियों पर बिन टकराए टकराया करते थे। टकराते थे हमारे विचार। लेकिन मुस्कानों के आदान-प्रदान में कभी कोई कमी नहीं आई। तल्खी नहीं आई। अपने-अपने तख्त पर बैठकर अपने-अपने विचारों की माला फेरते रहे। मालामाल होना कोई नहीं चाहता था। एक धुन थी, एक लगन थी, एक लौ थी जिसमें अपने-अपने मायने और अपने-अपने आइने लेकर बैठा करते थे। अपने आइने में उनकी सूरत दिखाते थे तो वे पलटकर अपना आइना हमारी ओर कर देते थे। इस सबमें व्यंग्य और हास्य कहां से फूटा ये कह पाना मेरे अपने लिए तो मुमकिन है लेकिन प्रेम के बारे में सही-सही अन्दाज़ा नहीं है। हां, उन दिनों प्रेम के हास्य-व्यंग्य उन दिनों की प्रसिद्ध फिल्मी पत्रिका 'माधुरी' में प्रकाशित होने आरंभ हो गए थे। जिसके संपादक अरविंद कुमार थे। उन दिनों नरेंद्र कोहली 'धर्मयुग' के बैठे-ठाले स्तंभ में विशेष चर्चित हो रहे थे। नरेंद्र कोहली प्रेम के गुरु और मार्गदर्शक हैं। प्रेम ने उनके निर्देशन में ही अपना एम.लिट् का लघु शोध प्रबंध लिखा, 'प्रसाद के नाटकों में हास्य व्यंग्य'। पीएच.डी. भी उन्हीं के निर्देशन में की, जिसका विषय भी व्यंग्य पर ही केन्द्रित था।

मैं इधर जामिया मिल्लिया इस्लामिया का हो गया, सन् उन्नीस सौ पिचहत्तर से। दिल्ली विश्वविद्यालय आना-जाना कम होने लगा। लगभग पांच-सात वर्ष प्रेम से मेरा कोई सम्पर्क नहीं रहा। फिर से जुड़े तो रेडियो और टेलीविज़न के ज़रिए। मैं 'कहकहे' नामक एक कार्यक्रम करता था, उसमें मैंने प्रेम को बुलाया। मेरे लिए उनका और उनके लिए मेरा यह नया रूप था। 'फुलझड़ी एक्सप्रेस' में याद किया, वहां उन्होंने लेख पाठ किया। 'वाह-वाह' में बुलाया और इस तरह से मीडिया के मंचों पर यह एक नई पारी थी जिसमें 'प्रगति' और 'साहित्य-संगम' नदारद थे, लेकिन एक नए प्रकार का हास्य-व्यंग्य संगम था। मैं कवि सम्मेलनी दुनिया का लोकप्रिय जीवधारी हो चुका था, फिर भी एक कामना हम कुछ कवियों की बनी रहती थी कि साहित्य और मंच दोनों को परस्पर जोड़ा जाए। इस कामना में डॉ. उर्मिलेश, रमेश रंजक, पुरुषोत्तम प्रतीक और मोहदत्त साथी अपने साथी थे। अभियान ये रहता था कि अपने वरिष्ठ कवियों को बिना इस बात का अहसास कराए कि हम उन्हें कुछ बता या सिखा रहे हैं। अप्रत्यक्ष ढंग से सिखाया या समझाया करते थे।

प्रेम जनमेजय मेरी कविता और मेरे अन्य रचनात्मक कार्यों के प्रशंसक रहे हैं। उन्होंने उन्नीस सौ तिरासी में मेरी फिल्म 'पंगु गिरि लंघै' पर एक शानदार समीक्षा-लेख 'दिनमान' में लिखा। मेरे पचास के होने पर मेरी कविताओं पर उन्होंने विचारात्मक लेख लिखा। उन्हें मेरी 'बूढ़े बच्चे' कविता पसंद है। पर मैंने ये पाया कि वे आँख मूंदकर न तो प्रशंसा करते हैं और न निंदा। वह धृतराष्ट्र नहीं है और न ही हिज़ मास्टर्स वायस। उन्हें

मेरे पचास के होने पर मेरी कविताओं पर उन्होंने विचारात्मक लेख लिखा। उन्हें मेरी 'बूढ़े बच्चे' कविता पसंद है। पर मैंने ये पाया कि वे आँख मूंदकर न तो प्रशंसा करते हैं और न निंदा। वह धृतराष्ट्र नहीं है और न ही हिज़ मास्टर्स वायस। उन्हें जहां भी अवसर मिला या मेरी आवश्यकता हुई, निस्संकोच, एक अधिकार के साथ आदेशात्मक आग्रह किया।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

जहां भी अवसर मिला या मेरी आवश्यकता हुई, निस्संकोच, एक अधिकार के साथ आदेशात्मक आग्रह किया। प्रेम के प्रेम में मैं उनके कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़ में अनेक बार कभी कविता सुनाने और कभी साहित्य परिषद् का उद्घाटन करने गया हूं। उनके साक्षर अपार्टमेंट वाले घर में खूब दावतें उड़ाई हैं, कविताओं की महफिलें सजाई हैं। प्रेम के साथ व्यावसायिक कवि सम्मेलनों में भी शिरकत की है। दो बार तो चंडीगढ़ ही गए हैं।

हास्य और व्यंग्य से जुड़ी अनेक चर्चाओं में हम लोग आमने-सामने भी हुए हैं। मैं जानता हूं कि हमारे संवादों, हमारी चर्चाओं का परिणाम ये निकला कि कवि सम्मेलन के वरिष्ठ हास्य–कवि अचानक अपनी कविताओं में सामाजिक विषयवस्तु लाने लगे। विशुद्ध हास्य कविताओं की तुलना में ये कविताएं ज्यादा मारक और असरकारक रहती थीं, लेकिन प्रेम और उन जैसे पुस्तकीय व्यंग्यकार मंच पर कभी जम नहीं पाए। वे निंदा और आलोचनाएं करते रहे। उन्हें निंदाएं और आलोचनाएं ठीक लगती थीं, क्योंकि मंच की दुनिया संप्रेषण की शर्त के कारण तत्काल तालियां और प्रभावान्विति चाहती है। एक स्तर पर यह बात ठीक भी है, लेकिन कोई सरलीकरण नहीं किया जा सकता। तत्काल संप्रेषण की शर्त पुस्तक या पत्रिका पर लागू नहीं होती। पत्रिका या पुस्तक में आपकी अभिव्यक्ति में स्फीति हो सकती है। आप किसी चीज़ को बढ़ाकर विस्तार के साथ समझा सकते हैं। लेकिन मंच पर तो तत्काल प्रतिक्रिया चाहिए, ठहाका चाहिए, पंच चाहिए और पंच के लिए शब्दों का थोड़ा-सा कौशलपूर्ण प्रपंच चाहिए। वो प्रेम के व्यंग्य-सम्प्रदाय में था नहीं। कहीं-कहीं लहर आती थी, मैं उनको कहता था कि इस लेख को छोटा और मारक बनाया जाए। मुझे खुशी है कि प्रेम ने कभी मेरी बात का बुरा नहीं माना और इसी तरह से मैंने भी नहीं माना, जब वे मंच पर प्रहार करते रहे, तो मैं मुस्कुरा कर उनकी बातें अधिकांशतः स्वीकार करता रहा, लेकिन यह भी कहता रहा कि मैं मंच का एक सिपाही हूं और मंच की सुरक्षा में सदैव सन्नद्ध खड़ा रहूंगा। उसमें कमियां हो सकती हैं, उसी के लिए मेरा आप सबसे आह्वान है कि आइए मिलकर इसे ठीक और दुरुस्त करें। ये दौर था जिसमें कभी वे नहीं माने, कभी हम नहीं माने। लेकिन ज़माने के सामने जारी रहे तिश्ने-ताने।

तीसरी पारी शुरू हुई उन्नीस सौ निन्यानवे में, छठें विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान, लंदन में। मेरे पास कोई खास ज़िम्मेदारी नहीं थी, वे भी खाली-खाली से थे। पर हम लोग उस संप्रदाय के हैं जो खाली-खाली रह नहीं सकता। मैं फोटोग्राफी में जुटा था, प्रेम सम्मेलन की रिपोर्टिंग में लगे हुए थे। पुरानी यादें ताज़ा करने का यहाँ खूब मौका मिला। दिल्ली लौटकर फिर से घुस गए अपनी-अपनी मांद में।

चौथी पारी शुरू हुई प्रेम के साथ, जब वे त्रिनिदाद में थे और तब उन्हें लगा होगा कि भई कौन लोग हैं ऐसे, जिनके साथ हम लड़-भिड़ लेते थे या जिनकी संगत में मज़ा आता था या जिनको उस भाषा का मुहावरा आता है जो हमारे इस पराए देश में हिन्दी-शिक्षण के लिए अनुकूल सिद्ध हो सकता है। सन् 2002 में जब उन्होंने त्रिनिदाद में अंतरराष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी का आयोजन किया तो भारत से बुलाए जाने वाले वाचिक कविता के कवियों में मैं एकमात्र था। हालांकि, प्रेम ने मुझे केवल कवि के रूप में नहीं बुलाया था, अकादमिक सहभागिता और सत्रों की अध्यक्षता के लिए भी आमंत्रित किया था। उन्होंने मेरे अकादमिक सम्मान और सुविधाओं का भरपूर ध्यान रखा।

प्रेम ने त्रिनिदाद में हिन्दी के प्रचार- प्रसार के लिए बहुत काम किया। उन्होंने वहां मेरे माध्यम से कवि सम्मेलन की परंपरा आरंभ की जिसका सिलसिला अभी तक कायम है। मुझे याद है, मई दो हज़ार दो की वह रात जब वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय के हॉल में हमारा कवि सम्मेलन रात एक बजे तक चला, जबकि हॉल महज़ ग्यारह बजे तक के लिए था। अगले दिन संयोजकों में से एक, सिल्विया मूदी कुबलालसिंह ने बताया कि हमारे यहां ग्यारह बजे का मतलब ग्यारह बजे ही होता है लेकिन हॉल का अधिकारी भाषा न जानने के बावजूद कविता की लयात्मकता और श्रोताओं की तन्मयता पर इतना मुग्ध था कि उसने कानून को एक ताक पर रख दिया।

सात-आठ दिन हम साथ रहे। सुबह-दोपहर-शाम-रात हर वक्त की संगत। उनके साथ उनकी पत्नी भी थीं। अच्छा-सा घर था उनका, जिसके पीछे आम के पेड़ लगे थे और दो प्यारे से कुत्ते थे जो सदैव लड़ते रहते थे। कन्हैयालाल नन्दन जी बीमार थे इसलिए उनके घर में ही टिके थे। हम किसी

प्रेम जनमेजय विशेषांक

लॉज में थे। लेकिन प्रेम ने हमारी सुविधाओं का पूरा-पूरा ख़्याल रखा। इतने वर्षों बाद विद्वानों के बीच ये पहला अवसर था जब हम एक-दूसरे को कायदे से और करीब से समझ पाए। खुली सोच और खिले-खुलेपन के साथ। अपनी गुरुआनी डॉ. निर्मला जैन , प्रेम के गुरु डॉ. नरेन्द्र कोहली, उनकी पत्नी डॉ. मधुरिमा कोहली, दिविक रमेश, सी-डैक से डॉ. हेमंत दरबारी, लंदन से तेजेन्द्र शर्मा और अनिल जोशी, मॉरीशस से रेशमी रामधुनी, हंगरी से मारिया नेज्येशी और भी कितने ही विद्वान थे।

वहां मैंने जाना कि प्रेम के अन्दर विश्लेषण शक्ति रखने वाला एक श्रेष्ठ रचनात्मक और संवेदनशील लेखक है। सच्ची और ख़री बात कहने में डरता नहीं है। उनकी संयोजन-शक्ति को मैं भारत में इंडो रशियन लिटरेरी क्लब के महासचिव के रूप में देख चुका था, लेकिन त्रिनिदाद में उन्होंने अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का अद्‌भुत संयोजन किया। त्रिदिवसीय इस संगोष्ठी का उद्‌घाटन वहां के तत्कालीन प्रधानमंत्री पैट्रिक मेनिंग ने किया था और तीनों दिन वहां की सरकार का कोई न कोई मंत्री आता रहा। तीनों दिन विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल डीन आदि उपस्थित रहे। त्रिनिदाद में भारत के राजदूत श्री वीरेन्द्र गुप्ता से भी वहीं परिचय हुआ, जो अंतरंगता में बदलता गया।

पहली बार मैंने देखा कि उनके अन्दर कविता लिखने का भी विकट माद्दा है। जहाजी भाइयों पर लिखा उनका 'जहाजी चालीसा' वहां बहुत चर्चित हुआ है। डॉ. कन्हैयालाल नन्दन ने वहां इस पुस्तक का लोकार्पण किया। मुझे बताया गया कि एक संस्था ने उसकी दस हजार प्रतियां प्रकाशित करके वितरित कराईं और उसे संगीतबद्ध करके उसकी सी.डी. भी बनाई। प्रेम का यह रूप मेरे लिए अपरिचित था जो मुझे अच्छा लगा।

अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी समाप्त होने के बाद प्रेम ने हमारा टुबैगो का कार्यक्रम बनाया। नायलॉन पूल की सैर कराई। नायलॉन पूल के बारे में कहा जाता है कि उसमें डुबकी लगाने से इंसान की उम्र दस साल कम हो जाती है। मेरी उत्सुकता बढ़ी। त्रिनिदाद से एक छोटे से हवाई जहाज से एक दूसरे टुबैगो नामक द्वीप पर जाते हैं और फिर पानी की एक डबल डैकर बोट में जो थोड़ी दूर जाकर पानी में खड़ी हो जाती है। हम पाते हैं कि उग्र समन्दर के मध्य बिल्कुल शांत कोई स्वीमिंग पूल हो जैसे। हरे नीले जल का विराट स्वीमिंग पूल, पानी सिर्फ इतना कि कोई डूब नहीं सकता। अधिक से अधिक कंठ तक। पैरों तले कोमल रेत। शानदार था नायलॉन पूल और जैसा बताया गया था मन पर वैसा ही असर होने लगा। जितने भी साहित्यकार उसमें डुबकी लगाने के लिए कूदे, परमानंद को प्राप्त हुए। संदलेश की श्रीमती मधु उनके कंधे पर चढ़कर किलोल कर रही थीं। पानी में कुछ ऐसा आकर्षण था कि नरेन्द्र कोहली जी मधुरिमा जी के साथ सम्पूर्ण कपड़ों में कूद गए, बाद में कमीज़ उतारी। प्रेम भी अपनी श्रीमती जी के साथ तैरते हुए भरतनाट्यम कर रहे थे। एक अकेला मैं ही था जो इन सबकी तस्वीरें खींचने में मशगूल था और बागेश्री को याद कर रहा था। डायमण्ड बुक्स नरेन्द्र वर्मा और दिविक भी अकेले थे। सचमुच नायलॉन पूल से निकलकर एक स्फूर्ति का एहसास हुआ। हम सब दस-दस साल उम्र कम करके पूल से निकल आए। बोट की छत पर प्राणायाम किया, सूर्य नमस्कार किया। अगली बार दो हज़ार चार में गए। इस बार बागेश्री जी मेरे साथ थीं। अद्‌भुतानन्द रहा।

प्रेम जनमेजय साठ के हो गए या इकसठ के, या अब बांसठ के होंगे, लेकिन अगर आज भी प्रस्ताव रखें कि पचास साल या चालीस साल का होने के लिए टुबैगो चलना है, तो मैं मना नहीं करूंगा। उनसे कहूंगा कि अगली बार इससे भी ज्यादा अच्छा लेख लिखूंगा तुम्हारे बारे में। जिसमें अपनी लड़ाइयों का ज़िक्र नहीं होगा। मैं कहूंगा कि तुम मुझसे ज्यादा अच्छे लेखक हो। मैं कहूंगा कि तुम मुझसे ज्यादा अच्छे व्यंग्यकार हो, तुम मुझसे ज्यादा अच्छा हंसाना जानते हो, पर शर्त यही है कि नायलॉन पूल अगेन। हकीकत ये है कि मैत्री ही वह नायलॉन पूल है जिसमें कितने ही वैचारिक संघर्ष के बावजूद हम निरंतर एक युवा सकारात्मक सोच में डुबकी लगाते रहते हैं। ◆◆◆

दिल्ली से प्रकाशित देश की सर्वश्रेष्ठ समाचार पत्रिका 'दी सन्डे इंडियन' (हिन्दी) ने अगस्त–सितम्बर में 21वीं सदी की 111 हिन्दी लेखिकाओं पर एक संग्रहणीय अंक का संयोजन कर हिन्दी साहित्य को अनुपम भेंट दी है। 'हिन्दी चेतना' की संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा भी इस अंक में सम्मिलित हैं और इसी अंक में उनके द्वारा लिखित लेख 'सात समन्दर पार लेखिकाओं का विपुल संसार' आप ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं। लिंक है :

http://thesundayindian.com/hi/story/hindi-writers-out-side-india-women/7327/

'हिन्दी चेतना' परिवार की ओर से सभी महिला रचनाकारों को बधाई एवं शुभकामनाएँ।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

व्यंग्य को विधा के रूप में पिरोता एक संपादक : प्रेम जनमेजय

■ *मनोहर पुरी*

प्रेम जनमेजय से मेरा मैत्री और स्नेह का संबंध वर्षों पुराना है। मैंने प्रेम के जीवन के विभिन्न पक्षों को बहुत समीप से देखा है। पत्रकार होने के नाते (हालांकि प्रेम मुझे साहित्यकार बनाने पर निरन्तर तुले रहते हैं), मुझे उनकी पत्रकारिकता के प्रति रुचि अधिक आकर्षित करती है। एक अच्छे प्राध्यापक और प्रसिद्ध व्यंग्यकार होने के साथ-साथ उन्होंने संपादन में भी अच्छी पकड़ बनाई है। इस दृष्टि से उन्होंने हिन्दी साहित्य में लघु पत्रिकाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। व्यंग्य-यात्रा के माध्यम से वह आज भी पूरी सक्रियता के साथ इस कार्य में जुटे हुए हैं। क्योंकि प्रेम ने पत्रकारिता में व्यावसायिकता को तनिक भी महत्व नहीं दिया इस कारण व्यंग्य-यात्रा में इसका पूरी तरह से अभाव दिखाई देता है। भले ही यह प्रेम की रुचि के अनुकूल हो परन्तु व्यंग्य-यात्रा की सेहत के लिए मैं इसे बहुत अच्छा नहीं मानता। मेरा मानना है कि व्यावसायिकता को पत्रकारिता पर हावी नहीं होने देना चाहिए परन्तु उसकी पूरी तरह से उपेक्षा करके लंबे समय तक पत्रिका निकालने में कठिनाई ही होती है। अभी तक प्रेम हर प्रकार की कठिनाई का सामना करते हुए गत छह वर्ष से पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन कर रहे हैं यह अपने आप में कोई छोटी बात नहीं है। कोई लघु पत्रिका इतने लंबे समय तक निरंतर प्रकाशित करते रहना और उसे व्यावसायिक भी न बनने देना कोई सहज कार्य नहीं है। इसके लिए प्रेम को कितना अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है इसकी जानकारी है मुझे।

लघु पत्रिकाओं ने सार्थक साहित्य के सृजन में सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि साहित्य में कला का विकास करके नये-नये रचनाकारों की अभिव्यक्ति को अवसर प्रदान किया है। ऐसी पत्रिकाओं का प्रारम्भ अथवा संचालन प्रेम जनमेजय जैसे वही लोग करते हैं जो स्वयं साहित्य के सृजन में संलग्न होते हैं। इस क्षेत्र में संपादक साहित्य में एक सैनिक की भांति कार्य करते हैं। एक लघु पत्रिका के बंद होने के बाद दूसरी पत्रिका उसी प्रकार साहित्य में प्रगट हो जाती है जैसे युद्ध में मोर्चा लेते समय एक सैनिक के धराशायी होते ही दूसरा सैनिक उसका मोर्चा संभालने के लिए सामने आकर उसके स्थान पर डट जाता है। समय- समय पर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विनोद को लेकर अनेक पत्रिकाएँ सामने आयीं और अपनी- अपनी सामर्थ्य दिखा कर विलुप्त होती गई परन्तु निरन्तर नई- नई पत्रिकाओं के निकलते रहने के कारण व्यंग्य की चमक कभी फीकी नहीं पड़ी। जब व्यंग्य लेखन को एक विधा स्वीकार करने में हिन्दी के अनेक महारथियों ने इंकार कर दिया तब भी ऐसी अनेक पत्रिकाएँ अपने पूरे ठाठ से निकलती रहीं जो व्यंग्य की ध्वजा फहराने का कार्य करती रहीं। आज जब व्यंग्य को विधा स्वीकार करने वाले लोगों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गई है, तब भी ऐसी पत्रिकाएँ निरन्तर इसमें अपना पूरा योगदान दे रही हैं। प्रेम जनमेजय द्वारा संचालित और संपादित व्यंग्य यात्रा का इसमें महत्वपूर्ण योगदान है। व्यंग्य को विधा के रूप में पूरी तरह से मान्यता दिलवाने के अपने ध्येय को प्राप्त करने में प्रेम जनमेजय वर्षों प्रयत्नशील हैं।

प्रेम जनमेजय को लघु पत्रिकाएँ निकालने और उन्हें संपादित करने का अच्छा खासा अनुभव है। सत्तर के दशक में प्रेम जनमेजय के गुरु डॉ. नरेन्द्र कोहली ने 'अतिमर्ष' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उनके इस अनुभव का लाभ बाद में प्रेम को उस समय मिला जब उन्होंने 'सार्थक' के संपादन की बागडोर संभाली। जब कन्हैया लाल नंदन गगनांचल के संपादक थे तब प्रेम ने उनके सहायक के रूप में संपादन को गंभीरता से ग्रहण किया। बाद में तो उन्होंने गगनांचल के मानद संपादक के रूप में इस पत्रिका को नये-नये आयाम दिये और उसके कलेवर को एक नई चमक प्रदान की। वह निरंतर नए-नए विषयों पर सोचते रहते हैं और उन्हें किस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए, इस पर पूरी तरह से विचार करते हैं। नए - नए दृष्टिकोणों से किसी विचार को प्रस्तुत करना उनकी अपनी विशेषता है। उनके संपादन में प्रकाशित हुए गगनांचल के अंक स्वयं इसके गवाह

प्रेम जनमेजय विशेषांक

हैं। भले ही पत्रिका के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए वह अपने मित्रों, सहयोगियों और साहित्य प्रेमियों से सहयोग लेने में कोई गुरेज़ नहीं करते परन्तु उनकी दृष्टि व्यावसायिकता से कोसों दूर रहती है। हो सकता है इससे पत्रिका की साज-सज्जा में कोई कमी रह जाती हो परन्तु उसमें पठनीयता का अभाव कतई दिखाई नहीं देता। अन्य मंच पर देखे जा सकते हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

एक प्रेम ने यह प्रयास एकला चलो की तर्ज पर प्रारम्भ किया था और कबीर की भांति हम घर जालौ आपना की राह पकड़ी है। पीर, बाबर्ची और भिस्ती की भूमिका का निर्वाह करते हुए वह किसी संत की तरह भिक्षाम् देहि की पुकार भी लगाते चलते हैं और

एक प्रेम ने यह प्रयास एकला चलो की तर्ज पर प्रारम्भ किया था और कबीर की भांति हम घर जालौ आपना की राह पकड़ी है। पीर, बाबर्ची और भिस्ती की भूमिका का निर्वाह करते हुए वह किसी संत की तरह भिक्षाम् देहि की पुकार भी लगाते चलते हैं और बूंद- बूंद से अपनी गागर की प्यास बुझाते जा रहे हैं।

हैं। कन्हैया लाल नंदन मूलत: पत्रकार ही थे इसलिए उनकी दृष्टि पत्रकारिता से हटती ही नहीं थी। दोस्तों के दोस्त होने और लेखकों से अत्यधिक स्नेह संबंध रखते हुए भी वह किसी रचनाकार को यह कहने से नहीं झिझकते थे कि 'राजे मज़ा नहीं आया।' वह रचना को तब तक मंजवाते अथवा मांजते रहते थे जब तक रचना की गुणवत्ता से पूरी तरह संतुष्ठ नहीं हो जाते थे। यह गुण नंदन जी से प्रेम ने भी ग्रहण किया और रचनाकारों से रचनाएँ किस प्रकार लिखवाने में सफलता प्राप्त करनी है, इसमें वह दक्ष हो गये, परन्तु उनसे यह कहना नहीं सीख पाये कि 'राजे मज़ा नहीं आया।' प्रेम अभी यह गुण सीख रहे हैं। क्योंकि वह पूर्णकालिक संपादक नहीं हैं फलत: उनकी अपनी सीमायें हैं। बहुत कम समय में किसी से रचना लिखवा लेना भी संपादक का एक महत्वपूर्ण गुण होता है। इसके लिए उसे कई बार अपने आस- पास के रचनाकारों पर निर्भर रहना पड़ता है। इतना होने पर भी अपने चारों ओर एक आभामंडल का निर्माण करने की जो मनोवृत्ति आमतौर पर संपादकों में पाई जाती है प्रेम उससे स्वयं को बचाये हुए हैं। व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में आज उनकी जो भी प्रतिष्ठा है वह उनकी अपनी प्रतिभा और परिश्रम के कारण है, किसी पत्रिका के संचालक अथवा संपादक होने के कारण नहीं।

प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्य-यात्रा' साहित्य और समाज में व्यंग्य का वातावरण तैयार करने की इच्छा के साथ ही प्रारम्भ की थी और आज अपने इस प्रयास को वे पूरी तरह से सफल मानते हैं और अपनी इस कठिन यात्रा से पूरी तरह से संतुष्ट भी अनेक ऐसे ही संपादकों की भांति वे केवल आत्मसंतुष्टि के लिए इस अभियान से जुड़े हैं और उसे पूरा करने के लिए दिन-रात कठिन परिश्रम करते हैं। प्रेम जनमेजय मानते हैं कि हिन्दी साहित्य में वह अपना अपेक्षित योगदान दे रहे हैं। वह यह भी स्वीकार करते हैं कि हिन्दी साहित्य को सार्थक चिंतन प्रधान और गंभीर दिशा देने में लघु पत्रिकाओं की जो भूमिका रही है व्यंग्य यात्रा उसी भूमिका को निभा रही है। व्यंग्य यात्रा कई नये रचनाकारों को सामने लाने में सफल रही है और उसने व्यंग्य साहित्य में गंभीर मुद्दों को भी उठाया है। वह कई सार्थक बहसें प्रारम्भ करवाने में सफल रही है। इस पत्रिका ने सार्थक व्यंग्य का स्वस्थ माहौल तैयार किया है। प्रेम ने व्यंग्य के लिए आयोजित बहसों में ऐसे साहित्यकारों को जोड़ा है जो हास्य-व्यंग्य के नाम पर नाक भौं सिकोड़ते हैं। प्रेम ने 'व्यंग्य यात्रा' का रूप एकांगी नहीं रखा है अपितु अन्य विधाओं के चर्चित रचनाकार भी इसके बूंद- बूंद से अपनी गागर की प्यास बुझाते जा रहे हैं।

'व्यंग्य-यात्रा' में प्रेम ने कई नये प्रयोग किये हैं, कई प्रकार के स्तंभ प्रारम्भ किये हैं और अनेक नये रचनाकारों को सामने लाते हुए ऐसे विशेषांकों का प्रकाशन किया है जो कोई सिद्धहस्त संपादक ही कर सकता है। व्यंग्य-यात्रा के विशेषांक न केवल पठनीय हैं वरन संग्रहणीय भी हैं। व्यंग्य-यात्रा के माध्यम से उन्होंने साहित्य में जो नये विचार-विमर्श प्रस्तुत किए हैं उनसे उनकी संपादकीय क्षमता की जानकारी मिलती है। जो विशेषांक उन्होंने निकाले हैं वे साहित्य की धरोहर बनते जा रहे हैं। एक संपादक के रूप में उन्होंने विभिन्न स्थानों पर अपने जौहर दिखाये हैं। उनके संपादन की धार निरंतर तेज़ होती जा रही है। संपादक को जिस निर्ममता से रचना की चीर-फाड़ के बाद उसे सजा संवार कर पाठक के सामने लाना चाहिए उस दिशा में वह निरंतर अग्रसर हैं। ◆◆◆

अपनी अकृत्रिमता में विलक्षण प्रेम

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

■ *सूर्यबाला*

मैं प्रेम को आज से नहीं धर्मयुग के ज़माने से जानती हूं। वे समकालीन व्यंग्य लेखन में मेरे अतिप्रिय सहयात्रियों में एक रहे हैं। छोटे भाई से लेकर सुहृद हितैषी, घनिष्ठ मित्र तक किसी भी संबंध भूमिका के लिए अति उपयुक्त, अतिविश्वस्त। उन्हें लेकर कभी कोई दुविधा व्यापी ही नहीं। कभी भी कोई भी बात, पूरी निर्द्वन्द्वता के साथ उनसे बांट सकती हूं, कोई भी काम उन्हें कह सकती हूं। संकोच यदि व्यापता भी है तो उनके प्रति स्नेह और सम्मानवश, उनकी अतिव्यस्तता को सोचकर, किसी औपचारिकतावश नहीं।

प्रेम हमेशा से दिल्ली में रहे हैं, लेकिन उन्हें देखकर, गए ज़माने का वह कस्बे का आदमी याद आ जाता है जिसके पास हर किसी के सुख-दुःख सुनने का समय भी है, सब्र भी। उनके पास वह कंधा है जहां कोई भी अपनी उदासी बांट सकता है। जो भी सामने आता है, उसी के स्तर पर अपने को लाकर मित्रवत हो लेते हैं प्रेम। हर किसी के यारबाश। चेहरे से लेकर वेशभूषा तक, आज की सारी बाहरी कृत्रिमताओं का विलोम नज़र आता है उनमें। अपने आप में गुम लेकिन सबके लिए मौजूद।

सादगी की यही छटा उनकी सहज प्रवाही बातों में भी विद्यमान रहती है। बड़ों के लिए एक अकृत्रिम सम्मान भाव और छोटों के लिए स्नेह, संरक्षण का विश्वसनीय संबल। दोनों के बीच ही अपनी बात मनवाने की कोई जल्दबाजी नहीं...लेकिन अपनी बात सुनवा ले जाने का पूरा इत्मीनान, यह आत्मविश्वास प्रेम की सबसे बड़ी पूंजी है।

इतनी सारी विशिष्टताओं के बीच यह व्यक्ति कैसे इतना सादा सूदा-सा बना रहता है, सबसे बड़ा आश्चर्य यही। मैंने कभी उन्हें उत्तेजित होते नहीं देखा, न बेवजह की बहसबाजी में रुचि लेते। जो भी कहना होगा बड़े धैर्यपूर्वक कहेंगे और जितना कहेंगे उससे ज्यादा सुनेंगे और अपनी बात को बिना उग्र हुए पूरी तरह स्पष्ट कर जाएंगे।

प्रदर्शन के इस चरम बेशर्म समय में जब पत्रिका निकाल कर उसके माध्यम से स्वयं को स्थापित, प्रतिष्ठित करने और अपनी डुगडुगी आप बजाने की धूम मची हुई है, प्रेम इस ओछी प्रवृत्ति से अपने आपको बचाकर पाक साफ चल रहे हैं। व्यंग्य लेखन तथा गंभीर व्यंग्यालोचन से जुड़ी 'व्यंग्य यात्रा' जैसी परिपक्व और अनूठी पत्रिका निकालने के बावजूद 'अहो रूपं अहो ध्वनि' वाले अश्लील ट्रेंड से कोसों दूर वे पत्रिका की गरिमा और एक संपादक के दायित्व का बखूबी निर्वाह कर रहे हैं।

> "प्रेम हमेशा से दिल्ली में रहे हैं, लेकिन उन्हें देखकर, गए ज़माने का वह कस्बे का आदमी याद आ जाता है जिसके पास हर किसी के सुख-दुःख सुनने का समय भी है, सब्र भी। उनके पास वह कंधा है जहां कोई भी अपनी उदासी बांट सकता है। जो भी सामने आता है, उसी के स्तर पर अपने को लाकर मित्रवत हो लेते हैं प्रेम।"

इस पत्रिका से जुड़ी परिकल्पना और विचार जब उन्होंने मेरे सामने व्यक्त किए थे तब यद्यपि मैंने एक अति उत्साहवर्द्धक और सहयोग के आश्वासन से भरपूर पत्र उन्हें भेज दिया था (वह पत्र 'व्यंग्य यात्रा' के प्रथम अंक में प्रकाशित भी हुआ था) किंतु प्रेम प्रखर व्यंग्यकार के साथ इतने विलक्षण प्रतिभा संपन्न संपादक भी प्रमाणित होंगे, यह मेरे लिए अकल्पनीय था। आज 'व्यंग्य यात्रा' मात्र एक पत्रिका नहीं, वह सम्मानित मंच है जहां हिन्दी व्यंग्य-लेखन और व्यंग्यालोचन का सर्वोत्तम, पूरी गरिमा के साथ प्रतिष्ठित है। इसका पूरा और एकमात्र श्रेय प्रेम जनमेजय 'भगीरथ' को ही देना होगा। हमारे देखते-देखते प्रतिभा, परिश्रम और प्रेम एक दूसरे के पर्याय हो गए।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

आत्ममुग्धता और आत्मप्रदर्शन उनकी प्रकृति में ही नहीं। कभी-कभी तो अति सामान्य बने रहने की उनकी प्रवृत्ति उनके ही व्यंग्यकार के प्रति अनुदार होती दृष्टिगत होती है जब वे अपने व्यंग्य संग्रह 'कौन कुटिल खल कामी' की भूमिका में कहते हैं- ऐसा नहीं कि इस बीच कुछ नहीं लिखा पर जो लिखा उतने से मन संतुष्ट नहीं...

इतना सब करते हुए भी किसी तरह का बड़बोलापन नहीं। पैर हमेशा मज़बूती से टिके रहते हैं ज़मीन पर। मैंने प्रारंभ में कहा है कि प्रेम दिल्ली के होकर भी दिल्ली के नहीं लगते। इसी तरह वे इस ज़माने के लेखक भी नहीं लगते। आत्ममुग्धता और आत्मप्रदर्शन उनकी प्रकृति में ही नहीं। कभी-कभी तो अति सामान्य बने रहने की उनकी प्रवृत्ति उनके ही व्यंग्यकार के प्रति अनुदार होती दृष्टिगत होती है जब वे अपने व्यंग्य संग्रह 'कौन कुटिल खल कामी' की भूमिका में कहते हैं- ऐसा नहीं कि इस बीच कुछ नहीं लिखा पर जो लिखा उतने से मन संतुष्ट नहीं... किसी लेखक में सादगी और पारदर्शिता की ऐसी मिसाल आज मिलनी मुश्किल है, वह भी उस व्यंग्यकार से जिसकी कलम ने सीता अपहरण केस, पुरस्कारं देहि तथा ये पीड़ित जनम-जनम के' जैसी प्रहारक और बेधक व्यंग्य रचनाएं लिखी है।

उदाहरण के लिए पीड़ित ... की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

'मैं उनके रोने से प्रभावित, अगले दिन उनके घर पहुंच गया। पूरा परिवार भूकंप पीड़ा का बजट बनाने में व्यस्त था। उम्मीद पर दुनियां जीती है और यह दु:खी परिवार भूकंप पीड़ा पर जीवित था। पत्नी को पूरी आशा थी कि इस बार उसका जड़ाऊ हार अवश्य बन जाएगा, बेटे को आशा थी कि उसकी बाइक ज़रूर आ जाएगी।...'

'व्यंग्य यात्रा' का ताज़ा अंक मेरे सामने है। मैं विस्मित हूं इस लेखक की अतिविनम्र आत्म-स्वीकृतियों पर। वह झुक कर औरों को झुकाने की कला जानता है। पत्रिका निकालने की योजना के समय उन्होंने पूरी ईमानदारी से लेखकों को पारिश्रमिक देने की बात कही थी। पारिश्रमिक देने की इस प्रक्रिया में प्रेम ने मुझ पत्रम्-पुष्पम् के रूप में चैक भेजा। मुझे स्वीकार करने में बहुत कष्ट हो रहा था। प्रेम किन आर्थिक कठिनाइयों के बीच पत्रिका निकाल रहे हैं, मैं जानती थी। प्रेम के इस आयोजन में मैं सहयोग नहीं कर पा रही हूं और उससे पारिश्रमिक लेना मेरे मन को स्वीकार्य नहीं था। मैंने 'व्यंग्य यात्रा' के नाम एक चैक काटा और प्रेम द्वारा भेजे गए पारिश्रमिक चैक को पत्र के साथ नत्थी किया तथा एक टिप्पणी के साथ प्रेम को भेज दिया। हफ्ते भर बाद प्रेम का फोन आता है-

आपने गज़ब कर दिया, अभी तक संपादक लेखक को पारिश्रमिक भेजता था, आपने संपादक को पारिश्रमिक भेज दिया।'

मुझे मालूम है, पत्रिका की गुणवत्ता और स्तर में समझौता न करने के कारण प्रेम निरंतर उसके आर्थिक पक्ष से जूझते रहते है। इसे वे छिपाते भी नहीं हैं। वे बेहद साफगोई और विनम्रता से स्थिति से जुड़ी अपनी अवशता लोगों के सामने रख देते हैं। 'भिक्षाम् देहि' के माध्यम से उन्होंने सहयोग भी मांगा था। गंभीर व्यंग्य के समर्थकों ने तत्काल पत्रिका के लिए अपना आर्थिक सहयोग भेजना शुरू कर दिया। मैंने भी, जो मुझसे बन पड़ा, एक संकोच के साथ भेज दिया। अनेक सहयोगियों ने प्रेम को लिखा भी कि आपको सहयोग देना हमारा कर्तव्य है आप भिक्षाम देहि मत लिखा करें।

ताजा अंक में भी 'क्षमा बड़न को सोहत हैं' के उपशीर्षक से प्रेम लिखते हैं-आप उम्र में मुझसे बड़े हों न हों इतना जान लें कि गलती करने वाला छोटा होता है और क्षमा करने वाला बड़ा... मैं अनेक उत्पात करता रहता हूं... मेरे अपराध अक्षम्य हैं... आप पत्रिका को स्नेह देते हैं, उसकी मैं रक्षा नहीं कर पाता।

अर्थात प्रेम श्रेय लेने से ज्यादा दूसरों को श्रेय देना पसंद करते हैं। दूसरों की प्रशंसा, सम्मान में वे कभी शार्टकट नहीं बरतते, मनोयोग से करते हैं, एक अलग, अनूठी शैली में। मुझ पर लिखे 'अपनी तस्वीर से अलग लेख' में प्रेम लिखते हैं- यदि शांति मेहरोत्रा, सूर्यबाला, अलका पाठक जैसी लेखिकाएं व्यंग्य नहीं लिखतीं तो व्यंग्य लेखन को पुरुषोचित लेखन मानने से आलोचकों को कोई रोक नहीं सकता था और हिन्दी व्यंग्य, नारी विमर्श विहीन होने का अभिशाप झेलता।

अपने सामर्थ्य और सीमाओं को पहचानते हैं प्रेम। 'गगनांचल' का संपादन संभाला तो जी-जान से श्रम कर अच्छी रचनाएं जुटायीं। मानक अंक निकाले लेकिन जब लगा कि इतना श्रेय, समय की खपत उन्हें अतिप्रेम पारिवारिक दायित्वों से विमुख कर रही हैं तो तत्काल छोड़ दिया। अर्थात उनका सादगी भरा पारदर्शी व्यक्तित्व मात्र दिखावा नहीं है, उसमें एक सच का संवेदनाओं से भरापूरा मनुष्य निवास करता है जो एक प्रखर व्यंग्यकार, मेधावी संपादक से भी बड़ा आदमी है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

विसंगतियों का स्वाभाविक व्यंग्यकार

■ *तरसेम गुजराल*

प्रेम जनमेजय को हम हिन्दी साहित्य जगत के व्यंग्य के बड़े पक्षधर्मियों के बीच पाते हैं। एक ऐसे रचनाकार के रूप में उनकी शिनाख्त बड़ी आसान है क्योंकि वह सोच और व्यवहार में जितने सरल और सादा नज़र आते हैं, व्यंग्य की रचनात्मकता उतने ही गहरे और सजग और सृजनात्मक। उनमें सांस्कृतिक व्यक्तित्व के निर्माण की एक छटपटाहट। एक ऐसा आत्मबोध जो जीवन की सतही व्याख्या में नहीं रमता विद्रोह के धरातल को छूते हुए जीवन संघर्ष या आत्म संघर्ष का हिस्सा बन जाता है। सामाजिक विसंगतियों की तीखी आलोचना करते हुए वह मनुष्य मनुष्यता की लयबद्धता को खण्डित करने वाले तोड़ने वाले पाखंड पर जबरदस्त प्रहार कर जाते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने बड़ी सहजता से कहा- कोई विधा किसी रचना को श्रेष्ठ नहीं बनाती है अपितु श्रेष्ठ रचनाएँ किसी विधा को श्रेष्ठ बनती हैं और लेखक की भूमिका के सवाल पर कहा कि चिंतन और कर्म का समन्वय बहुत कम देखने को मिलता है। अधिकांश भूमिकाएं एकांगी होती हैं। बहुत कम चिंतक होते हैं, जो अपने विचारों को कर्मरूप में परिणत कर सकते हैं। मेरा प्रयत्न रहता है कि जिन मानवीय जीवन मूल्यों में मैं विश्वास करता हूं, उनको अपने जीवन में भी धारण कर सकूं। (51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं/डायमण्ड)

मार्क्सवादियों का मत है कि केवल मनुष्य का सामाजिक व्यवहार ही बाह्य जगत के द्वारे में मानव ज्ञान की सच्चाई की कसौटी है। वास्तव में मानव ज्ञान को सिर्फ तभी सिद्ध किया जाता है जब सामाजिक व्यवहार (भौतिक उत्पादन, वर्ग-संघर्ष या वैज्ञानिक प्रयोग) की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य प्रत्याशित परिणाम प्राप्त कर लेता है। माओ व्यवहार के बारे में सुनिश्चित होते हुए लेनिन की उस बात को जरूर सामने रखते हैं- व्यवहार (सैद्धांतिक) ज्ञान से बढ़कर है क्योंकि उसमें न सिर्फ सार्वभौमिकता का गुण होता है बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता का गुण भी होता है (माओत्सेतु की संकलित रचनाएं/ग्रंथ/पृ.-531)

'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना' का संपादन करते हुए उन्होंने 'इक श्मशान बने न्यारा' व्यंग्य रचना चुनी। इसके चुने जाने का आधर था- आपकी जिस संतान की जितनी उपेक्षा हो वह उतनी ही आपको अच्छी लगती है। अच्छी रचनाएं (भी) क्यों उपेक्षित रह जाती हैं? इसके जवाब बीज रूप में आत्ममुग्धता, सांस्कृतिक प्रदूषण/विचलन तथा उपनिवेशवाद की ज़बरदस्त साजिशों की अनेक पर्तों में बीजों की तरह पड़े हुए हैं। इस व्यंग्य रचना की शुरुआत प्रेम जनमेजय कुछ इस तरह करते हैं- बढ़ते बाजारवाद, उपभोक्तावाद और बहुगुणीय निगमवाद के कारण हमारे पारिवारिक एवं मानवीय स्वच्छंद विवादों में पड़ गए हैं। पैसे के बल पर सब कुछ संभव हो गया है। अचानक दूसरों का कबाड़ हमारी सुंदरता और हमारी सुंदरता दूसरों का कबाड़ बन रही है।

धन के बल पर आप किसी भी राष्ट्र को श्मशान में बदलने और अपने श्मशान को माल की तरह चमकाकर बेचने की ताकत रखते हो। आपके द्वारा बेचा गया ज़हर भी लाख विरोधों के बावजूद बिक सकता है और विरोध के स्वर खरीद लिए जाते हैं।'(मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना) संपादक प्रेम जनमेजय/पृ.सं.-176

जब-जब वियतनाम युद्ध की बात होती है तो हर कोई कहता है कि अमेरिका बिना मतलब ही इस युद्ध में कूद गया था। उसने हिंद-चीन के तीनों देशों वियतनाम, लागोस और कंबोडिया की एक-एक इंच ज़मीन पर बम गिराकर तबाह कर दिया।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

अफगानिस्तान से अभी फौज की वापसी नहीं हुई और आए दिन अमेरिकी जवानों की मौत ताबूत में बंद कर वापस भेजी जा रही है। सो यह है किसी भी राष्ट्र का श्मशान में बदलने का पूंजीवादी/साम्राज्यवादी तरीका हमारे सामने है। दूसरी तरफ भूमि के दलाल भूमाफिया के रूप में बर्बर होते हुए श्मशान के आसपास की पूरी ज़मीन हड़पने/बेचने को तैयार हैं। सिद्धहस्ता के साथ व्यंग्य-बाण चलाते हुए लिखते हैं- जैसे कभी-कभी न्यायालय में भी न्याय मिल जाता है, जैसे प्रौढ़ा होती लड़की को वर मिल जाता है, जैसे बिना रिश्वत दिए कभी-कभी ईमानदार का काम बन जाता है, जैसे कभी-कभी गरीब का नसीब जाग जाता है, वैसे ही श्रीमान श्मशान भी ताजमहल हो जाता है, समय के गाल पर आँसू बन चमकता है। (वही, पृ.सं.-178)

इसी लेख में उन्होंने दर्ज किया है- 'आज ये न सोचें कि हमारे श्मशान का सौंदर्यीकरण बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्यार, मानवता और सेवा भावना का परिणाम है। सेवा भावना और प्यार के लिए तो हमारे समाज में अनेक जिंदा इंसान तरस रहे हैं।'

इतिहास के पन्ने उतारें तो समझ आता है कि जर्मनी की हिटलरकालीन विज्ञान की प्रगति का मकसद क्या था? विज्ञान का मकसद था हिटलरिया तूफान को रास्ता देना या हिटलर के लिए रास्ता बनाना। आज का सौंदर्यीकरण, टैक्नोलॉजिकल इंकलाब या मानवता आर्थिक उपनिवेशवाद के हथियार ही हैं। शिक्षा प्रणाली में, राजनीतिक आज़ादी / गुलामी में समाज के कंधों पर बोझ के रूप में या सांस्कृतिक मूल्यों में ज़हरीले हथियार की तरह घुसते हुए प्रेम जनमेजय भारत के वर्तमान और भविष्य के मूल्यों से खिलवाड़ करते दुष्कर आयोजनों पर पैनी नज़र रखते हैं और जगह-जगह इनका उद्घाटन करते हैं।

बाज़ार के प्रभाव से शिक्षा की सूरत और सीरत बदल चुकी है। आविष्कार की धुन का निरंतर पीछा करने वाले वैज्ञानिकों को लोगों ने सदा सनकी अथवा पागल का नाम दिया था। जितेन्द्र भाटिया का मानना है कि आज इस स्थिति में आमूल परिवर्तन आ चुका है, पिछले जमाने के 'जीनियस' और अक्सर सनकी या भुलक्कड़ वैज्ञानिक का स्थान अब एक दक्ष, कम्प्यूटर प्रणव एवं सिद्धहस्त वैज्ञानिक कार्यकर्ता ने ले लिया है। यानी देखते ही देखते क्लासिकी वैज्ञानिक की उस पवित्र आत्मा, उसकी उस सनकी किस्म को रचनाशीलता की जगह अब हर तरफ कम्प्यूटरों और उपकरणों पर आश्रित एक चमकदार, भव्य यांत्रिकता दिखाई देने लगती है और यह परिवर्तन इतना गहरा है कि हमें उस वैज्ञानिक का नाम तक बदलकर उसे वैज्ञानिक कार्यकर्ता नाम से पुकारना पड़ा रहा है।'(सदी के प्रश्न/जितेन्द्र भाटिया) वह इस नाम परिवर्तन में महज शब्दावली की नफासत नहीं, बल्कि वैज्ञानिक कार्य की सत्ता के वैज्ञानिक हाथ से निकलकर बड़ी पूंजी के मालिकों के पास चले जाने की प्रक्रिया का द्योतक मान रहे हैं।

इस बात को प्रेम जनमेजय के व्यंग्य 'राम, पढ़ मत, मत पढ़' के माध्यम से देख सकते हैं। राधेलाल सरकार के विश्वास पर मुग्ध है कि शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने से रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे। इससे उनको (राधेलाल को) आस है कि जिस देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, महंगाई और अन्याय के अवसर बढ़ रहे हैं, वहां शायद रोज़गार के भी अवसर बढ़ जाएं। इन्हीं राधेलाल की सैद्धांतिक समझ है कि- अच्छा स्कूल का मतलब अच्छी पढ़ाई नहीं, उसका अच्छा दिखना जरूरी है, अच्छी-अच्छी मैडमें हों, अच्छी-अच्छी स्कूल बसें हो तो स्कूल अच्छा दिखता ही है और जितना अच्छा स्कूल होता है, उतनी अच्छी डोनेशन देनी पड़ती है। (श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं)

एक प्रश्न के उत्तर में प्रेम जनमेजय ने कहा- अब का समय विसंगतियों से भरा हुआ है, चकाचौंध में सामाजिक सरोकार तथा मानवीय मूल्य धुंधलाते जा रहे हैं। अस्मिता पर लुके-छिपे हमले हो रहे हैं। थे सब ईमानदार मस्तिष्क पर निरंतर अपने प्रभाव छोड़ते रहते हैं। आपका अवचेतन कभी सोता नहीं, यह दीगर बात है कि कुछ महानुभाव उसके जागरण को महत्व ही नहीं देते हैं। (51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं)

राधेलाल नरेटर को समझा रहा है- 'तुझे तो सरस्वती का शाप है कि तू जिंदगी भर सोचता ही रहे।' कबीर हकीकत जान गए थे- 'सुखिया सब संसार है खावे और सोवे। दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।''

प्रेम जनमेजय हरिशंकर परसाई को बहुत सम्मान देते हैं। उन्होंने कहा- असल में आज़ादी के बाद से मूल्यों में लगातार गिरावट आती गई है। मूल्य पद्धति बहुत बदल गई है। इस मूल्य पद्धति के केंद्र से मनुष्यता हट रही है।' अध्यापकों के बारे में कहा कि लोग अभी भी अध्यापकों से उच्चतर नैतिक मूल्यों की अपेक्षा करते हैं। (कहते हैं) सरस्वती के पवित्र मंदिर में तो ऐसा अनैतिक कृत्य नहीं होना चाहिए। तो अनैतिक कृत्य कहां शोभा देते हैं? हमने क्या मान लिया कि इन-इन जगहों में अनैतिक कृत्य होंगे, भ्रष्टाचार होगा? (हम इक उम्र से वाकिफ हैं। (पृ.सं.-30)

'आत्मा महाठगिनी हम जानी' व्यंग्य रचना में प्रेम जनमेजय ने आत्मा से संबोधित होकर दर्ज किया- हे आत्मा! मैं तुझे प्रणाम करता हूं, क्योंकि तू है भी और नहीं भी है। इस संसार में जो होते हुए भी नहीं होता और नहीं होते हुए भी होता है, वही वंदनीय एवं पूज्य है। तेरे साथ ही मैं बनारस के उन ठगों को प्रणाम करता हूं। जो जैसे हैं, वैसे नहीं हैं, वैसे हैं तो जैसे नहीं हैं। इसके पश्चात मैं राजनेता, पुलिस, उद्योगपति, नौकरशाही, पंडित, मुल्ला और पादरी आदि को प्रणाम करता है, जहां तू अपने स्वर्ण गुणों के साथ विद्यमान हैं।'(51 श्रेष्ठ व्यंग्य, पृ.सं.-56)

व्यंग्य रचना का ऐसा प्रवाह और ऐसी धार और इसके पीछे मानवीय संवेदना का गहरा स्पर्श प्रेम जनमेजय को अनायास ही हिन्दुस्तान में और बाहर हिन्दी का बड़ा व्यंग्यकार घोषित कर देते हैं और उन्हें हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल जैसे बड़े व्यंग्य लेखकों के पास खड़ा करते हैं।

इसी व्यंग्य रचना में वह कहते हैं- 'हे आत्मा!

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

तुझे तलवार काट नहीं सकती परंतु तू काला कोट पहनकर न्याय का गला काट सकती है। तुझे अग्नि जला नहीं सकती, परंतु तू धर्म की दंगई, चादर पहनकर सब कुछ स्वाहा कर सकती है। तुझे पवन उड़ा नहीं सकती परंतु तू निर्धनों के झोपड़े उड़ा सकती है। जैसे हम नित्य-प्रति कपड़े बदलते हैं वैसे ही तू शरीर बदलती है। कभी तू शासक दल का नेता बन जाती है, कभी विपक्ष का, कभी तू हिस्ट्रीशीटर बन जाती है तो कभी मुख्यमंत्री। (वही, पृ.-57)

ऐसा पैनापन, ऐसी सौद्देश्यता, ऐसी गुणवत्ता जल्दी कहीं उपलब्ध नहीं होती। उनका अनुभव अमीर नजर आता है, अध्ययन गहरा है और दृष्टि साफ है इसके साथ शक्तिशाली है उनकी प्रहारक क्षमता जिसे शंकर पुणतांबेकर जैसे व्यंग्यकार विसंगतियों की वैदग्ध पूर्ण तीखी अभिव्यक्ति मानते हैं। युग की विसंगतियां हमारे चारों ओर से यथार्थ जगत से, वैदग्ध इन विसंगतियों को वहन करने वाले शैली-सौष्ठव से और तीखापन विसंगति एवं वैदग्ध की चेतना पर पड़ने वाले मिले-जुले प्रभाव से संबंधित है। (व्यंग्य यात्रा, पृ.-23-24)

शिक्षा-जगत, साहित्य और संस्कृति उनके मनपसंद विषय हैं। 'चारा और बेचारा' व्यंग्य रचना में कहते हैं- अक्सर देश का भविष्य बनाने और संवारने वालों का अपना भविष्य बिगड़ैल ही होता है। अब माली को ही देख लें, पौधे वह लगाता है, उन्हें सजाता-संवारता वह है, पर उसके फल का आनंद उठाता है उसे बेचने की तरकीब जानने वाला, मास्टर लोग भी इसी श्रेणी में आते हैं। वर्षों से कछुए की तरह अपरिवर्तनशील ये बेचारे मास्टर ब्लैकबोर्ड, चॉक, डस्टर, आदि की दुनिया जस-का-तस है। वही क्लासरूम, वही हो-हो करते, इज़्ज़त उछालते विद्यार्थी है और वो ही किताबें हैं। इन सबके चेहरे बदलते रहते हैं, पर ढर्रा वही रहता है।'(51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ. 46)

क्योंकि हम अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष को पूर्ण परिणाम तक नहीं जा पाए या ले जा पाने में पूरी तरह असफल रहे हैं, इसलिए शिक्षा का ढांचा उसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अपरिवर्तित हिस्सा बना रहा। शिक्षाशास्त्री पालो फ्रेरा ने कहा कि सच्ची उदारता उस संघर्ष में ही होती है, जो संघर्ष मिथ्या उदारता का शोषण करने वाले कारणों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। मिथ्या दानशीलता दबे-कुचले और डरे हुए लोगों को, 'ज़िन्दगी से खारिज' लोगों को अपने कांपते हुए हाथ फैलाने के लिए मजबूर करती है। फ्रेरा आधुनिक दुनिया की विभीषिका को विषमता के परिणाम स्वरूप देखते रहे। (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र अनु. रमेश उपाध्याय)

हरिशंकर परसाई ने कहा कि अगर कोई यह भ्रम पाले है कि ये आचार्यगण प्रकाश देते हैं, हमें पिछड़ेपन के खींचकर बाहर निकालते हैं, आधुनिक बनाते हैं और वैज्ञानिक दृष्टि देते हैं, तो इस भ्रम को निकाल दें।

'एक अनार के कई बीमार' व्यंग्य रचना में सत्य की हालत देखें- राधेलाल ने सच ही कहा, 'आजकल सत्य भाड़ में ही रहता और सच कहने वाले भाड़ झोंकते हैं। सत्य के पास आजकल न तो न्यायालय में रहने के लिए जगह है और न संसद में। लोगों के दिल ईर्ष्या, द्वेष और आकांक्षाओं से भरे हुए हैं, बेचारा रहे तो रहे कहां? 'शर्म मुझको मगर क्यों आती' में खुला बाजार है, खुली अर्थव्यवस्था है। जो जितना बेशर्म है उतना ही अधिक प्रगतिशील और सुखी है। एक अन्य रचना में गांधी जी की बकरी टू-इन-वन हो गई है। बकरी बनकर दूध देने का नाटक कर रही है तथा दीमक बनकर देश को चाट रही है और भेड़िया बनकर खून पी रही है। 'प्रवासी से प्रेम' में गोष्ठी में इसलिए जा रहे हैं क्योंकि गोष्ठी के बाद काकटेल भी है।

खण्ड-खण्ड रूप से उनकी अनेक व्यंग्य रचनाओं में सांस्कृतिक विघटन के अनेक रूप झलक दिखलाते हैं जिनसे कुल मिलाकर संस्कृति पर निरंतर हुए पश्चिमवादी प्रहार सामने आते हैं। गुलामी, राजतंत्र, उपनिवेशवाद और प्रजातंत्र के वर्तमान रूप में सांस्कृतिक संकट घटाटोप रूप में रहे हैं और मनुष्य ने मनुष्यता को बचाने के लिए जो संघर्ष किए हैं, वे सांस्कृतिक संकट से जूझने और मुक्ति के रास्ते तलाशने के लिए ही किए हैं। प्रेम जनमेजय के सांस्कृतिक संकट को लेकर फिक्रमंद होने की वजह मनुष्य की चेतना जागरुकता के प्रति चिंता ही है कहीं यह चिंता वहां जाकर जुड़ती है जिसे बोर्ड कहते हैं कि प्रबुद्ध वर्ग सांस्कृतिक पूंजी को बढ़ाने में निरंतर क्रियाशील है क्योंकि वह जानता है कि अंततोगत्वा इसे मुनाफा में बदला जा सकता है। एक अलग ढंग से इन रचनाओं में जड़ता से उबरने की अकुलाहट नजर आती है। प्रेम जनमेजय बाज़ारवादी शक्तियों की नृशंसता, बर्बरता और आतंक से बखूबी परिचित हैं। एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि पूरी व्यवस्था ही ऐसी है कि जिसमें बिकने की इच्छा नहीं, बिकने की ताकत नहीं, वह हाशिए पर ही खड़ा है। यदि आपमें बेचने का कौशल है तो राजनीति ही क्या, अन्य चीजों को भी नैतिकता का बुर्का ओढ़कर बेच सकते हैं। आपने देखा है कि किस कौशल से आपके देश की गरीबी को बेचकर लोग करोड़पति हो गए।'

'व्यंग्य यात्रा' में प्रेम जनमेजय ने कुछ सवाल उठाए हैं। इन सवालों में अलग तरीके से व्यंग्य की सार्थकता छुपी है। क्या सभी व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र अथवा इसकी टेक्नोलॉजी से इतने अनजान हैं? क्या समग्र हिन्दी व्यंग्य साहित्य का दर्पण स्थायी रूप से राजनीतिक छुटभैयों की ठिठोलियों और औरतों की दिशा में टिका रहता है? क्या व्यंग्य केवल नेगेटिव सोच ही पैदा करता है?... क्या सभी व्यंग्यकार गहरे में नहीं उतरते हैं और समस्त कथाकार, नाटककार और कवि गहरे में ही उतरे पाए जाते हैं? क्या परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, विष्णु नागर आदि (आदि की सूची काफी लंबी है) जैसे व्यंग्य लेखक सतही है?

व्यंग्य रचना, व्यंग्य रचनाओं के संपादन, व्यंग्य संबंधी अवधारणा के लिए प्रेम जनमेजय के काम की किसी तरह भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह साफ दिल इंसान है। एक साफ दिल इंसान बुनियादी सरोकारों को बखूबी समझता है और दृष्टि खुली रख सकता है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

व्यंग्य और 'प्रेम'

■ अमित कुमार सिंह

व्यंग्य से है जिनको प्रेम
व्यंग्यों पर पायी है
जिसने विजय,
जिनकी वजह से
व्यंग्य विधा नहीं रही
अब एक ख्वाब,
जिनको पढ़ने के लिए
है ये दुनिया बेताब,
वो हैं व्यंग्यकारों के
व्यंग्यकार,
व्यंग्य के जादूगर,
हिंदी साहित्य के
स्तम्भ हैं जो आज,
कहते हैं जिनको,
व्यंग्य की दुनिया का सरताज,
प्रेम जनमेजय जी हैं
आज के हिंदी व्यंग्य की
एक गूंजती आवाज़।

व्यंग्यों के साथ खेलते हैं वो
उन्हें फटकारते, दुलारते हैं वो,
कभी मधुर तो कभी
कठोर व्यंग्य करते हैं वो।

उनके व्यंग्य की धार से,
अच्छे-अच्छे भी घबराते हैं,
और अपने टूटे
मनोबल के साथ,
आकाश से धरती पे आ जाते हैं।

नये-नये व्यंग्यकारों को
देते हैं वो अपना मार्गदर्शन,
जिससे कर पाते हैं वो
भी बेमिसाल प्रदर्शन।

उनका उत्साह बढ़ाते,
करते उनकी गलतियों पे
प्यार भरा कटाक्ष,
व्यंग्यों के दुनिया के
बाज़ीगर,
दिल में हैं जिनके
दया का सागर,
ऐसे निराले प्रेम जनमेजयजी का
हर कोई करता है आदर।

भारत हो या लन्दन
अमेरिका हो,
या फिर त्रिनिदाद,
हर जगह फैला है,
प्रेमजी के व्यंग्यों का
अद्‌भुत 'किरन' प्रकाश।

सामाजिक कुरीतियों पे
करते हैं वो कड़ा प्रहार,
राजनेता भी होते हैं जिनके
तीक्ष्ण व्यंग्यों से तार-तार,
''व्यंग्य यात्रा'' की गंगा बहाते,
प्रेमजी कर रहे हैं,
संपन्न हिंदी साहित्य का,
'अमित' सपना साकार।

प्रेम जनमेजय

यह व्यक्ति गीता पढ़कर पैदा हुआ है

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

■ *यज्ञ शर्मा*

प्रेम जनमेजय की कर्मठता का एक और प्रमाण है उनके लेखन की व्यापकता। कौन-सा ऐसा विषय है जिस पर उन्होंने कलम न चलाई हो? हिन्दी के कौन से ऐसे पत्र-पत्रिकाएं हैं जिनमें उनकी रचनाएं आदर के साथ न प्रकाशित हुई हों? देश का कौन-सा ऐसा कोना है, जहां हिन्दी पाठक प्रेम जनमेजय के नाम से परिचित न हों? प्रेम जनमेजय एक ओर व्यंग्य लिखते हैं तो दूसरी ओर गम्भीर साहित्य के विद्वान भी हैं।

मैं यह लेख प्रेम जनमेजय के व्यंग्यों की विशेषता के बारे में नहीं लिखने वाला। उनके व्यंग्य लेखन के जानकार अनेक लेखक हैं और बहुत-से प्रेम के व्यंग्य पर मुझसे अधिक अधिकार से लिख सकते हैं। मैं तो यहां प्रेम जनमेजय की एक ख़ास विशेषता की बात करूंगा - उनकी कर्मठता यानी कर्मण्येवाधिकारस्ते।

प्रेम जनमेजय। यह व्यक्ति जितना मुखर है उतना ही मौन है। प्रेम जनमेजय अपने अनेक काम सबकी नज़रों के सामने करते हैं, तो अनेक काम चुपचाप करते हैं। मैं बरसों से व्यंग्य लिख रहा हूं? और 1995 से तो हर सप्ताह नियमित लिख रहा हूं। लेकिन, मेरा पहला संकलन 2010 में प्रकाशित हुआ। उसका प्रमुख श्रेय प्रेम जनमेजय को जाता है। उसी संकलन के कारण मुझे अब तक का एकमात्र पुरस्कार- हिन्दी वन का 'व्यंग्य श्री' सम्मान प्राप्त हुआ। प्रेम जनमेजय ने पहल न की होती तो न तो मेरा संकलन प्रकाशित होता, न मुझे वह पुरस्कार मिलता। जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह व्यंग्य में भी प्रतियोगिता चलती है। कोई अपने प्रतियोगी की मदद करे, ऐसा कम ही होता है। प्रेम जनमेजय व्यंग्य को इतने समर्पित हैं कि व्यंग्य की खातिर अपने प्रतियोगी की भी मदद कर सकते हैं। मैं इसका जीता-जागता प्रमाण हूं। मेरा दूसरा संकलन छपवाने का ज़िम्मा प्रेम जनमेजय ने मेरे बिना कहे ले लिया है- इसे आप 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे। कर्म प्रेम जनमेजय करेंगे, फल मुझे मिलेगा।

इन पंक्तियों को पढ़ने वाले किसी व्यक्ति को यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि प्रेम जनमेजय व्यंग्य लिखते हैं। सालों पहले उन्होंने व्यंग्य लिखना तय कर लिया था। यह बात उनके नाम से ही तुरंत ज़ाहिर हो जाती है। जी हां, अपना लेखकीय जीवन शुरू करने के साथ ही इस जनमेजय ने तय कर लिया था कि वह समाज को डंसने वाले वाले विसंगतियों के नागों का नाश करने के लिए 'व्यंग्य-यज्ञ' करेगा। यह तो मैं नहीं जानता कि उनकी पहली व्यंग्य रचना कब छपी थी। लेकिन एक व्यंग्य लेखक के रूप में मैं प्रेम जनमेजय को करीब पैंतीस-चालीस साल से जानता हूं।

प्रेम जनमेजय कर्मण्येवाधिकारस्ते में विश्वास करते हैं। हिन्दी का लेखक लिख कर रोटी नहीं खा सकता- यह हमारे देश की सामान्य स्थिति है। फिर भी कोई लेखक चालीस साल गुज़रने के बाद भी लगातार लिख रहा है, यह कर्मण्येवाधिकारस्ते नहीं तो और क्या है? एक ओर वे लेखन को पूरा समय देते हैं, दूसरी ओर अपनी सामाजिक और पारिवारिक ज़िम्मेदारियां भी पूरी तरह निभाते हैं। वे अपनी जीविका अध्यापन के ज़रिये कमाते हैं और बाकी समय लेखन तथा लेखन संबंधित अन्य गतिविधियों में लगाते हैं। अध्यापन का काम भी वे बहुत-से अध्यापकों की तरह टालने वाले अंदाज़ में नहीं करते। अध्यापक के रूप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा है कि उन्होंने विदेश जा कर भी अध्यापन का कार्य किया है। हिन्दी के नवोदित लेखकों को प्रेम जनमेजय से कर्मठता का यह सबक सीखना चाहिए। हिन्दी में आप अपने मन का तभी लिख सकते हैं जब आप लेखन से रोटी न खाते हों।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

प्रेम जनमेजय की कर्मठता का एक और प्रमाण है उनके लेखन की व्यापकता। कौन-सा ऐसा विषय है जिस पर उन्होंने कलम न चलाई हो? हिन्दी के कौन से ऐसे पत्र-पत्रिकाएं हैं जिनमें उनकी रचनाएं आदर के साथ न प्रकाशित हुई हों? देश का कौन-सा ऐसा कोना है, जहां हिन्दी पाठक प्रेम जनमेजय के नाम से परिचित न हों? प्रेम जनमेजय एक ओर व्यंग्य लिखते हैं तो दूसरी ओर गम्भीर साहित्य के विद्वान भी हैं। वैसे, प्रेम जनमेजय के लिए व्यंग्य भी गम्भीर साहित्य ही है। वे व्यंग्य लेखन के काम को भी पूरी गंभीरता के साथ निभाते हैं। आप उनका कोई भी लेख उठाकर देख लीजिए, उनकी गंभीरता आपको स्पष्ट दिखाई दे जाएगी। तो, प्रेम जनमेजय पढ़ाते हैं, लिखते हैं, साहित्यिक आयोजनों में भाग लेते हैं, कार्यक्रमों का संचालन करते हैं और भी न जाने क्या-क्या करते हैं। यह व्यक्ति इतना समय कहां से निकाल लेता है? मेरे ख़याल से प्रेम जनमेजय के एक दिन में 72 नहीं तो 48 घंटे तो ज़रूर होते हैं।

हिन्दी में व्यंग्य को स्तरीय साहित्य की मान्यता दिलवाने में परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी जैसे लेखकों ने बहुत महत्वपूर्ण बल्कि पायनियर की भूमिका निभाई थी। इन दिग्गजों ने व्यंग्य को सिर्फ़ टीका-टिप्पणी करने वाले लेखन से ऊपर उठाकर रचनात्मक स्थान दिलवाया। धीरे-धीरे व्यंग्य की लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि तमाम पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य को नियमित स्थान मिलने लगा। इस तरह व्यंग्य की नींव मज़बूत हुई। इस नींव को और मज़बूती देने में एक पत्रिका बड़ा महत्वपूर्ण काम कर रही है- 'व्यंग्य यात्रा'!

व्यंग्य यात्रा प्रेम जनमेजय का सबसे बड़ा कर्मण्येवाधिकारस्ते है। प्रेम जनमेजय व्यंग्य यात्रा के संपादक भी हैं और प्रकाशक भी। यानी, व्यंग्य यात्रा प्रेम जनमेजय का सिंगल नहीं, डबल कर्मण्येवाधिकारस्ते है। मैंने जब व्यंग्य यात्रा का प्रवेशांक देखा था, तो मेरे अंदर का आलसी व्यक्ति चकित रह गया था। केवल व्यंग्य के लिए समर्पित पत्रिका और उसका इतना बड़ा कलेवर!! उस अंक में प्रकाशित सामग्री देख कर मुझे चिंता हुई कि प्रेम हर अंक के लिए इतनी सामग्री कैसे और कहां से जुटा पाएंगे। असल में, मैं प्रेम जनमेजय को अपने चश्मे से देख रहा था। हर आदमी दुनिया को अपनी सामर्थ्य से आंकता है। मैंने प्रेम जनमेजय को आंकने में गलती की थी। मुझे याद है, मैंने प्रेम जनमेजय से कहा था- इतनी बड़ी पत्रिका मत निकालिए। इतनी सारी सामग्री हर बार कैसे जुटाएंगे। मुझे याद है प्रेम जनमेजय ने कोई जवाब नहीं दिया था। वे जानते थे वे क्या कर रहे हैं। और आप देख सकते हैं कि इतने बरस बीतने के बाद भी व्यंग्य यात्रा अपने उसी बड़े कलेवर के साथ लगातार निकल रही है। प्रेम जनमेजय उसे निरंतर आगे बढ़ा रहे हैं।

हिन्दी में व्यंग्य को स्तरीय साहित्य की मान्यता दिलवाने में परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी जैसे लेखकों ने बहुत महत्वपूर्ण बल्कि पायनियर की भूमिका निभाई थी। इन दिग्गजों ने व्यंग्य को सिर्फ़ टीका-टिप्पणी करने वाले लेखन से ऊपर उठाकर रचनात्मक स्थान दिलवाया।

जब भी प्रेम जनमेजय पर कुछ लिखा जाएगा तो उनके व्यंग्यकार का ज़िक्र जरूर होगा। किसी भी हिन्दी के जानकार मन में सबसे पहले उनके व्यंग्यकार का चित्र ही उकेरेगा। जो कि सर्वथा उचित है, क्योंकि प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य के लिए जो किया वह हर किसी के बस की बात नहीं है। लेकिन मेरे विचार में, व्यक्तित्व की जिस ख़ासियत ने प्रेम को व्यंग्य के क्षेत्र में इतना महत्त्वपूर्ण बनाया है, वह है उनकी कर्मठता, उनकी लगन। उनकी कर्मठता देख कर लगता है कि यह व्यक्ति गीता पढ़ कर पैदा हुआ है- व्यंग्यण्येवाधिकारस्ते! ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

प्रेम जनमेजय और मैं

■ *डॉ. नरेन्द्र कोहली*

मुझे अपने पुत्र कार्तिकेय और अपनी पीढ़ी के बीच की पीढ़ी का लगता है। भाव में वह पुत्रवत् भी हो सकता है और सामर्थ्य में छोटे भाई के समान। यही कारण है कि उसका संबंध केवल मुझसे ही नहीं है, यह एकल संबंध नहीं है, यह पारिवारिक संबंध है। यह प्रेम की विशेषता है कि उसका संबंध परिवार के प्रत्येक व्यक्ति से होता है।

दस वर्षों से अधिक का समय हो गया है, जब मैंने प्रेम के विषय में एक संस्मरण लिखा था, ''पचास के प्रेम जनमेजय''। तब मैंने लिखा था ...

''प्रेम भी पचास वर्ष के हो गए हैं, यह बात सहज ही मेरे गले से नहीं उतरती। चाहे मैं अपने विषय में कितना ही ढिंढोरा पीटता रहा हूं कि मैं षष्टि प्रवेश कर चुका हूं और प्रतिदिन षष्टिपूर्ति की ओर बढ़ता जा रहा हूं; किंतु प्रेम का पचास का होना भी कुछ अद्‌भुत लगता है। अपने भीतरी और बाहरी विकास का बोध सब को होता है; किंतु दूसरे व्यक्ति को हम अपने मन में बने हुए, उसके प्रथम बिंब से आगे बढ़ने ही नहीं देते। जैसे पुत्र के प्रति पिता का भाव, या फिर शिष्य के प्रति गुरु का भाव... इससे कई बार हम दूसरे के गुणों अथवा गुणों के विकास की अनदेखी भी कर जाते हैं। यह बात मेरे और प्रेम के संबंधों के संदर्भ में भी पूर्णतः सत्य है।

जिसे पहली बार कॉलेज के प्रथम वर्ष के विद्यार्थी के रूप में जाना हो, उसका विकास देखते हुए भी, उसकी उन्नति की यात्रा के साक्षी होते हुए भी, उसके प्रति अपना व्यवहार और दृष्टिकोण बदलना बड़ा कठिन होता है। बच्चा इतना बड़ा हो जाए कि उसे गोद में न उठाना पड़े, तो हम इस बात से तो प्रसन्न होते हैं कि अब बोझ नहीं उठाना पड़ेगा; किंतु उसके चलने की क्षमता का सम्मान करना हमें स्मरण नहीं रहता। अब कोई कहे कि मंच पर बैठे हुए प्रेम जनमेजय को मैं 'आदरणीय डॉ. जनमेजय' कह कर संबोधित करूं, तो मुझे कठिनाई होगी। मैं क्षमा मांग लूंगा; किंतु उसे 'प्रेम' ही कहूंगा। कोई कहे कि अब मैं प्रेम को कोई साधारण-सा काम करने को न कहा करूं, क्योंकि प्रेम बड़ा हो गया है, साहित्य और समाज में अपना स्थान बना चुका है, - तो मैं सैद्धांतिक रूप से सहमत हो जाऊंगा; किंतु अपने व्यवहार को बदलना मेरे लिए संकट का विषय हो जाएगा या फिर मैं उस सारी स्थिति पर हँस ही सकूंगा।

कई बार यह भी लगता है कि उसकी पत्नी और बेटों को, उसके प्रति मेरा व्यवहार बहुत सम्मानजनक नहीं भी लग सकता। उनके लिए वह प्रौढ़, परिपक्व और आदरणीय व्यक्तित्व है, पति है, पिता है, गृहस्वामी है और मैं उससे ऐसा व्यवहार कर रहा हूं, जैसे वह अभी कोई किशोर ही हो।... यह सब समझता हूं मैं; किंतु उससे मैं अपना भाव नहीं बदल सकता। यदि मैं अपना भाव बदलने का प्रयत्न करूंगा, तो बहुत कुछ अस्वाभाविक हो जाएगा और हमारे संबंधों का नैसर्गिक सौंदर्य विकृत हो जाएगा। प्रेम के व्यवहार और लेखन के संदर्भ में कोई उसकी निन्दा करेगा तो मैं भरसक उसका बचाव करूंगा; किंतु जब मैं उसकी कोई रचना अथवा पुस्तक पढ़ूंगा तो आज भी मेरा मन होगा कि मैं लाल पेन से उसकी गलतियां निकाल कर उसके सामने रख दूं। उसे बताऊं कि इसमें यह त्रुटि है। उसे बताऊं कि तुम्हें उस व्यक्ति से यह नहीं कहना चाहिए था। मैं उससे लड़ सकता हूं, उसे डांट सकता हूं; किंतु मैं उसके लिए पराया नहीं हो सकता। इसलिए मैं उसके प्रति न अपना भाव बदलना चाहता हूं, न व्यवहार।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

दो वर्ष पूर्व मेरे पुत्र का विवाह था। विभिन्न कामों के लिए मुझे सहायता और सहारे की आवश्यकता थी। अनेक मित्र और (पूर्व) छात्र पूरी तरह से मेरे साथ लगे हुए थे। प्रेम भी उनमें था और सब से पहले था। उसी अवसर पर काम के आधिक्य के कारण मेरी परेशानी देख कर उसने एक वाक्य कहा था, जो मुझे स्मरण है और रहेगा। उसने कहा था, "सर! आप आज्ञा तो दीजिए। हम खड़े हैं। जो कहिएगा, हो जाएगा।" मैं जानता हूं कि यह केवल औपचारिक वाक्य नहीं था। इसमें सच्चाई है। उसके मन में भी वही भाव था, जो शब्दों से प्रकट हो रहा था। वह अपनी क्षमता भर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम करने को तैयार था।

गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, मोती बाग (अब मोतीलाल नेहरू कॉलेज) में मेरे भी वे आरंभिक वर्ष ही थे। प्रेम अपनी कक्षा का सबसे मेधावी छात्र था। ऑनर्स में 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' की कक्षा में वह अकेला ही छात्र था। उसके साथ एक और छात्र था तो, किंतु न होने जैसा। प्रेम कक्षा में ही नहीं, मेरी अन्य सारी गतिविधियों में भी मेरे साथ था। वह लेखक-मंडल में मेरे साथ था। कॉलेज की पत्रिका में साथ था। साहित्य परिषद् में साथ था। जब मैंने व्यक्तिगत रूप से 'अतिमर्श' का प्रकाशन आरंभ किया था, तब भी वह मेरे साथ था। कम खर्च में पत्रिका को डाक से भेजने की अनुमति न होने के कारण हमें उस पर लगाई जाने वाली डाक टिकट काफी खर्चीली लगती थी, इसलिए एक-एक अंक को दिल्ली के किसी कोने में उसके ग्राहक तक पहुंचाने के लिए मैं और प्रेम अपने स्कूटर पर सारे नगर में घूमते-फिरते थे। मैं स्कूटर चलाता था और वह पत्रिका के अंक लेकर पीछे बैठता था।... वह कितना-कितना मेरे साथ था, इसका कुछ अहसास तो तब होता है, जब स्मरण करता हूं कि मेरे नाटक 'शंबूक की हत्या' का मंचन उज्जैन में हो रहा था। उन लोगों ने मुझे बुलाया था। मैं जाना चाहता था, किंतु अकेले जाने का संकोच और यात्रा की ऊब।... बात पुरानी है, अतः अब याद नहीं कि वह सब कैसे तय हुआ, किंतु प्रेम मेरे साथ गया था। मेरा बड़ा बेटा कार्तिकेय तब पांच-सात वर्षों का रहा होगा, वह भी हमारे साथ था। वह मेरी आज तक की अपने प्रकार की एक ही साहित्यिक यात्रा है। हम लोग भोपाल गए। रात वहां काटनी थी। अतः बहुत घनिष्ठता न होने पर भी लक्ष्मीकांत वैष्णव को यह लिखने का दुस्साहस किया कि वह हमें भोपाल स्टेशन पर मिले और रात को अपने घर पर ठहराए। उसने वैसा ही किया। रात का भोजन भी उसके घर किया और सोए भी वहीं। प्रातः उज्जैन के लिए चल पड़े। उसी यात्रा में हम इंदौर, खंडवा और हरदा भी गए। प्रेम की इच्छा थी कि हम लोग जबलपुर भी जाएं। वहां हरिशंकर परसाई थे और श्रीराम आयंगार भी था। वह प्रेम का मित्र था, यद्यपि परिचय मेरा भी था। श्रीराम के अन्य मित्र भी थे। प्रेम को उनका आकर्षण खींच रहा था। कार्तिकेय इस निरंतर यात्रा से ऊब चुका था और वापस लौटना चाहता था। वह प्रेम से काफी छोटा था; किंतु वे दोनों एक दूसरे के विरोध में आमने-सामने खड़े हो गए थे। अंततः उनमें समझौता हुआ कि कार्तिकेय जबलपुर जाने से मना नहीं करेगा। इसके बदले में अब प्रेम मार्ग में ग्वालियर, आगरा और मथुरा घूमने की इच्छा का त्याग करेगा। प्रेम को यात्रा प्रिय है। पर उसने उस समझौते का पालन किया।

यात्राएं मैंने प्रेम के साथ और भी की हैं। अनेक-अनेक आयोजनों में हम एक साथ गए हैं- रायपुर, भोपाल, लखनऊ, झांसी, सोलन... पहली यात्रा में तो मैं अभिभावक की स्थिति में था, किंतु क्रमशः यह क्रम उलट गया। अनेक यात्राओं में वह मुझे मेरे घर से ले गया और यात्रा की अवधि में सारी व्यवस्था करते हुए, अंततः मुझे मेरे घर तक पहुंचा गया।... फिर भी वह पहली यात्रा अद्भुत थी। न हमारे पास पर्याप्त धन था, न ज्ञान, न साधन। बहुत कम साधनों में ही हम काफी लंबी यात्रा कर आए थे।

प्रेम के साथ अपने संबंध को किसी रिश्ते में बांधने में मुझे कठिनाई का अनुभव होता है। मुझे तो वह आज तक 'सर' कह कर ही संबोधित करता है। मेरी पत्नी को उसने पहले कुछ अन्य छात्रों के अनुकरण में 'आंटी' कहना आरंभ किया था; किंतु अपने विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी के ही अनुरोध पर (अथवा पत्नी के प्रभाव/दबाव में) उसने इस संबोधन को 'भाभी' में बदल दिया। बहुत बाद में जब मैं अपने समधी से उसका परिचय करा रहा था और उसकी विशेषताओं और गुणों की चर्चा कर रहा था तो उसने स्वयं ही अपने परिचय को यह कह कर विराम दे दिया था, ''जी! और क्या कहना है, मैं इनका छोटा भाई हूं?''

इस प्रकार सोचता हूं तो वह मुझे अपने पुत्र कार्तिकेय और अपनी पीढ़ी के बीच की पीढ़ी का लगता है। भाव में वह पुत्रवत् भी हो सकता है और सामर्थ्य में छोटे भाई के समान। यही कारण है कि उसका संबंध केवल मुझसे ही नहीं है, यह एकल संबंध नहीं है, यह पारिवारिक संबंध है। यह प्रेम की विशेषता है कि उसका संबंध परिवार के प्रत्येक व्यक्ति से होता है। हमें आज भी स्मरण है कि जब कार्तिकेय छोटा-सा था और लेखक-मंडल की गोष्ठी के संदर्भ में बहुत सारे मित्र और छात्र मेरे घर पर आते थे तो गोष्ठी के पश्चात् सब को विदा कर

कार्तिकेय प्रेम को रोकने की हठ करता था और कपाट बंद कर उनके सम्मुख खड़ा हो जाता था, ''प्रेम अंकल अभी नहीं जाएंगे।''

कार्तिकेय के शैशव के उस संबंध की गहराई का कुछ परिचय मुझे तब मिला, जब उसकी सगाई हो रही थी। निमंत्रण हेतु एक अत्यन्त संक्षिप्त सूची बन रही थी, जिसमें से नगर में रहने वाले, मेरे सगे भाई भी बाहर थे। तब कार्तिकेय ने कहा था कि 'प्रेम अंकल को अवश्य निमंत्रित किया जाएगा।' तब तक यही माना था कि प्रेम से मेरे अपने संबंध हैं। चाहे वे कॉलेज के कारण हों, चाहे साहित्य के कारण। किंतु कार्तिकेय के इस वाक्य से यह बात रेखांकित होकर मेरे सामने आई कि यह संबंध मुझ तक ही सीमित नहीं है।

प्रेम के विषय में सामान्यत: कहा जाता है कि वह संबंधों का पूरी तरह से निर्वहन करता है, यद्यपि मैंने कुछ लोगों से उसके संबंध टूटते हुए भी देखे हैं। साहित्य के माध्यम से बने हुए, बहुत सारे संबंध स्वार्थ के आधार पर बनते हैं और फिर प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्यावश टूट जाते हैं। साहित्य की राह से होकर ही प्रेम के बहुत सारे ऐसे मित्र भी बने, जो किसी कारण मुझे सहन नहीं कर सकते थे, अथवा मेरे साथ उनकी पटरी नहीं बैठती थी। (भगवद्गीता के अनुसार हमारा व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए, जो न किसी को देख कर उद्विग्न हो और न लोग हमें देख कर उद्विग्न हों; किंतु अपने विषय में बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि मैं ऐसा नहीं हूं। मैं उद्विग्न होता भी हूं और उद्विग्न करता भी हूं।) मुझे अनेक बार लगा कि प्रेम के कुछ मित्रों की संगति प्रेम को मुझ से दूर ले जा रही है; और वह इस बात को समझ नहीं रहा है। वे प्राय: उसके कान में डालते रहे कि प्रेम अपने गुरु की परछाईं ही न बना रहे। उसे मेरे प्रभाव से मुक्त होना चाहिए। वे मुझे बरगद मानते रहे हों या न मानते हों किंतु उन्होंने मेरे शिष्यों से यह अवश्य कहा कि मेरी छाया में वे लोग स्वतंत्र रूप से पनप नहीं पाएंगे। कई बार लगा भी कि प्रेम यह प्रमाणित करने के लिए प्रयत्नशील है कि वह मेरे प्रभाव से सर्वथा मुक्त, एक स्वतंत्र अस्तित्व है। मुझे किसी की भी स्वतंत्रता में कोई आपत्ति नहीं है। क्यों हो ? किंतु कोई अपनी स्वतंत्रता प्रमाणित करने के लिए, अपने इतिहास के साथ तोड़-मरोड़ करे, यह मुझे तो कभी अच्छा नहीं लगा। अपनी स्वतंत्रता को स्थापित करने के इस प्रयत्न का प्रभाव मुझ पर भी पड़ा और हमारे संबंधों पर भी। किंतु संबंधों की यह शिथिलता बहुत दीर्घकालीन सिद्ध नहीं हुई। वह सामयिक दुर्घटना बनकर ही रह गई। हमारे संबंधों का नैसर्गिक रंग पुन: पुन: लौट कर आया।

पर मैं उन संबंधों की बात नहीं कर रहा, जिनके आधार पर प्रेम को 'यारों का यार' कहा गया। 'यारी' और 'आत्मीय संबंधों' में बहुत अंतर होता है। वर्षों पहले जब प्रेम का वैवाहिक संबंध तय हो रहा था, उसने एक दिन आकर मुझे चकित कर दिया। बोला- उसके माता-पिता ने एक लड़की पसंद कर ली है। अब पूर्ण स्वीकृति देने से पहले वह चाहता है कि मैं और मेरी पत्नी उस लड़की को देख लें और अपना निर्णय बताएं।

''और यदि वह लड़की हमें पसंद न आई तो ?'' मैंने पूछा।

''तो यहां विवाह नहीं होगा।'' उसने कहा, ''आपकी सहमति के बिना विवाह नहीं होगा।''

किसी के लिए लड़की या लड़का देखना मेरे लिए कोई बहुत कठिन काम नहीं था। अपनी राय भी मैं बड़ी सुविधा से दे सकता था। ऐसे काम मैं पहले अपने मित्रों के लिए भी कई बार कर चुका था। पर यहां, जहां प्रेम के माता-पिता लड़की को पसंद कर अपनी स्वीकृति दे चुके थे, मामला जटिल था। यदि हमें लड़की पसंद न आई तो? अच्छा खासा जुड़ता हुआ रिश्ता टूट जाएगा और फिर लगेगा कि प्रेम के माता-पिता के किए हुए संबंध को हमने तुड़वा दिया है। भांजी मारना किसी भी रूप में शोभनीय नहीं होता।

हम दोनों पर्याप्त संकोच कर रहे थे, किंतु प्रेम नहीं माना। हमें जाना ही पड़ा। सौभाग्य से लड़की हमें भी पसंद आ गई और किसी प्रकार का कोई संकट खड़ा नहीं हुआ।... पर बात तो संबंधों के निर्वाह की थी। प्रेम ने अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण मोड़ पर जो सम्मान हम दोनों को दिया था, उससे संबंधों को उनकी पूर्णता में ग्रहण करने और निभाने का प्रमाण मिला।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

अपने संबंधों के लिए मैं स्वयं को श्रेय नहीं देता। मैं नए संबंध बनाने और पुराने संबंधों के निर्वहन में बहुत पटु नहीं हूं। इस संदर्भ में मेरी ओर से सक्रियता बहुत कम होती है। छात्र हों या शिष्य, उनके प्रति मेरा समान भाव ही रहता है। अब यह उनका ही गुण होता है कि कौन इस संबंध को कितनी दूर ले चलने को प्रस्तुत है। कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने पर प्रेम के सामने भी पारिवारिक और साहित्यिक संबंधों के लिए विस्तृत क्षेत्र था। अधिकांश छात्र कॉलेज छोड़ने के पश्चात् अपने अध्यापकों को भी छोड़ जाते हैं। वे मानते हैं कि हमारा संबंध कॉलेज के माध्यम से था और कॉलेज तक ही था। मैं मानता हूं कि वास्तविक संबंध तो कॉलेज छोड़ देने के बाद ही विकसित होते हैं। प्रेम ने अपने संबंधों को न तो काल की दृष्टि से सीमित किया और न ही साहित्य की सीमाओं में बांधा। वह उसे पारिवारिक क्षेत्र में भी ले आया। मेरे परिवार के प्रत्येक सदस्य को पूरे स्नेह और सम्मान के साथ स्वीकार किया और अपने परिवार में हम लोगों को पूरा अधिकार दिया।

दो वर्ष पूर्व मेरे पुत्र का विवाह था। विभिन्न कामों के लिए मुझे सहायता और सहारे की आवश्यकता थी। अनेक मित्र और (पूर्व) छात्र पूरी तरह से मेरे साथ लगे हुए थे। प्रेम भी उनमें था और सब से पहले था। उसी अवसर पर काम के आधिक्य के कारण मेरी परेशानी देख कर उसने एक वाक्य कहा था, जो मुझे स्मरण है और रहेगा। उसने कहा था,

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम के विषय में माना जाता है कि वह बहुधंधी व्यक्ति है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह दस प्रकार के व्यवसाय करता है, अथवा कई प्रकार के उद्योग-धंधे और व्यापार करता है ; किंतु वह मित्रों, संबंधियों, कॉलेज, मुहल्ले और अन्य प्रकार की संबंधित संस्थाओं की जिम्मेदारी ले सकता है। ले लेता है। वह कॉलेज, विश्वविद्यालय और अपने मुहल्ले की निवासी परिषद् के चुनाव में स्वयं कूद सकता है, अथवा किसी को चुनाव लड़वा सकता है।

''सर! आप आज्ञा तो दीजिए। हम खड़े हैं। जो कहिएगा, हो जाएगा।'' मैं जानता हूं कि यह केवल औपचारिक वाक्य नहीं था। इसमें सच्चाई है। उसके मन में भी वही भाव था, जो शब्दों से प्रकट हो रहा था। वह अपनी क्षमता भर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम करने को तैयार था।

लेखक-मंडल में हम प्रत्येक लेखक की रचना बड़े धैर्य से सुनते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं। यह क्रम सन् 1965 ई. से चल रहा है। प्रेम इस लेखक-मंडल का मेरे बाद सबसे पुराना और सब से नियमित सदस्य है। मुझे वे दिन भी याद हैं, जब अनेक कारणों से हमारे सदस्य इधर-उधर बिखर जाते थे और अकेला प्रेम ही गोष्ठी के लिए आता था। प्रेम, मैं और मेरी पत्नी मधुरिमा- हम तीन व्यक्ति बैठ कर रचना पढ़ते और सुनते थे। पर लेखक-मंडल चलता रहा था। इस प्रकार मैंने प्रेम की उन दिनों लिखी गई, प्राय: सारी ही रचनाएं सुनी हैं। आरंभ में वह कहानियां भी लिखता था। कविताएं भी लिखता था। अब भी कभी-कभी कविता की कुछ पंक्तियां- व्यंग्यात्मक ही सही - लिख लेता है। किंतु मूलत: विकास उसके व्यंग्यकार का ही हुआ है। मुझे अपने मित्रों का स्वयं को किसी भी प्रकार सीमित कर लेना पसंद नहीं है - न पढ़ने के क्षेत्र में और न ही लिखने के क्षेत्र में। संकीर्णता अच्छी नहीं होती, किंतु उसी प्रकार विक्षेप भी अच्छा नहीं होता। प्रेम का लिखना व्यंग्य तक ही सीमित हो गया। उसने एम.फिल और पी-एचडी के शोध के लिए भी व्यंग्य संबंधी विषय ही लिए। इससे उसकी व्यंग्य के प्रति निष्ठा प्रकट होती है। उसने स्वयं को बिखरने नहीं दिया। अपनी सीमा को पहचान कर, अतिरिक्त बोझ को छांट दिया।

मैंने प्रेम की (एक समय तक) सभी रचनाएं सुनी हैं। इसलिए जब उसकी पुस्तकें आईं तो उसकी सहज ही यह इच्छा रही होगी कि मैं उनकी समीक्षा करूं। उसके पहले व्यंग्य संग्रह 'राजधानी में गंवार' के प्रकाशन पर तो मेरी पूरी तैयारी ही थी। उस पुस्तक की पंक्तियों के नीचे खिंची रेखाएं और मेरे पुराने कागजों में रखी हुई टिप्पणियां इसका प्रमाण हैं। किंतु शायद समीक्षाएं लिखना मेरी प्रवृत्ति ही नहीं है। रचना को सुन कर तत्काल अपनी प्रतिक्रिया देना मुझे कभी कठिन नहीं लगा, किंतु जब बात लिखने की आती है तो सदा ही मैं समीक्षा, आलोचना, चिंतनपरक निबंध इत्यादि के स्थान पर कथा या व्यंग्य लिखने बैठ जाता हूं। इसीलिए उस पुस्तक की समीक्षा नहीं लिखी गई। शायद उसकी पुस्तकों पर मैंने पहली समीक्षा उसकी नवीनतम पुस्तक 'शर्म तुमको मगर क्यों आती' पर लिखी है। उसका निमित्त उस पुस्तक पर हुई वह गोष्ठी बनी, जिसकी मुझे अध्यक्षता करनी थी। उसी संदर्भ में पुस्तक पढ़ी, उसे स्थान-स्थान पर चिह्नित किया और गोष्ठी में बोल आया। बाद में स्वयं को स्मरण दिलाता रहा कि यदि मैंने सप्ताह भर में ही कुछ लिख नहीं दिया तो कहने योग्य बातें विस्मृत हो जाएंगी और फिर कभी यह समीक्षा नहीं लिखी जाएगी। परिणामत: यह समीक्षा किसी प्रकार लिखी गई। मैंने वह प्रेम को भेज भी दी, किंतु मुझे लगा कि मैं एक तटस्थ समीक्षक के रूप में उसकी समीक्षा नहीं कर पाता हूं; आलोचना तो करना ही नहीं चाहता हूं। मैं यह भूल नहीं पाता हूं कि यह समीक्षा प्रेम की रचनाओं पर लिखी गई है और यह छप कर सबके सामने जाएगी। इसलिए यह हम दोनों के बीच न रह कर सार्वजनिक घोषणा होगी। जो कुछ और जितना कुछ मैं कहना चाहता हूं, वह केवल उससे कहना चाहता हूं। जो कहना चाहता हूं, वह कभी अध्यापक के रूप में कहना चाहता हूं, कभी बड़े भाई के रूप में, कभी उसके प्रशंसक और मित्र के रूप में। इसमें यह दोष तो है ही कि एक ओर जहां मैं उसको उसके दोष बताना चाहते हुए भी उसका आत्मबल क्षीण नहीं करना चाहता, वहीं मैं एक अपरिचित अथवा तटस्थ आलोचक के रूप में उसकी मुक्त रूप से प्रशंसा भी नहीं कर पाता। सार्वजनिकता का संकोच मुझे बांधता है, मेरी मर्यादा मुझे बांधती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया अपनी नैसर्गिकता की रक्षा नहीं कर पाती। मैं उसके साथ बैठ कर उसकी रचनाओं पर कहीं अच्छी तरह चर्चा कर सकता हूं।

प्रेम के विषय में माना जाता है कि वह बहुधंधी व्यक्ति है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह दस प्रकार के व्यवसाय करता है, अथवा कई प्रकार के उद्योग-धंधे और व्यापार करता है ; किंतु वह मित्रों, संबंधियों, कॉलेज, मुहल्ले और अन्य प्रकार की संबंधित संस्थाओं की जिम्मेदारी ले सकता है। ले

प्रेम जनमेजय विशेषांक

लेता है। वह कॉलेज, विश्वविद्यालय और अपने मुहल्ले की निवासी परिषद् के चुनाव में स्वयं कूद सकता है, अथवा किसी को चुनाव लड़वा सकता है। फिर उसके लिए वोट बटोरने में अपना समय लगा सकता है और तब उसे भी अनुभव होता है और मुझे भी कि इन कारणों से उसका लेखन पिछड़ रहा है। पिछले दिनों उसने रूसी सांस्कृतिक केन्द्र में साहित्यिक गतिविधियों का दायित्व संभाल लिया। उसकी बाहरी गतिविधि बढ़ गई। उसके आस-पास लेखकों का जमघट हो गया। उसके जनसंपर्क और लोकप्रियता में वृद्धि हुई। किंतु लेखन मार खाता रहा।... फिर उसने अनेक प्रकार के संपादन का कार्य स्वीकार कर लिया। सहसा ही मुझे लगा कि शायद प्रेम अपने समय का सबसे अधिक लोकप्रिय संपादक हो उठा है। अनेक व्यंग्य संग्रहों, पत्रिकाओं और विशेषांकों के अतिथि संपादक के रूप में उसका नाम दिखाई देने लगा।

मेरा ही नहीं सारे हिन्दी जगत् का अनुभव है कि हमारे जितने भी लेखक संपादन की ओर बढ़े, उनके सृजन ने उसका भारी शुल्क चुकाया है। मैं संपादन का विरोधी नहीं हूं, किंतु यदि लेखन और संपादन में से किसी एक को चुनना हो तो व्यक्तिगत रूप से मैं लेखन को ही चुनूंगा। मैं मानता हूं कि चुनाव तो प्रेम का भी वही होगा, किंतु वह संपादन के लोभ का भी संवरण नहीं कर पाया है, इसलिए उसने संपादन के वे दायित्व भी स्वीकार किए हैं।

पर तब मेरा मन दूसरी दिशा से भी सोचने लगता है।... अनेक बार प्रेम की कोई रचना सुन या पढ़ कर लगा कि अरे, प्रेम को इस क्षेत्र का ज्ञान कैसे हुआ? और कोई व्यंग्यकार तो भारत की अर्थ व्यवस्था के विषय में इस प्रकार चिंतन नहीं कर पा रहा। प्रेम शेयर बाजार को भी समझता है। निर्यात और आयात को भी समझता है। उत्पादन और विक्रय को भी समझता है। मुद्रा-स्फीति और मुद्रा-विनिमय की स्थिति और परिस्थिति को भी समझता है।... तो कैसे समझता है? क्योंकि वह बहुधंधी है। विभिन्न क्षेत्रों के संपर्क में आता है और वहां की सामग्री से अपना साहित्य रचता है। तो सतही रूप से जो गतिविधियां उसके लेखन के लिए घातक प्रतीत हो रही हैं, भीतर से कहीं वे उसे लिखने की ऊर्जा भी दे रही हैं। यदि वह साहित्य से असंबद्ध उन सारी गतिविधियों को अपने साहित्य की उपजीव्य सामग्री बना लेता है तो फिर उसमें हानि ही क्या है।''

इस संस्मरण को लिखे हुए बहुत समय बीत गया है। आज लेकर बैठा हूं तो लगा कि इसके पश्चात् तो गंगा-यमुना में बहुत सारा पानी बह चुका है।...

प्रेम अपने कॉलेज की नौकरी में रहते हुए ही, सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माध्यम से सांस्कृतिक सचिव बन कर ट्रिनिडाड और टोबैगो में 'पोर्ट और स्पेन' में रह रहा था। तभी एक दिन उसका फोन आया कि वे लोग वहां एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन कर रहे हैं और वह चाहता है कि मैं उसमें सम्मिलित होने के लिए पोर्ट ऑफ स्पेन में उसका अतिथि बन कर वहां पहुंचूं।...

तब तक विदेश-यात्रा के नाम पर मैं नेपाल तक ही गया था, जहां न पासपोर्ट चाहिए था, न वीज़ा। मैं ऐसा घरघुस्सू आदमी हूं कि गाज़ियाबाद तक जाना भी मुझे कष्टकर लगता है; और वह मुझे पोर्ट ऑफ स्पेन बुला रहा था।

''हम आपको यात्रा व्यय के लिए एक हज़ार डॉलर देंगे।...'' उसने मुझे सम्मेलन में चर्चा के लिए विषय आदि भी बताए। अधिकांश विषय तो विदेशों में हिन्दी पढ़ाने के संबंध में ही थे।

इतनी लंबी यात्रा के नाम से ही मैं घबरा गया था। मैंने कहा, ''देखो प्रेम, न तो ये विषय मेरी रुचि के हैं और न मेरी रुचि ऐसी यात्राओं में है?''

''हम आपको आपकी पसंद का विषय देंगे और आपको सत्र का अध्यक्ष भी बना देंगे।'' उसने कहा और इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, उसने कहा, ''सर, आपके मन में मेरे लिए यदि थोड़ा-सा भी स्नेह है तो मेरे यहां से जाने से पहले एक बार आप मेरे घर में पदार्पण अवश्य करें।...''

यह किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का निमंत्रण नहीं रह गया था। बात स्नेह पर ही आ गई थी, मेरे पास कोई विकल्प नहीं रह गया था। मैंने 'हां' कर दी।

''यदि भाभी जी मान जाएं तो उनको भी लेते आइए, हम उनका भी आधा खर्च दे देंगे।''

''वे तो मनी-मनाई हैं। यात्रा-प्रिय हैं। आ जाएंगी।''

वहां से पत्र आ गया और हम लोग तैयारी में लग गए। संयोग ही था कि उन दिनों मेरा छोटा पुत्र अगस्त्य, सिएटल से घर (दिल्ली) आया हुआ था। मेरी यात्रा की घबराहट को उसने संभाल लिया। वह वीज़ा के लिए फार्म भर देगा। वह मेरी टिकट बुक करा देगा।...

''ट्रिनिडाड जाएंगे और अमेरिका नहीं जाएंगे?'' उसने चकित होकर पूछा, ''अमेरिका आएंगे और सिएटल नहीं आएंगे?''

होते-होते बात यहां तक पहुंची कि हम लंदन और न्यूयार्क के मार्ग से पोर्ट ऑफ स्पेन जाएंगे, ताकि लौटते हुए न्यूयार्क में अपने छोटे भाई और अन्य मित्रों से मिल सकें। न्यूयार्क से पंद्रह दिनों के लिए सिएटल जाएंगे। वह स्वतंत्र यात्रा होगी। सिएटल से वापस न्यूयार्क और न्यूयार्क से लंदन में मधुरिमा की बहन के पास होते हुए दिल्ली लौटेंगे। पहली बार विदेश जा रहा था और उसी में आधे संसार की इतनी भारी यात्रा बन गई थी।...

दिल्ली से पोर्ट ऑफ स्पेन तक पहुंचते-पहुंचते हम दोनों ही ध्वस्त हो चुके थे और ऊपर से पता लगा कि हमारा सारा सामान भी नहीं पहुंचा है। हम इमिग्रेशन अफसर से सिर मार रहे थे कि प्रेम वहीं

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम ने 'हनुमान चालीसा' की ही शैली में एक रचना, 'जहाजी चालीसा' रची थी। उसमें भारतीय प्रवासियों की पीड़ा का चित्रण था। भारत छोड़कर जहाज़ में सागर पर तैर कर, एक अपरिचित भूमि के निकट जाते हुए उन लोगों के मन में क्या-क्या भाव रहे होंगे- प्रेम ने उन भावों का चित्रण किया था।

आ गया। उसने भारतीय दूतावास वाला अपना पहचान-पत्र उस इमिग्रेशन अधिकारी को दिखाया और सारा दायित्व अपने सिर ले लिया। हवाई अड्डे की सारी औपचारिकताएं पूरी कर, हम बाहर निकले। उसने हमारा सामान अपनी गाड़ी में रखा और मेरी ओर मुड़ा, ''सर, इस अफरातफरी में मैं प्रणाम करना तो भूल ही गया ?''

उसने हम दोनों के पांव छुए।

वह किसी होटल या गेस्ट हाउस के स्थान पर हमें अपने घर ले आया था। पता चला कि कन्हैयालाल नंदन भी उसी के घर पर ठहरे हुए थे और वे स्वस्थ नहीं थे। घर सुंदर और हरा-भरा था। आशा ने बड़ी आत्मीयता से स्वागत किया और अपने स्वभाव के अनुसार सत्कार आरंभ कर दिया। उसने बताया कि प्रेम की नियुक्ति का समय पूरा हो रहा था और वह उसे बढ़वाना नहीं चाहता था। वह दिल्ली लौट जाना चाहता था; किंतु उसकी बहुत इच्छा थी कि उसके यहां से जाने से पहले एक बार हम लोग उसके इस घर में उसका आतिथ्य अवश्य स्वीकार करें। कौन पुत्र और शिष्य नहीं चाहता कि उसके माता-पिता और गुरु उसका साम्राज्य न देखें। हम उसका भाव समझ रहे थे और उसे स्वीकार कर रहे थे।

...रात को तो भोजन कर हम सो गए; प्रातः पता चला कि वहां तो मेला लगा हुआ था। विश्व के अनेक देशों से लोग आए थे। भारत से भी अनेक लोग पधारे थे; और वे सब प्रेम के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। ऐसे में वह हमारा सत्कार अपने व्यक्तिगत अतिथियों के रूप में नहीं कर सकता था। हमें अपनी देखभाल स्वयं ही करनी थी। तीन दिन वह आधिकारिक और औपचारिक कामों में व्यस्त रहा। हम भी प्रयत्न करते रहे कि अपना प्यार और महत्व दिखा कर किसी भी प्रकार उसके लिए कोई कठिनाई उत्पन्न न करें। यह उसका मेला था। हम मेले के सामान्य प्रतिभागी बने रहें। हमारा प्रयत्न था कि मेला सफलतापूर्वक पूरा हो। सब लोग प्रसन्न मन रहें और प्रसन्न हो कर ही लौटें।

मेला समाप्त हो गया तब प्रेम ने बताया कि एक दिन हम लोगों को ट्रिनिडाड के कुछ सुंदर स्थल दिखाए जाएंगे और अगले दिन वह हम कुछ लोगों को टोबैगो द्वीप की सैर कराने ले जाएगा। उसका सारा खर्च वह अपनी ओर से कर रहा था। हमने कहा भी कि उसका हमें साथ ले जाना ही काफी है, अपने हिस्से का खर्च हम स्वयं करेंगे। किंतु हम जानते थे कि प्रेम इस प्रकार के प्रस्ताव नहीं मानता।

टोबैगो की वह यात्रा सचमुच जीवन भर स्मरण रह जाने वाली है। छोटी-सी, लगभग आधे घंटे की हवाई यात्रा। फिर एक स्थानीय मित्र के होटल में नहाना-धोना और दोपहर का भोजन और फिर एक मोटर बोट में समुद्र की यात्रा। था तो वह समुद्र ही किंतु फिर कैसे इतना उथला था कि बीच-बीच में लोग नाव से उतर कर तैरने लगते थे और फिर वह 'नायलन पूल'। उसमें तो हम सब ही पानी में उतर कर रेत पर खड़े थे। जिनको तैरना आता था, वे भी और जिनको तैरना नहीं आता था, वे भी। साफ-स्वच्छ रेत दिखाई पड़ती थी और भी बहुत कुछ।....

यदि प्रेम ने वह सब न दिखाया होता तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि संसार में ऐसा भी कोई स्थान है। मन में एक दंश था तो यह ही कि सारे पैसे प्रेम ने अपनी जेब से खर्च किए थे और वह हम से कुछ भी नहीं ले रहा था।

प्रेम ने 'हनुमान चालीसा' की ही शैली में एक रचना, 'जहाजी चालीसा' रची थी। उसमें भारतीय प्रवासियों की पीड़ा का चित्रण था। भारत छोड़कर जहाज़ में सागर पर तैर कर, एक अपरिचित भूमि के निकट जाते हुए उन लोगों के मन में क्या-क्या भाव रहे होंगे- प्रेम ने उन भावों का चित्रण किया था। पुस्तिका छप चुकी थी और दो-चार दिनों में उसका लोकार्पण होना था।

उस दिन उसने घर पर रवि महाराज को बुला रखा था। रवि महाराज (सत महाराज के ही समान) ट्रिनिडाड के हिंदुओं के धार्मिक-सामाजिक नेता थे। वे भारत में आकर काशी में रह कर संस्कृत तथा हिन्दी की शिक्षा ग्रहण कर के लौटे थे। वे हिन्दी अच्छी तरह बोल लेते थे। धार्मिक कर्मकांड की भी शिक्षा उन्होंने ली थी। 'जहाजी चालीसा' के लोकार्पण में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने

फोन कर एक कन्या को बुला लिया था। उसने शुद्ध उच्चारण में भारतीय संगीत में बांधा गया वह चालीसा गाया। मुझे अच्छा लगा, मैंने उसकी प्रशंसा में दो-एक वाक्य कहे। किंतु उस कन्या ने न तो मेरी ओर देखा और न ही मेरी बात का उत्तर दिया। वह रवि महाराज की ओर देख रही थी।

''यह हिन्दी नहीं समझती ?'' मैंने पूछा।

''नहीं।''

''तो वह हिन्दी की रचना को शुद्ध उच्चारण में गा कैसे लेती है ?''

''ओह।'' प्रेम ने कहा, ''आपने ध्यान नहीं दिया कि यहां के भारतवंशी, हिन्दी फिल्मों के गाने कितने मज़े से गाते फिरते हैं। किंतु वे समझते एक शब्द भी नहीं हैं।''

''ओह...''

तो प्रेम के 'जहाजी चालीसा' के लोकार्पण की तैयारी थी और वह प्रेम के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर था। वह चाहता था कि हम दोनों भी उस अवसर पर उपस्थित रहें।

एक ओर मुझे लगता था कि हमें ऐसे महत्वपूर्ण अवसर के लिए रुकना चाहिए और प्रेम के उस उत्सव का अंग बनना चाहिए, दूसरी ओर लग रहा था कि प्रेम ने हमें निमंत्रित करते समय इस प्रकार का कोई संकेत क्यों नहीं दिया। हमने अपना कार्यक्रम बनाते हुए और टिकट खरीदते हुए, 'जहाजी चालीसा' के लिए कोई अवकाश ही नहीं रखा था। टिकट के हिसाब से हमें अगले ही दिन चल पड़ना था।... वह टिकट तो शायद बदलवाई जा सकती थी। तिथि आगे बढ़वाई जा सकती थी... किंतु फिर न्यूयार्क से सिएटल की टिकट... वे पंद्रह दिन, जो अगस्त्य ने हमारे लिए रखे थे। सिएटल से वापसी की टिकट... न्यूयार्क से लंदन की टिकट... लंदन में रुकने की अवधि। लंदन से दिल्ली की टिकट... एक बड़ा झमेला हो जाता। भारी मन से यही कहना पड़ा, ''प्रेम, यह संभव नहीं होगा।''

प्रेम को अच्छा तो नहीं लगा होगा। हो सकता है कि उसके मन में कहीं एक शिकायत भी उभरी हो कि हम उसके जीवन के एक महत्वपूर्ण उत्सव के अवसर को अनदेखा कर रहे हैं। पर ऐसी कोई शिकायत उसने कभी की नहीं।

मेरे विषय में प्रेम का पहला निबंध था, 'खाकी निकर लाल सलाम'। उसे मुझमें ये दोनों चीज़ें आरंभ से ही दिख रही थीं। संभवत: वह संभ्रम की स्थिति में था, कि वस्तुत: वह मुझे क्या समझे और अपने जीवन में कहां रखे। उसके जीवन में मेरा क्या स्थान हो। तब न वह समझता था और न मैं इस बात को जानता था कि जीवन न केवल 'खाकी' हो सकता है, न केवल 'लाल'। जीवन अनेक रंगों का सामंजस्य है। जो यह नहीं मानता और केवल एक रंग का झंडा लहराता है, वह न अपने प्रति ईमानदार है और न समाज के प्रति।

फिर भी प्रेम को आरंभ से ही मुझ में 'लाल सलाम' भी दिखाई पड़ रही थी। अपने देश की राजनीति और साहित्य में हमारा परिवेश अत्यधिक सांप्रदायिक है। एक विशेष संप्रदाय के माफिया-राज ने हमें जकड़ रखा है। यदि उस संप्रदाय की इच्छानुसार नहीं लिखा जाएगा तो तत्काल आपको अस्पृश्य घोषित कर, साहित्यिक-मृत्युदंड दे दिया जाता है। जैसे-जैसे जीवन आगे बढ़ता गया, मेरी अपनी समझ में आता गया कि मानवीय समता और मानवीय न्याय में पूरा विश्वास करते हुए भी मैं लाल सलाम को अपने समाज, देश, संस्कृति, अपनी भाषा और अपने धर्म के लिए बहुत अनुकूल नहीं पाता हूं। इसलिए खाकी निकर मैंने चाहे कभी न पहनी हो, (वस्तुत: किसी भी एक पार्टी, दल अथवा संगठन से बंध कर रहना मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं पड़ता। शायद अतिक्रमण ही मेरा स्वभाव है।); किंतु भारतीयता और भारतीय संस्कृति की ओर अधिक से अधिक प्रवृत्त होता गया हूं। परिणामत: 'तथाकथित साहित्यिक समाज' में मेरी अस्पृश्यता गहरी होती गई। मेरे पाठकों की संख्या भी बढ़ी और उनका प्रेम भी। भारत के विश्वविद्यालयों में मेरे साहित्य पर शोध भी पहले से अधिक होने लगा है। प्रकाशकों का आग्रह भी बल

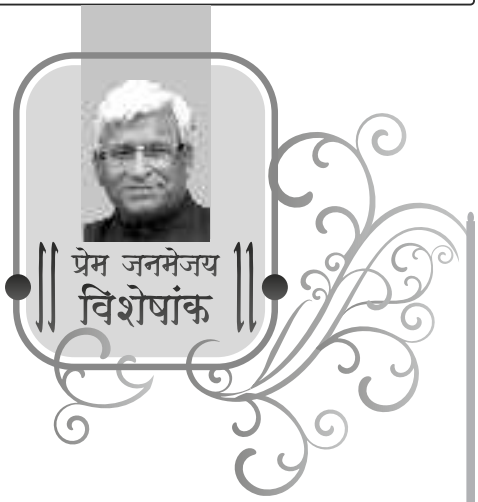

पकड़ने लगा है। एक पांडुलिपि किसी एक ही प्रकाशक को दी जा सकती है। मैं वही करता हूं; किंतु उसके पश्चात् मीठे ढंग से अन्य प्रकाशकों की शिकायतें आने लगती हैं कि मैंने वह पांडुलिपि किसी और को क्यों दे दी। उन्हें क्यों नहीं दी।

यह सब होने पर भी 'सांप्रदायिक साहित्यिक समाज' मुझसे तो अपनी दूरी बनाए ही हुए है, जो कोई मेरे साथ खड़ा दिखाई देता है, उसे भी बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। इसलिए मेरे साथ खड़ा होना भी संकट का काम है। उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। मेरे जीवन में अनेक लोग आए हैं, जो व्यक्तिगत रूप से तो मेरे बहुत आत्मीय हैं; किंतु साहित्य के मंच पर सार्वजनिक रूप से वे मेरे साथ दिखाई पड़ना नहीं चाहते। उन्हें भय है कि ऐसा होने पर वे भी सांप्रदायिक साहित्यकारों के द्वारा मेरे ही समान अपनी काली सूची में पहुंचा दिए जाएंगे।

प्रेम सबसे अपना संबंध बनाए रखना चाहता है। उसने बनाए भी रखा है। ऐसे में यह आशंका तो रहती ही है कि किसी एक संबंध के कारण शेष संबंधों पर आंच न आए। प्रेम के व्यंग्य संग्रह प्रकाशित होने लगे तो मैं देखता रहा कि वे संबंधों और लेखकीय महत्व के नाम पर समर्पित होते थे। मेरा संबंध सब से पुराना था किंतु कोई भी व्यंग्य संकलन मुझे अथवा मेरी पत्नी को समर्पित नहीं हुआ। कारण मैं समझता था। मेरे संदर्भ में जितनी

प्रेम जनमेजय विशेषांक

भी खाकी निकर उसे दिखाई देती थी, वह संकट का कारण थी। मेरे प्रति उसकी आत्मीयता कुछ अन्य लोगों को अखर सकती थी। इसी संदर्भ में मुझे नरेन्द्र मौर्य का स्मरण हो आता है। वह अपनी मित्र मंडली के साथ दिल्ली आया था और वे लोग एक साहित्यिक आयोजन कर रहे थे। वह मुझ से मिलने आया किंतु उसने मुझे उस आयोजन का निमंत्रण-पत्र नहीं दिया। वह अपना रहस्य छिपा भी नहीं पाया, बातों ही बातों में कह गया। आपको निमंत्रित करूंगा तो मंच पर बैठाऊंगा; किंतु मेरे संगी साथी उसके लिए तैयार नहीं हैं। एक पूरा का पूरा गुट स्पष्ट हो जाएगा। इसलिए आपको निमंत्रित ही नहीं कर रहा। आप को बुलाकर हॉल में तो नहीं बैठा सकता। उसी दिन बुलाऊंगा, जिस दिन मंच पर बैठा पाऊंगा।

यही संकट प्रेम के साथ भी था। मैं उसकी स्थिति समझता था और नहीं चाहता था कि उसके लिए कोई संकट खड़ा करूं। हां अपने धरातल पर उसे परामर्श अवश्य देता था। उसने सीता के अपहरण को ले कर एक व्यंग्य नाटक लिखा, जिसमें राम और लक्ष्मण दंडक वन के थाने में अपहरण की प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) लिखाने जाते हैं। मैंने उससे कहा था कि व्यंग्य में ही सही किंतु वह पौराणिक प्रसंगों को इस प्रकार के विवादों में न घसीटे। राम-लक्ष्मण जैसे चरित्रों को थाने में गिड़गिड़ाते और धक्के खाते देख, किसी भी आस्थावान हिंदू को अच्छा नहीं लगेगा। भावनाओं के धरातल पर मैं स्वयं उससे आहत होता हूं। किंतु उसने न मेरा परार्श माना, न भावनाओं की चिंता की। वह रचना काफी दिनों तक विकसनशील रही। उसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे। उसका मानना है कि वह पर्याप्त लोकप्रिय हुई और उसके विरोध में कोई शिकायत उसे नहीं मिली। अनेक नगरों में उसका मंचन हुआ और समाचार-पत्रों में उसकी रपट छपी। रपटें प्रशंसात्मक ही थीं।

और फिर प्रेम ने 'व्यंग्य-यात्रा' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। मेरा समर्थन मिलना ही स्वाभाविक था। मैं देख रहा था कि उसमें मेरे पक्ष-विपक्ष के सारे व्यंग्यकार छप रहे थे। निश्चित रूप से एक उदार और सफल संपादक सिद्ध हो रहा था। मुझे प्रसन्नता थी कि उसे सब ओर से समर्थन मिल रहा था। ऐसे में यदि व्यक्तिगत रूप से मेरे प्रतिकूल लेखकों, मेरे अकारण विरोधियों को भी उसमें महत्व मिल रहा था तो मुझे तटस्थ भाव से वह सब स्वीकार करना था। मेरी अपनी सीमाएं हैं। मैंने कभी नहीं चाहा कि मेरे पुत्र अथवा मेरे शिष्य मेरी उन सीमाओं के बंदी बनें। वे स्वतंत्र रह कर सफल हों, मेरी यही कामना रही है।... और एक दिन प्रेम ने मुझे सूचित किया कि वह मुझ पर केन्द्रित 'व्यंग्य-यात्रा' का विशेषांक प्रकाशित करना चाहता है। उसके संदर्भ में सामग्री उपलब्ध करा कर मैं उसकी सहायता करूं।

सत्य तो यह है कि मैं इस सूचना से डर गया। क्या वह जानता है कि मुझ पर विशेषांक प्रकाशित कर वह कितने लोगों को स्पष्ट कर लेगा? कविता सुरभि ने मेरे साहित्य पर एम.फिल और पी-एचडी. कर दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को इतना स्पष्ट कर लिया कि उसको न आज तक किसी कॉलेज में नौकरी मिली, न कोई संभावना है। उसे भी मैंने सचेत किया था, किंतु वह अड़ी रही थी। वह गुरु भक्ति पर शहीद हो जाने की मुद्रा में थी और वह हुई भी। अब प्रेम का क्षेत्र चाहे कोई और है किंतु संकट तो वैसा ही है। किंतु प्रेम ने चिंता नहीं की। जैसी-तैसी सामग्री मैं दे सकता था, मैंने दी, शेष उसने स्वयं जुटाई; और अंततः एक वृहदाकार विशेषांक प्रकाशित किया, जिसमें मेरे जीवन और व्यंग्य-लेखन संबंधी सामग्री का भंडार एकत्रित कर दिया। ऐसा विशेषांक उससे पहले मेरे विषय में कभी प्रकाशित नहीं हुआ था। इस प्रकार खुल कर तो वह कभी मेरे साथ खड़ा नहीं हुआ था।

इस संदर्भ में हम ने परस्पर कभी कोई चर्चा नहीं की। किंतु मेरे मन में स्पष्ट हो गया कि प्रेम अब कुछ बदल ही नहीं गया है, पर्याप्त प्रौढ़ भी हो गया है। उसने अपने मन के अनेक जाले साफ कर लिए हैं। वह अब मुझे लेकर अपने साहित्यिक विरोधियों से आशंकित नहीं है। उसके अपने मन में भी मुझे लेकर आशंकाएं नहीं थीं। वह इतना सबल और परिपक्व हो चुका था कि विरोध की गर्म हवा के झोंकों को झेल सके और अपने पुष्ट पगों पर खड़ा होकर कह सके कि ''यह सत्य है।''... उसके सहपाठी मेरे एक पूर्व और प्रिय छात्र ने अंक देखा तो कहा, ''इस बार तो प्रेम ने कमाल ही कर दिया।''

और तभी उसने 'गगनांचल' के अगले अंक के लिए मुझ से रचना मांगी। मैंने अपनी रचना तो दी ही, (मार्क्सवादी) रूसी प्रो. यूजीनिया वानिना का मेरे विषय में लिखा हुआ निबंध ''नरेन्द्र कोहली का पौराणिक आधुनिकतावाद।'' भी पढ़ने को दे दिया। प्रेम ने उसे पढ़ा और मुझे सूचित किया कि वह उसे मेरी रचना के साथ ही 'गगनांचल' के अगले अंक में प्रकाशित कर रहा है। ''भ्रमित पाठकों और आलोचकों को भी सत्य का ज्ञान होना चाहिए?''

मैं क्या कहता। किंतु मेरा मन उस वृद्ध व्यक्ति का-सा अनुभव कर रहा था, जिसका पुत्र युवा और शक्तिशाली हो गया हो। अपने पिता के विषय में अपनी धारणा बना चुका हो और उसके दुर्बल होते हुए शरीर को आश्वासन दे रहा हो कि उसे अपने क्षरण की चिंता नहीं करनी है। उसे ऊर्जा की कभी कमी नहीं रहेगी। मेरे पिता प्रायः कहा करते थे कि वे वृद्ध होकर अपने पांच पुत्रों के भरोसे पहले से पांच गुना शक्तिशाली हो गए हैं। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम जनमेजय से मुलाकातें

■ *उषा राजे सक्सेना*

वर्षों पूर्व की बात है एक दिन नेहरू सेंटर जाना हुआ, वहाँ गगनांचल की कुछ प्रतियाँ एक कोने में पड़ी नज़र आईं। निदेशक से पूछा, यदि गगनांचल की प्रतियाँ आपके पास कुछ अतिरिक्त हों तो एक प्रति मैं पढ़ने के लिए ले जाऊँ। वे बड़े सहृदय थे, बोलें, हिन्दी की पत्रिकाएँ यहाँ कोई पढ़ता नहीं है। आप ले जाएँ, पढ़िए और अगर कोई और पढ़नेवाला मिल जाए तो उसे भी दे दीजिए। फिर तो मैं अक्सर वहाँ जा कर गगनांचल और कुछ अन्य हिन्दी की पत्रिकाएँ जो वहाँ आती थीं घर ले आती, पढ़ती और एक दो लोग जो हिन्दी पढ़नेवाले थे उन्हें दे देती थी।

ऐसे में एक दिन मेरे हाथ लगा वह अंक जिसमें निकला था एक व्यंग्य ''माथे पर बिंदी''। इस व्यंग्य रचना ने गुदगुदाते हुए मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं इसे दो-तीन बार पढ़ गई। इस तरह ''माथे पर बिंदी'' के माध्यम से मेरी पहली मुलाकात यशस्वी व्यंग्य लेखक प्रेम जनमेजय से हुई। मित्रों को पढ़वाया। पति राजे को पढ़ कर सुनाया। हर एक को यह व्यंग्य लेख सरस और यथार्थ से जुड़ा हुआ लगा। ब्रिटेन में बसे सभी पारिवारिक मित्रों को लेख की भाषा सहज और ग्राह्य लगी। पुरवाई के लिए सामग्री जुटाते समय सोचा क्यों न यह लेख पुरवाई में छापा जाए इससे पुरवाई का मान और स्तर दोनों बढ़ेंगे। हिन्दी भाषा के प्रति ब्रिटिश हिन्दी पाठकों का रुझान बढ़ाना ही 'पुरवाई' का एक मात्र लक्ष्य है। फिर जैसे प्रेम जनमेजय कोई मेरे अपने हों बिना उनकी सहमति लिए वह लेख 'हिन्दी की बिंदी' मैंने पुरवाई में छाप दी। राजे को पता चला, वे बहुत नाराज़ हुए, कहने लगे, 'लेखक आप पर दावा ठोक कर कोर्ट में घसीट सकता है।' मैं घबरा गई। पद्मेश को बताया उन्होंने कहा, 'आप चिंता मत करिए, अगर कोई बात हुई तो मैं संभाल लूँगा।' पद्मेश गुप्त, इंग्लैण्ड का एक बड़ा नाम है। वे भारत के लगभग सभी साहित्यकारों से परिचित हैं और सभी उनका सम्मान भी करते हैं। मैं मन ही मन निश्चिंत हो गई कि पद्मेश जी प्रेम जनमेजय से बात-चीत करके उन्हें पटा लेंगे। बाद में पता चला कि मैंने कुछ नया नहीं किया है। यह सब हिन्दी में धड़ल्ले से चलता है।

कमरे में पूर्व की ओर दीवार के सहारे कुशन के साथ प्रेम जनमेजय का भव्य व्यक्तित्व, अंदर तक भेदने वाली एक्सरे आँखें, बच्चों जैसी मंद-मंद निश्छल मुस्कान, और आकाशवाणी पर समाचार पढ़ने वाली गहरी विशिष्ठ आवाज़ के साथ बैठा बतिया रहा था.. सबके साथ मेरा भी परिचय हुआ। मेरा मन उनको थोड़ा और जानना और सुनना तो बहुत चाह रहा था पर नमस्कार... नमस्कार, कुशल-क्षेम.. बस।

इधर प्रेम जनमेजय के लेखों का जादू सर पर चढ़ कर बोल रहा था। उधर मैं खोज- खोज कर उनके व्यंग्य पढ़ने लगी। बाद में अभिव्यक्ति वेब पत्रिका में उनके लेख पढ़े। जितना उन्हें पढ़ती उतना ही उनके लेखन के प्रति रुचि और आकर्षण बढ़ता जाता.. आप सोचेंगे कि यदि मैं प्रेम जनमेजय की इतनी बड़ी प्रशंसक हूँ तो मैंने व्यंग्य विधा पर कलम क्यों नहीं चलाई। वस्तुतः व्यंग्य लिखने के लिए एक विशेष दृष्टि की आवश्यकता होती है। पाठक होने के लिए दृष्टि नहीं रुचि चाहिए। प्रेम जनमेजय के व्यंग्य लेख मुझे हँसाते और गुदगुदाते साथ ही एक नई दार्शनिक जीवन दृष्टि भी देते। धीरे- धीरे मुझे समझ आ रहा था कि व्यंग्य लेखन

प्रेम जनमेजय विशेषांक

एक गंभीर कर्म है और उसके लिए एक सुनियोजित मस्तिष्क चाहिए जो बिरले के पास होता है। प्रेम जी का लेखक व्यक्तित्व मुझे अद्‌भुत लगा।

मेरी मुलाकातें प्रेम जनमेजय से उनके लेखन के माध्यम से होती रहती थीं। यही मेरे जैसे पाठक के लिए काफी था। ऐसे में एक दिन प्रेम जनमेजय से एक और मुलाकात उनके द्वारा लिखी गई एक समीक्षा के माध्यम से हुई। प्रेम जनमेजय ने यू.के. के कथाकार तेजेन्द्र शर्मा के एक कहानी संग्रह की समीक्षा लिखी थी। तेजेन्द्र ने उसे पुरवाई में छापने के लिए मेरे पास भेजी। मन की बात बताती हूँ... मेरे यशस्वी, प्रभावशाली लेखक की वह समीक्षा मुझे पसन्द नहीं आई क्योंकि समीक्षा से अधिक वह तेजेंद्र से उनकी दोस्ती की गाथा थी। इस तरह से अपने व्यक्तिगत संबंधों को उजागर करते हुए समीक्षा लिखना मुझे कुछ ठीक नहीं लगा। मैं अपने प्रिय व्यंग्यकार की छवि पर आँच नहीं आने देना चाह रही थी। उस दोस्ती वाले भाग को मेरा संपादक मन काट देना चाह रहा था पर इससे मेरे व्यंग्यकार के सम्मान में अंतर पड़ता, तेजेन्द्र तो नाराज़ होते ही होते। इसलिए मैंने वह समीक्षा दबा दी। बाद में वह समीक्षा पद्मेश के पास पहुँच गई और उन्होंने उसे ज्यों की त्यों पुरवाई में छाप दी। बहरहाल पीछे उस समीक्षा को लेकर लोगों ने कई पत्र लिखे पर वे पत्र मैं दबा गई।...

मेरी तीसरी मुलाकात प्रेम जनमेजय से ई-मेल पर हुई जब उन्होंने त्रिनिदाद में हिन्दी सम्मेलन किया था। ई-मेल द्वारा उनका निमंत्रण अन्य साहित्यकारों के साथ मुझे भी मिला था। तेजेन्द्र ने बताया कि प्रेम जनमेजय ने उन्हें टिकट भेजा है और वे जा रहे हैं। पद्मेश भी गए। पद्मेश ने मुझसे भी चलने को कहा। राजे जी ने भी मेरा मन टटोला मैं टाल गई, यह कह कर कि बहुत ख़र्चा होगा वे हँसे और बोले यह ख़र्चे पर आपकी दृष्टि कबसे पड़ने लगी।...

मुझे याद है मेरी पहली वास्तविक मुलाकात प्रेम जन्मेजय से लंदन में 2002 में उस समय के हिन्दी अधिकारी अनिल शर्मा के घर पर हुई, जब वे त्रिनिदाद से अपना तीन वर्ष का टर्म पूरा करके वापस भारत जा रहे थे। इस अवसर पर अनिल जी ने मुझसे कढ़ी बना कर लाने के लिए कहा था। राजे प्रेम जनमेजय से मिलने को उत्सुक थे। इस मुलाकात का मुझे भी इंतज़ार था। अनिल जी ने ब्रिटेन के लगभग सारे परिचित साहित्यकार बुला रखे थे। कमरा छोटा था। लोग बहुत सारे थे।... कमरे में पूर्व की ओर दीवार के सहारे कुशन के साथ प्रेम जनमेजय का भव्य व्यक्तित्व, अंदर तक भेदने वाली एक्सरे आँखें, बच्चों जैसी मंद-मंद निश्छल मुस्कान, और आकाशवाणी पर समाचार पढ़ने वाली गहरी विशिष्ठ आवाज़ के साथ बैठा बतिया रहा था.. सबके साथ मेरा भी परिचय हुआ। मेरा मन उनको थोड़ा और जानना और सुनना तो बहुत चाह रहा था पर नमस्कार... नमस्कार, कुशल-क्षेम.. बस। आगे कोई बात न हो सकी। उनके चारों ओर रस की लोभी मधुमक्खियाँ भन-भन कर रही थीं, मेरे लिए वहाँ कोई जगह नहीं थी.. मैं मन मसोस कर रसोई में जाकर अनिल जी की पत्नी सरोज की सहायता करने लगी। यद्यपि लंदन में वे एक सप्ताह रहे पर मेरा दोबारा उनसे मिलना नहीं हो पाया।...

2004 में प्रेम जनमेजय जी ने जब व्यंग्य यात्रा निकाली तो उसकी एक प्रति कई वर्षों तक मुझे भी मिलती रही। मैंने प्रेम जनमेजय की पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' के पहले अंक के संपादकीय से जाना कि व्यंग्य विधा क्या होती है और कितनी गंभीर होती है। इस प्रवेशांक में उन्होंने बड़ी ही कुशलता और विद्वता के साथ सटायर, व्यंग्य, हास्य और अभिदा आदि विधा के बारे में विस्तार से लिखा था। व्यंग्य यात्रा का पहला अंक और उसका संपादकीय ऐसा सशक्त था कि मन नहीं माना और मैंने संपादक जी को पत्रिका के प्रकाशन पर साधुवाद देते हुए बधाई पत्र लिख भेजा। शायद वह पत्र अगले अंक में प्रकाशित भी हुआ था। वैसे पत्र-वत्र लिखना मेरे बस की बात नहीं है, पर कभी-कभी लेखनी मन मानी कर जाती है।

इसी वर्ष मेरे कहानी संग्रह 'वाकिंग पार्टनर' का प्रकाशन हुआ। मित्र-बंधु लोकार्पण के लिए दबाव डालने लगे। किसी मित्र के सहयोग से लोकार्पण का आयोजन इंडिया हैबिटाट सेंटर-दिल्ली में किसी प्रसिद्ध संस्था के तत्वावधान में होना निश्चित हुआ। ऐसे अवसरों पर अनुभवहीन होने के करण मैं बहुत संकोच अनुभव करती हूँ। निमंत्रण पत्र राजे और एक साहित्यिक मित्र भेज रहे।

मेरा नाम हिन्दी समिति, पुरवाई और कवि सम्मेलनों के माध्यम से उजागर हो चुका था। इस समय तक मेरी दो-तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी थीं और मैं भारत के साहित्यकारों से कुछ-कुछ परिचित भी हो चुकी थी। परंतु साहित्यकारों के बीच मैं बहुत संकोच अनुभव करती। भारत के समकालीन साहित्यिक वातावरण, रीति-रिवाज़ और आदर सम्मान करने के तरीक़ेसे भी मैं अपरिचित थी। किसी के मान सम्मान में कहीं कोई त्रुटि रह गई तो बड़ी अशोभनीय स्थिति हो जाएगी। इसलिए अक्सर मैं अपना मुँह बंद रखती और मिलने मिलाने से कन्नी काट जाती थी। इसके साथ ही मुझे यह भी अहसास था कि भारत के मनीषियों के अपेक्षाओं पर खरा उतरने की क्षमता मुझमें नहीं है। मेरा साहित्यिक ज्ञान और आदर सम्मान प्रदर्शन उन लोगों की तुलना में निल है। मैं जानती थी कि यह सब मान-सम्मान मुझे इसलिए मिल रहा है क्योंकि मैं ब्रिटेन में रह कर हिन्दी लेखन कर रही हूँ।

लोकार्पण के उत्सव में स्व. कमलेश्वर, स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, हिमांशु जोशी, केशरीनाथ त्रिपाठी वक्ता थे, हरीश नवल ने भी वक्तव्य दिया था। संभवत: दिल्ली में पहली बार विदेशों में रहने वाली किसी हिन्दी की लेखिका के पुस्तक का लोकार्पण हो रहा था। सभी जाने-माने साहित्यकार सभागार में उपस्थित थे। भव्य आयोजन था। प्रकाशक अशोक माहेश्वरी पुस्तकें लेकर आए थे पुस्तकों की बिक्री हुई। हस्ताक्षर हुए। बहरहाल मुझे याद नहीं कि प्रेम जनमेजय को निमंत्रण गया था या नहीं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम जनमेजय का यह सांकेतिक व्यंग्य लेख मेरे मनोबल पर घातक वार कर गया। समय के साथ धीरे-धीरे व्यंग्यकार का दृष्टिकोण स्पष्ट होने लगा। अपने आप से तर्क करने लगी, लेखक का तो कार्य ही समाज की विद्रूपताओं को देखना और पाठकों तक ले जाना है और व्यंग्यकार का तो नैतिक कर्तव्य होता है कि समाज की विडम्बनाओं और विद्रूपताओं से पाठकों को मुद्दभेड़ कराए।

(राजे बता रहे हैं कि भेजा गया था) प्रेम जनमेजय समारोह में नहीं आए थे। पता नहीं लोकार्पण की रिपोर्ट कहीं छपी या नहीं मुझे नहीं मालूम पर कुछ ही दिनों बाद प्रेम जनमेजय का एक तीखा परंतु मनोरंजक व्यंग्य लेख इस लोकार्पण को लेकर आ गया। लेख में उन सभी साहित्यकारों और लेखकों की अच्छी-ख़ासी धज्जियाँ उड़ाई गई थीं जो इस लोकार्पण में आए थे। पुस्तक की लेखिका पर जो कटाक्ष किए गए थे, उसने मेरे मनोबल का जो मर्दन किया, वह आज भी याद करती हूँ तो सारे स्नायु तंत्र झनझना उठते हैं। अर्से तक मैं इस खिंचाई से त्रस्त, बेचैन और सहमी रही। प्रेम जनमेजय का यह सांकेतिक व्यंग्य लेख मेरे मनोबल पर घातक वार कर गया। समय के साथ धीरे-धीरे व्यंग्यकार का दृष्टिकोण स्पष्ट होने लगा। अपने आप से तर्क करने लगी, लेखक का तो कार्य ही समाज की विद्रूपताओं को देखना और पाठकों तक ले जाना है और व्यंग्यकार का तो नैतिक कर्तव्य होता है कि समाज की विडम्बनाओं और विद्रूपताओं से पाठकों को मुद्दभेड़ कराए।

वैसे सच माने यदि उस व्यंग्य लेख का संकेत मेरी ओर न होकर किसी और पर होता तो मुझे बहुत रुचता। यह सीधा कटाक्ष मुझ पर और मेरे अतिथियों पर था। मन किया उनसे मिला जाए पर सोचा व्यंग्यकारों के लेख पढ़ना तो ठीक है पर मिलना-जुलना ठीक नहीं है, न जाने कब कौन-सी बात पकड़ लें और फिर कर दें आपकी ऐसी तैसी.... प्रेम जनमेजय की सशक्त लेखनी को नमन। आज भी उनके व्यंग्य लेख मेरी रसोई में पतीले में पकती दाल को जला कर राख़ कर देते हैं।

इस बीच व्यंग्ययात्रा के अंक निश्चित समय पर मुझे मिलते रहे, उनको पढ़ने के लिए मन सदा आतुर रहता है। अब तो व्यंग्य यात्रा इंटरनेट पर आ गई है, इस लिए कभी भी कोई भी उसे पढ़ सकता है।

बाद में उसी वर्ष या अगले वर्ष दिल्ली के अक्षरम संगोष्ठी में उनसे फिर मेरी मुलाकात हुई। प्रेम जनमेजय, मनोहर पुरी और उनकी पत्नी के साथ कुछ और लोग भी लॉबी में खड़े थे। प्रेम जनमेजय हिन्दी सम्मेलनों की चुटकियाँ ले रहे थे। मैं उधर से गुज़र रही थी, प्रेम जनमेजय को कोई चेहरा भूलता नहीं है, चाहे वह कितना भी साधारण क्यों न हो। इतने भीड़-भड़क्के में भी उन्होंने मुझे आवाज़ दी। दुआ-सलाम के बाद छूटते ही बोले, सक्सेना जी दिखाई नहीं पड़े। कहाँ छोड़ आईं उन्हें? जी वे दिल्ली में नहीं हैं। प्रवासी दिवस में सम्मिलित होने के लिए हैदराबाद गए हुए हैं। अरे फिर तो आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करिए। अभी ठहरने का प्रबंध तो नहीं हुआ होगा? मनोहर पुरी ने भी इसरार किया। वस्तुतः अभी दो तीन सप्ताह पूर्व मनोहर पुरी और उनकी पत्नी सूरिनाम में हुए सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन से लौटते हुए लंदन में हमारे अतिथि थे। हाँ...हाँ फिर तो आप हमारे साथ ही चलिए हम दोनों आस-पास ही रहते हैं। शाम को बैठक होगी। संतों के संगत का लाभ उठाइए। हमें अपने आतिथ्य से वंचित मत कीजिए। बाप रे! तीन दिन व्यंग्य लेखक के संगति में। न...न. क्या पता मुझे निशाना बनाकर ये कोई और व्यंग्य लेख लिख दें। मैं सतर्क हो गई। एक बार फिर वह लोकार्पण वाला लेख मेरी आँखों के आगे से गुज़र गया। ना भाई ना। पत्रकारों और व्यंग्यकारों से दूर रहना ही समझदारी है।

ठीक उसी समय राजे का फ़ोन आया मेरे ठहरने की व्यवस्था अशोक चक्रधर के यहाँ हो गई है। पहाड़ से गिरी और खजूर में अटकी।

चलते-चलते आगे इतना ज़रूर जोड़ना चाहूँगी.. आगे हुए कई अन्य अनुभवों ने मुझे यह अनुभूति दी कि व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय एक श्रेष्ठ, सहृदय, उदार मनुष्य हैं जिनकी सदाशयता में अनेक लेखक जन्म लेते हैं, पनपते हैं और फिर सघन वृक्ष बन दूसरों को छाया देते हैं। प्रेम जैसा व्यंग्यकार दशकों में एक पैदा होता है जिसे केवल व्यंग्य विधा ही नहीं, साहित्य की अन्य विधाओं का भी अपरिमित ज्ञान होता है। प्रेम जनमेजय एक ऐसे व्यंग्यकार हैं, जिसमें एक संपूर्ण साहित्य कोष समाया हुआ है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

साक्षात्कार

बिना स्कैंडल के चर्चा में प्रेम जनमेजय

■ *अनिल जोशी*

हिन्दी चेतना के लिए सुधा जी ने प्रेम जी पर लेख लिखने को कहा, समय की भाग-दौड़ के चलते मैंने सोचा कि क्यों ना लेख के बजाय उनका साक्षात्कार ही ले लूं। शाम ढल रही थी सवाल उठने लगे और बातचीत यूं चल निकली...

– अनिल जोशी।

प्रश्न – आप ने व्यंग्य विधा क्यों चुनी। आप कवि या कहानीकर क्यों नहीं हुए?

उत्तर - देखिए। सच्चाई यह है कि मैंने ट्राई हर जगह ली। कुछ कविताएं लिखी थी प्रारंभिक काल में वे प्रेम-पत्रों के रूप में थी। पर उनसे ना वो.... मिल सकी ना कविता का राम। कहानी लिखने के लिए जो कल्पनाशीलता और विवरण प्रधानता चाहिए थी, वह मेरे पास नहीं था। मैं कोशिश करता तो लोग कहते कहानियां क्यों बना रहा है, दो-चार बार डांट मार भी खाई। फिर कहानियां बनाना छोड़ दिया। जो ठीक लगा वह कहने लगा। यार दोस्तों को बिना लाग-लपेट के कह देते थे पर मगरमच्छ सामने आए तो थोड़ा अंदाज बदला। लोगों ने कहा यह व्यंग्य है और तुम अच्छे व्यंग्यकार हो।

प्रश्न – देखिए आप सीधी बात बताइए। आप घुमा-फिरा के क्यों कह रहे है?

उत्तर - हर साहित्यकार अमर होना चाहता है। मैं देख रहा था परसाईं जी, शरद जोशी वगैरह जा रहे हैं। कई बुजुर्ग व्यंग्यकारों की तबियत ठीक नहीं रहती। मेरी पीढ़ी के लोग कविता-कहानी में उलझे रहे जहाँ आलोचक उन्हें घास नहीं डाल रहे थे। मैंने उन्हें वहीं लगे रहने के लिए प्रोत्साहित किया। नई पीढी व्यंग्य के बजाए लाफ्टर चैलेंज की तरफ जा रही है तो मुझे लगा कि मैदान खाली है या खाली करवाया जा सकता है। बस धीरे-धीरे मित्रो की कृपा से हम छा गए।

प्रश्न – यह कहा जाता है कि आप व्यंग्य के श्रीलाल शुक्ल भी है और नामवर सिंह भी। यही आपकी सफलता का मंत्र हैं!

उत्तर - आपके पास इनसे बड़े कोई नाम नहीं है। इस तरह का आभास भी देना मेरे लिए एक उपलब्धि है।

प्रश्न – बात करें साहित्यिक प्रवत्तियों की, कुछ साहित्यकार साहित्य के रामविलास पासवान हैं जो किसी भी सरकार में मंत्री बन जाते हैं। उनकी तारीफ में कुछ कहना चाहेंगे!

उत्तर - किसी एक विचार या विचारधारा या उससे भी आगे बढ़कर किसी राजनीतिक दल से संबंध बना कर साहित्य में उनकी बांग देते रहना ठीक नही है। उसी तरह किन्हीं पूर्वाग्रहों के चलते किसी से संबंध ना रखना, उससे बचना, उसे साहित्यिक अछूत समझना यह आपको राजनीतिक फायदे तो दे सकती है पर व्यक्ति के नाते यह प्रवृत्ति आपको गिराती है। मानवीय गरिमा का सदा ध्यान रखना चाहिए और अच्छे-बुरे समय में सबसे जुड़ा रहना चाहिए। पर इन सिद्धांतों की आड़ में हर साहित्यिक गुट में अपनी टांग घुसाए रखना और हर तरफ से फायदा उठाना आपको साहित्य में लुंजपुंज और अवसरवादी बना सकता है।

प्रश्न – कुछ लोगों को कहना है कि आप सिर्फ नाम के ही प्रेम हैं। आपके साहित्य में प्रेम नाम की कोई चीज़ नहीं है। मसलन कोई स्कैंडल, कोई स्टिंग आपरेशन। कुछ प्रसिद्ध संपादकों से आपने कुछ नहीं सीखा। सिर्फ अपनी पत्नी आशा जी के पल्लू से बंध कर बैठ गए। दिल हाथ में

लेकर नहीं घुमे। क्या अमर कृतियां नहीं लिख पाने के पीछे यही कायरतापूर्ण प्रवृत्ति है!

उत्तर - मेरा नाम प्रेम है, प्रेम चोपड़ा नहीं। साहित्य में जीवंतता शाश्वत तत्वों से आती है। सनसनी से नहीं। आप कई बार प्रसिद्ध लोगों से यह सीखते हैं कि क्या करना है और कई बार यह सीखते हैं क्या नहीं करना है। इस मामले में क्या नहीं करना वाली लाइन पर ही मैं चला। हमने सोचा चर्चा में आने के लिए स्तरीय लेखन का सहारा लें न कि ऊल-जलूल, सनसनीखेज वक्तव्यों का या स्केंडलों का। व्यंग्य हास्य नहीं है एक गंभीर लेखन है। एक दृष्टि है। यह असाधरणता एकनिष्ठ साहित्य साधना मांगती है। हम साहित्यकारों को समझना चाहिए की हम साहित्यिक पत्रिका निकाल रहे हैं तहलका नहीं। बाकी, हां, आशा जी का मेरे जीवन में और साहित्य में जो योगदान है। वह मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व में है इस लिए मेरी जो भी उपलब्धि हैं जो कई लोगों के लिए आशातीत हैं, उसके पीछे मेरी पत्नी आशा ही है।

प्रश्न – एक सोच यह भी है कि आपको अच्छा संपादक कहने वाले वही लोग हैं जो नही चाहते कि व्यंग्य विधा में तीसमारखां बन कर उभरें!

उत्तर - उनमें तो आप भी हैं। आप हमेशा मेरे संपादन की प्रशंसा करते है। व्यंग्य लेखन एक रचनात्मक काम है तो संपादन एक बड़ा सामाजिक दायित्व है। चीजों को बनाना तो नहीं पर बनी चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है।

फिर आप जानते हैं संपादक के जलवे। अहंकारी साहित्यकारों का सामने गिड़गिड़ाना किसे अच्छा नहीं लगता। यह भी एक नशा है। अब वे उतरे तो लिखूं और आप जैसे लोग जब भी मिलते हैं तारीफ कर एक जाम और पिला देते हैं।

प्रश्न – जब देखो आपका कुछ लिखा सामने आता रहता है। या तो लेख, संपादित पत्रिकाएँ, दूसरे साहित्यकारों की पत्नियां उन्हें ताना मारती है तुम निकम्मे हो देखो प्रेम जी कितना लिखते हैं, काम करते हैं!

उत्तर - देखिए पत्नियां हमेशा प्रेरणा देते रही हैं। कुछ लिखने पर ताने मारकर, कुछ ना लिखने पर ताने मारकर। मैंने सोचा पहली श्रेणी में रहना ठीक है, कुछ कर के क्यों ना ताने सुनें।

प्रश्न – अन्ना हजारे रामलीला मैदान से चले भी गए और हम आपकी किसी भी टिप्पणी से वंचित रह गए?

उत्तर - मुझे इस बात का दु:ख है कि इस आंदोलन का श्रेय खांमखां अन्ना हजारे को दे दिया गया। व्यंग्यकार का तो प्रिय विषय भ्रष्टाचार ही है। शरद जोशी ने तीस साल पहले भ्रष्टाचार पर पुस्तक लिखी थी ' हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे', व्यंग्य विधा एक ऐसी विधा है जहां आपको झक मार कर भ्रष्टाचार के खिलाफ लिखना ही पड़ता है। कवि तो राज दरबार में आश्रित होकर भी रहे है। कोई भी शासन व्यंग्य को स्वीकार नहीं कर पाता। व्यंग्य लिखना तो सदा विरोध में रहना है। तो हम व्यंग्यकार तो शाश्वत अपोजीशन में है।

प्रश्न – हिंदी का वैश्वीकरण हो रहा है। अब आप पर अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का अंक निकल रहा है तो वैश्वीकरण की मलाई क्या आप ही खाएंगे?

उत्तर - देखिए मैं लंबी अवधि में त्रिनिडाड एवं टुबैगो मे रहा। आप लंदन रहे। मैंने त्रिनिडाड क घाट पर और आपने टेम्स पर हिंदी की बड़ी चंदन घिसी। गाय दुही। दूध निकाला। गर्म किया। अब मलाई क्या पड़ोसी खाएंगे।

वैसे सच्चाई यह है कि हिंदी की मलाई खाना एक विशिष्ट संप्रदाय के लिए सुरक्षित है। हम लोगों के लिए यह बीरबल की खिचड़ी ही है।

प्रश्न – ज़्यादातर कवि–कहानीकार अवसाद में रहते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर- ज़्यादातर साहित्कार इसलिए अवसाद में रहते हैं कि सारी दुनिया में सब कुछ जो खराब है, उसको बदलने और ठीक करने की उनकी ज़िम्मेदारी है तो वे पैन को पेचकस और टूलकिट समझ निकल जाते हैं। साथ ही वे समझते हैं कि सच्चे साहित्यकार के लिए असफल प्रेमी होना जरूरी होता है। वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान.. इस वज़ह से उन्हें अवसाद हो जाता है। फिर देखिए गान भी कहां निकल पाता है। इससे पहले उसका घर में, कार्यालय में अपमान हो जाता है। दुनिया के दु:ख, प्रेम की असफलताएं, जीवन की असफलताएं, साहित्यिक असफलताएं, कुल मिला कर दु:ख ही जीवन की कथा रही ..टाइप मामला हो जाता है.. तो अवसाद तो होना ही है।

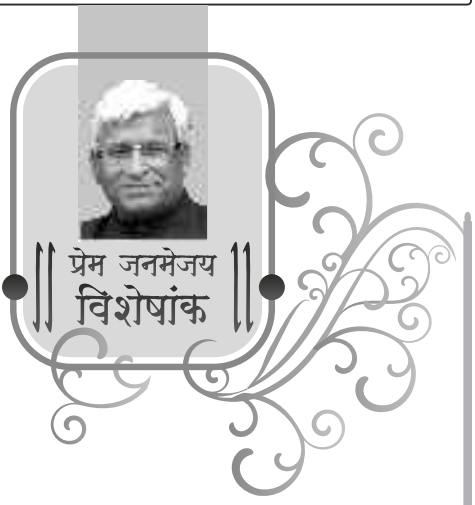

प्रश्न – साहित्य की तंग गलियों से गुज़रते हुए, एक दुसरे से धक्के खाते और धक्के देते, साहित्यकार के नाते आपका क्या ख्याल है साहित्यकार को इस अवसाद से बचने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर - देखिए जो तथाकथित सफल साहित्यकार है अगर उनका अनुसरण करना हो तो आप चीजों को गंभीरता से न लें। पतली गली से निकलना सीखें। अपनी कल्पनाशीलता के पंख निकलने न दें। साहित्य में पोलिटिकली करेक्ट रहें। पत्नी प्रेम और प्रेम प्रसंगो दोनों में संतुलन बनाए रखें। साहित्य में मध्यमार्ग अपनाएं रहें। विचारों पर नहीं व्यक्तियों पर ध्यान दें। जुगाड़ कला विकसित करें। लेखन के बजाए नेटवर्किंग पर ध्यान दें। पुरस्कारों पर अर्जुन की तरह नज़र रखें। ऐसी सफलताओं से मित्रों को अवसाद होता है और आपके अवसाद का रेचन होता है। अवसाद तो दुनिया में रहेगा ही अब आपको तय करना है कि यह आपको हो या आपके मित्रों को।

(इस ख्याली बातचीत के चलते नींद आ गई और साक्षात्कार लेने की उहापोह बनी रही और मैंने कल्पना में उनका साक्षात्कार ले ही लिया, अब प्रेम जी नाराज़ हों तो सुधा जी से निपटें, उन्होंने ऐसे काल्पनिक साक्षात्कार को क्यों छापा और आप प्रेम जी के उत्तरों से नाराज़ हो तो प्रेम जी से निपटे उनकी सोच ऐसी क्यों है। हां, तारीफ वगैरह की बात हो तो बंदा हाज़िर है।)

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

सरस्वती जैसी महान पत्रिका की याद दिलाती है व्यंग्ययात्रा

■ *गिरीश पंकज*

मुझे यह जान कर बेहद ख़ुशी हो रही है कि 'व्यंग्य-चेतना' की अगुआई करने वाले व्यंग्य-सर्जक प्रेम जनमेजय पर ''हिन्दी चेतना'' जैसी सजग पत्रिका एक विशेषांक प्रकाशित कर रही है। इसके पहले ''व्यंग्य-तरंग'' और अन्य पत्रिकाओं ने भी प्रेम जी पर अंक निकाले हैं। ख़ुशी की बात है कि प्रेम जी वैश्विक हो गए हैं। वैश्विक तो खैर वे पहले से ही रहे हैं मगर आपके विशेषांक ने उन्हें औपचारिक रूप से वैश्विक बना दिया है। प्रेमजी का अब समुचित मूल्यांकन हो रहा है, यह देख कर प्रसन्नता हो रही है। इसके पहले भी मैंने लिखा है, उसे यहाँ दुहराने का मोह संवरण नहीं कर पा रहा हूँ कि प्रेमजी पर कुछ लिखना मेरे लिये हमेशा सुखद लगता रहा। जब वे पचास के हुए, तब लिखा, जब उनकी कोई किताब आई तब लिखा, जब वे ''सठिया'' गए थे, तब भी लिखा और अब जब उन पर विशेषांक निकल रहा है, तब फिर कलम चला रहा हूँ। इसके पहले भी 'व्यंग्यतरंग' के लिये भी मैंने प्रेमजी के बारे में कुछ लिखा था।

जो लोग प्रेम जी को जानते हैं, उन्हें पता है कि प्रेम जनमेजय एक ऐसा नाम है, जिसका ज़िक्र होते ही, उस लेखक का चेहरा सामने आ जाता जो अग्रज भी है, मित्र भी और मार्गदर्शक भी। हम लोगों ने जब लिखना-पढ़ना शुरू किया था, तब प्रेमजी 'धर्मयुग' और 'सारिका' जैसी पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते थे। व्यंग्य में मेरी शुरू से गहरी दिलचस्पी थी इसलिये मैं अग्रज व्यंग्यकारों की रचनाएँ खोज-खोज कर पढ़ता था। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के साथ-साथ प्रेमजी, हरीश नवल, विनोदशंकर शुक्ल आदि की रचनाओं को ध्यान से इसलिये पढ़ता था कि देखूँ, ये किस तरह से चीज़ों को पकड़ते हैं और सचमुच बहुत कुछ सीखा इन व्यंग्यकारों से। जड़मति सुजान होने की कोशिश करता रहा। आज तक कर रहा हूँ। हर बार प्रेमजी जैसे लेखक पाथेय बन कर सामने मौजूद रहते हैं। फिर ऐसा दौर भी आया, जब हम इन व्यंग्यकारों के पीछे-पीछे चलने लगे। इन लोगों ने भी हम नए व्यंग्य-यात्रियों का पूरा सपोर्ट किया, क्योंकि ये लोग चाहते थे कि व्यंग्य की नदी भरपूर रहे। सारे व्यंग्यकारों से मिलना-जुलना होता रहा। शुक्ल जी तो रायपुर में ही हैं, मगर प्रेम जी और नवल जी से मिलने दिल्ली जाना संभव नहीं था। लेकिन मन में चाहत रहती थी कि कब भेंट हो। मुलाकात का संयोग बन ही गया। हम कुछ मित्रों ने उन्हें रायपुर बुलवाया। फिर तो ऐसे ऐसा हुआ कि हमारी मुलाकातें जल्दी-जल्दी होने लगीं। कभी दिल्ली, कभी जयपुर, कभी भोपाल, कभी दुर्ग, कभी लखनऊ, कभी गाजियाबाद, कभी शहडोल या कहीं और। अनेक शहर..यह सिलसिला अब तक जारी है। व्यंग्य के अनेक कार्यक्रमों में प्रेमजी के साथ शिरकत का सुअवसर मिला। हमेशा गहरी आत्मीयता का अहसास हुआ। उनको पढ़-सुन कर व्यंग्य-विमर्श की सार्थक कोशिश करता रहा।

प्रेमजी का व्यंग्य अपनी मौलिक स्थापनाओं के कारण अलग से पहचाना जाता है। उनके अनेक व्यंग्य चर्चित रहे है, और अभी तो उनका व्यंग्य नाटक ''सीता अपहरण केस'' चर्चित हो रहा है, अनेक शहरों में उसका मंचन हो रहा है। मुझे शरद जोशी की याद आ रही है, उनके दो नाटक भी बड़े चर्चित हुए थे। ''एक था गधा'' और ''अंधों का हाथी''। लगभग वैसी ही लोकप्रियता 'सीता अपहरण केस' को मिली है। 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका के माध्यम से तो वे व्यंग्य साहित्य के महा उन्नायक ही बन गए हैं। गंभीर व्यंग्य साहित्य को सजग पाठकों तक पहुँचने की कोशिश में इस पत्रिका के काम को भूलना नामुमकिन है। प्रेम जी व्यंग्ययात्रा का प्रकाशन बिना किसी राजनीति या राग-द्वेष से कर रहे हैं, इसे मैं दावे से कह सकता हूँ। मेरा उपन्यास ''माफिया'' जब छप कर आया तो बड़े-बड़े साहित्यिक माफिया मौन हो गए थे। किसी ने उस पर कुछ नहीं लिखा, न कहीं चर्चा की, मगर प्रेमजी ने ''व्यंग्ययात्रा'' में नियमित स्तम्भ ''त्रिकोणीय'' में ''माफिया'' पर तीन लेखकों से लिखवाया। खुद मेरे व्यंग्य-लेखन पर टिप्पणी की। यह बड़ी बात है कि कोई हम विधा लेखक अपने से छोटे लेखक को इतना महत्त्व दे। प्रेम जी ऐसा इसलिये कर सके कि वे व्यंग्यकार हैं। दूसरी विधा

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

> वे यारों के यार हैं। सच्चे साथी हैं, प्रतिभा को पहचानते हैं, उन्हें मंच देने की कोशिश करते हैं। "व्यंग्य यात्रा" के माध्यम से उन्होंने समकालीन हिन्दी व्यंग्य पर गंभीर विमर्श की सार्थक और महत्वपूर्ण कोशिश की है। वे एक सजग लेखक और खोजी संपादक हैं इसलिये लोग उनके कायल हैं, भक्त हैं, प्रशंसक हैं। 'व्यंग्ययात्रा' के साथ-साथ उनका अपना व्यंग्य लेखन भी गतिमान है।

का कोई लेखक ऐसा नहीं करता। मेरा तो अपना यही अनुभव है। हिन्दी में एक-दूसरे की जड़ काटने वाले निकृष्ट लेखक अधिक है। टुच्चापन कुछ हिन्दी लेखकों की पहचान है। लेकिन व्यंग्यकारों की दुनिया में यह रोग नहीं है। एक-दो तो हैं, मगर ये अपवाद हैं। ज़्यादातर व्यंग्यकार उदार हैं। और प्रेमजी उदारता के शिखर-पुरुष है। अपनी पत्रिका के लिये पीछे पड़-पड़ कर लिखवाते रहते हैं। अभी हाल ही में ''फेसबुक'' पर जैसे ही उन्हें पता चला कि मैंने एक व्यंग्य उपन्यास लिखा है, तो उन्होंने फ़ौरन कहा- ''उपन्यास का एक अंश भेज दो, प्रकाशित करूंगा''। यह उदारता प्रेम जी में कूट-कूट कर भरी है, इसलिये जब प्रेम जनमेजय का नाम आता है, या उन पर लिखने के लिये कहा जाता है तो कलम अपने आप चलने लगती है।

प्रेमजी ने मुझे कितना स्नेह दिया, इसे समझने के लिये एक उदाहरण ही पर्याप्त है कि जब वे त्रिनिदाद (वेस्टइंडीज़) में हिन्दी अध्यापन के लिये गए थे, तो उन्होंने ''अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मलेन'' का आयोजन किया था। इस आयोजन में उन्होंने मुझे भी बुलाया था। इस सम्मलेन में शामिल होने के लिये अनेक लेखक त्रिनिदाद पहुंचे और वहाँ हिन्दी की गंगाप्रवाहित होती रही। दस दिन हम लोग त्रिनिदाद में रहे। अंतिम तीन-चार दिन तो मैं प्रेम जी के घर पर ही रहा। सारे लेखक वापस लौट गए थे, मगर मेरा वीसा दस दिन था। प्रेमजी ने अपनी ओर से कहा, तुम मेरे साथ रहना, मेरे घर पर। बड़े संकोच के साथ मैं उनके घर चला गया। लेकिन वहाँ जाकर तो लगा ही नहीं कि किसी पराये व्यक्ति के घर में रह रहा हूँ। भाभीजी का आत्मीय व्यवहार और प्रेम जी का एक बड़े भाई जैसा स्नेह देख कर लगा कि यह वक्त ठहर जाये। दस दिन के दौरान प्रेम जी ने कन्हैयालाल नंदन जी, अशोक चक्रधर, तेजेंद्र शर्मा आदि के साथ मुझे कई कार्यक्रमों में काव्यपाठ के लिये शामिल किया। सम्मानित भी करवाया। इस घटना ने यह साबित कर दिया था कि प्रेम जनमेजय लेखक ही नहीं, एक महान मनुष्य भी हैं। मैं कितने ही लेखकों को जानता हूँ जो सृजन के मामले में दो कौड़ी के हैं मगर पद पा कर ऐसे मदमस्त हैं कि मत पूछो। ऐसे ही लोग थोड़ा-सा अवसर मिलते ही माफिया-डान बन जाते हैं, लेकिन बड़ा लेखक वही होता है जो 'डान' नहीं 'इनसान बने।

बहुत कुछ लिखा जा सकता है प्रेमजी के बारे में। वे यारों के यार हैं। सच्चे साथी हैं, प्रतिभा को पहचानते हैं, उन्हें मंच देने की कोशिश करते हैं। ''व्यंग्य यात्रा'' के माध्यम से उन्होंने समकालीन हिन्दी व्यंग्य पर गंभीर विमर्श की सार्थक और महत्वपूर्ण कोशिश की है। वे एक सजग लेखक और खोजी संपादक हैं इसलिये लोग उनके कायल हैं, भक्त हैं, प्रशंसक हैं। 'व्यंग्ययात्रा' के साथ-साथ उनका अपना व्यंग्य लेखन भी गतिमान है। प्रेमजी इस समय के बेहद सक्रिय व्यंग्यकार हैं। उनका मार्गदर्शन और स्नेह नई पीढ़ी को भी मिल रहा है। वे जो काम कर रहे हैं, उससे हिन्दी व्यंग्य समृद्ध हो रहा है, इसमें दो राय नहीं। इस महादेश में 'व्यंग्य यात्रा' ही इकलौती पत्रिका है, जो व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने के अभियान में लगी है। उनका यह काम मुझे 'सरस्वती' जैसी उस महान पत्रिका की याद दिलाता है, जिसके माध्यम से हिन्दी साहित्य की गहरी समालोचना हुई और अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकार भी प्रकाश में आये। व्यंग्य यात्रा के कारण भी हिन्दी व्यंग्यालोचन हो रहा है और श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ सामने आ रही हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि कोई लेखन और संपादन के क्षेत्र में समानरूप से सफलता के साथ सक्रिय रहे। प्रेमजी को देख कर मैं भी प्रेरित होता हूँ कि मुझे भी इसी तरह का ऊर्जावान बने रहना है क्योंकि मैं भी एक पत्रिका प्रकाशन करता हूँ। आखिर वे मेरे अग्रज लेखक-संपादक हैं।

प्रेमजी की यह ''व्यंग्य'' यात्रा'' इसी तरह जारी रहे। वे शतायु हों और निरंतर सक्रिय रहें, यही शुभकामना है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

मुझे अपनी इस मित्रता पर गर्व है

■ ज्ञान चतुर्वेदी

मुझे नहीं मालूम कि दोस्ती की परिभाषा आपकी नज़रों में क्या है। मेरे लिए दोस्ती का अर्थ वह संबंध है जिसमें स्वार्थ न हो, न ही गलत किस्म की प्रतिस्पर्धा हो, न गलतफहमियों के लिए कोई जगह हो और जो बस इसलिए हो कि क्योंकि वह संबंध आपको जीने का एक महत्वपूर्ण कारण देता है। निश्चित ही ऐसे संबंध एक जीवनकाल में गिने-चुने ही बन सकते हैं। इसलिए तो प्राय: दोस्तियां'जान-पहचान ही हुआ करती हैं जो स्वार्थ न सधने अथवा स्वार्थों के टकराव होते ही बिखर जाती हैं। मैं इस मामले में बेहद साफ हूं। मुझे पता है कि कौन मेरे दोस्त हैं, कौन जान-पहचान वाले और कौन बस यूं ही।

प्रेम जनमेजय मेरा दोस्त है। वह व्यंग्य लिखता है, आजकल महत्वपूर्ण संपादक भी है पर यह बात मात्र संयोग ही है। इसका हमारी दोस्ती से बस इतना ही लेना-देना है कि वही वह जगह थी जो हमारे मिलने का कारण बनी। लेखन में कैरियर बनाने की मेरी कभी कोई महत्वाकांक्षा नहीं रही। यह तो यूं हुआ कि लिखने लगा और लिखता ही चला गया। तो प्रेम संपादक हैं, इससे मेरी दोस्ती पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है। हां, जब उसकी इस काम के लिए तारीफ होती है तो शायद (भाभी के बाद) मैं ही सबसे ज्यादा दिल से प्रसन्न होता हूं। मैंने कभी उससे यह नहीं कहा कि मेरे बारे में, मेरी किसी किताब पर 'व्यंग्य यात्रा' में कुछ कर दो। उसने भी कभी किया तो इसलिए नहीं किया कि ज्ञान उसका दोस्त है, जबकि कई पहचाननुमा दोस्तियां'निभाने के लिए उसे यह भी करना पड़ा है। वह मुझे बता भी देता है। दिल के छाले कहीं तो फोड़ेगा ही।

प्रेम व्यंग्यकार है और व्यंग्य को जीने की कोशिश भी करता है। प्रेम प्राध्यापक है और वैसा ही जीने की कोशिश करता है। प्रेम एक अच्छा पति, पिता तथा दादा भी है और वैसी भूमिका निभाने के लिए हरदम प्रयत्नशील भी रहता है। प्रेम एक सच्चा और अच्छा दोस्त है मेरा, पर उसे यह बात सिद्ध करने के लिए कोई कोशिश नहीं करनी पड़ती। हम दोनों के लिए यह स्वयंसिद्ध सी बात है। प्रेम जैसा है वैसा ही दिखता है। दोगलापन नहीं है उसमें किंचित भी। साफगोई पर विश्वास करता है और चाहता है कि दूसरा भी उतना ही साफ हो। प्राय: यह हो नहीं पाता। दुनिया नकाबपोशों की है। रहना इसी दुनिया में है। सो आप उसे बहुत से ऐसे नकाबपोशों के बीच भी देख सकते हो और उसके बारे में गलत राय बना सकते हो। आप ऐसी राय बना लो तो वह बात का स्पष्टीकरण देने की परवाह नहीं करता है। जानता है कि समय के साथ गलतफहमियां दूर हो जाएंगी। होती भी हैं। न हों तो वह संबंध ही ऐसा था जो गलतफहमियों में ही चलता। उसका खत्म होना ही बेहतर मानता है प्रेम।

बिल्कुल शुरुआत में मुझे ऐसी गलतफहमी हुई थी। मेरे 'प्रेतकथा' नाम के प्रथम व्यंग्य संग्रह की भूमिका में मैंने इसका बेनामी जिक्र भी किया है। प्रेम ने भूमिका पढ़ी। जान गया कि आक्षेप उसी पर लगाया है मैंने। परंतु पट्ठे ने एक बार भी इस बात का ज़िक्र मेरे से नहीं किया। आज तक। मैं खुद समझ गया कि मैं गलत था और उस दुर्घटना की छाया भी हमारे संबंधों पर कभी नहीं पड़ी।

मैं दोस्ती में कभी कुछ भी अपेक्षा नहीं करता। प्रेम के अलावा इने- गिने ही ऐसे लोग हैं जो मेरे दोस्त हैं- अंजनी चौहान और प्रभु जोशी हैं। शुभचिंतक किस्म के मेरे खैर ख्वाहों की लिस्ट तो बहुत बड़ी है पर जिस तरह की दोस्ती का ज़िक्र अभी हो रहा है यह तो बस अंजनी, प्रभु और प्रेम से है। हम आपस में कोई अपेक्षा नहीं पालते परंतु वक्त आने पर सबसे पहले मौजूद रहते हैं। न मौजूद हों तो जान जाते हैं कि अवश्य कोई कारण होगा। कभी भी नहीं सोचा कि ऐसा उसने क्यों किया या क्यों नहीं किया। गलतफहमी को कभी फटकने ही नहीं दिया पास में।

तो ऐसे दोस्त प्रेम जनमेजय से जुड़े कुछ आत्मीय पलों के बारे में कुछ लिख रहा हूं। बहुत कम लिखा है। पंक्तियों के बीच पढ़ सकेंगे तो इतना होगा कि दिल भर जाएगा क्योंकि जो लिख रहा हूं वह दिल से लिख रहा हूं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

प्रेम को दुनियादारी की खासी समझ है और दुनिया की भी। वह चालाकियां करना चाहे तो उतना होशियार वह है। वह 'नेटवर्किंग और सेटिंग' भी कर सकता है। मुझे उसकी यही बात पसंद है कि वह सक्षम होते हुए भी बदमाश या तिकड़मी नहीं है। वह बिना आर्थिक आगा-पीछा देखे 'व्यंग्य यात्रा' जैसी पत्रिका निकालने में लिए घाटे के सौदे में कूद जाता है और फिर उस दुधारु पत्रिका के संपादक के तौर पर उससे 'दूध' भी ठीक से 'दोह' नहीं पाता।

अपने मित्र के लेखन के विषय में लिखने के अनेक खतरे हैं। तारीफ़ करें, तो कोई माने न माने या यही कहे, दोस्ती निभा दी, जिसकी यों भी उज्ज्वल परंपरा है हिन्दी साहित्य में कि तू मेरी तारीफ़ कर और मैं तेरे गुन गाऊँ और यदि बहुत वस्तुपरक होकर, निर्मम बनकर तथा इस प्रकार ज़माने के सामने स्वयं को दोस्ती, यारी, गुटबाज़ी, जोड़-तोड़ अर्थात् हिन्दी साहित्य में जमने के अनिवार्य सद्गुणों से ऊपर बताने के प्रयास में मित्र के लेखन का तिया-पांचा कर डालो, तो जो कठिनाइयां आएंगी, वे कुछ अधिक ही स्पष्ट हैं। तो अपने मित्र प्रेम जनमेजय के लेखन के विषय में अपनी टिप्पणी देते हुए मैं तलवार की धार पर चलने जैसा महसूस कर रहा हूं।

प्रेम ने 'राजधानी में गंवार' से शुरू किया और जैसा कि राजधानी में गंवारों के साथ होता है, डटकर माखन चट करने के बाद वे भोलेपन से यह भी कह रहे हैं कि 'मैं नहीं माखन खायो।'प्रेम के साथ अच्छी बात यह है कि वे आम हिन्दी व्यंग्यकारों की भांति बहुत लिखने में विश्वास नहीं रखते। हिन्दी व्यंग्य में एक अजीब-सा घपला चल रहा है- यदि आप खूब नहीं लिखते, तो आप अच्छा नहीं लिखते- ऐसा माना जाता है। प्रेम ने कम लिखा है, पर बहुत अच्छा लिखा है। उसने लोकरुचि समाचारों पर, तात्कालिक राजनीतिक दुर्घटनाओं पर न लिखने का संयम बरता है, जो बहुत कम व्यंग्यकार कर पाते हैं। इन मायामोह के बंधनों से परे हैं प्रेम।

प्रेम ने मध्यमवर्गीय जीवन के शाश्वत जीवन संघर्ष में आने वाले विषयों पर खूब लिखा है। मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियों, संघर्षों, टुच्चेपन, टूटते जीवन मूल्यों, आपाधापी तथा उनकी आकांक्षाओं का अपने तरीके से ख़ाका खींचा है। प्रेम जिसे कहते हैं कि क्या खूब खींचा है। वैसे प्रेम की व्यंग्यकार वाली निगाह सब तरफ पड़ती है- राजनीति, प्रेम, धर्म, शिक्षा,जाति, दफ्तर के खौफ़नाक जंगल, मानव संबंधों के जटिल संसार, दाम्पत्य का खट्टा-मीठा जीवन- कोई नहीं बचा है। जहां देखिए प्रेम जनमेजय पीछे खड़े हैं। इन विषयों पर प्रेम जनमेजय के लिखने के स्टाइल आदि पर बहस की गुंजाइश है, पर उनकी व्यंग्य दृष्टि पर बहस की या विवाद की कोई गुंजाइश नहीं।

प्रेम की लेखन शैली पर भी दो शब्द। जब प्रेम ने लिखना शुरू किया तब हिन्दी में व्यंग्य-लेखन के तीन स्कूल चल रहे थे तथा जो आज भी चल रहे हैं- परसाई स्कूल, शरद जोशी स्कूल और त्यागी स्कूल। हर स्कूल की अपनी पद्धति, सिलेबस और केरीकुलम। प्राय: नये लेखक इनमें से किसी की नकल करने का प्रयास करते हैं और अंतत: कहीं के नहीं रह पाते। ऐसे वातावरण में प्रेम ने अपनी शैली विकसित की। मैं यह तो नहीं कहूंगा कि प्रेम जनमेजय स्कूल भी चल पड़ा है, पर हां इधर के बहुत सारे युवा लेखन को पढ़कर लगता है कि प्रेम जनमेजय स्कूल का भी उद्घाटन हो गया है।

प्रेम से मुझे एक ही शिकायत है कि वे अपने लेखन में हास्य को स्थान देते ही नहीं, वरन् हास्य को वे लगभग दोयम दर्जे का, एक हद तक लुच्चेपन का कार्य मानते हैं। मैं इससे नितांत अलग राय रखता हूं। प्रेम को इस विषय पर खूब सोचना होगा। हास्य को परसाई जैसे लेखक ने भी यथास्थान सम्मान दिया है- फिर प्रेम ऐसा क्यों नहीं कर सकते हैं? लोग इसे उनकी अक्षमता भी मान सकते हैं- यह समझना है उसे।

हास्य और व्यंग्य में हास्य की महत्ता की ऐसी पुरातन बहस हो, या 'नई दुनिया' में **'व्यंग्य के दर्पण को काला'** बताने वाला मेरा लेख उसके प्रतिपक्ष में प्रेम का बेहद सधा उत्तर हो और मेरा प्रतिउत्तर- मेरे और प्रेम जनमेजय के बीच ऐसी बहसबाजी के बाद भी क्योंकर इतनी आत्मीयता, मित्रता और प्यार है, यह बस बहुत से उन लोगों को अचंभित तथा किसी हद तक परेशान भी करती है, जो मित्रता को मात्र लेन-देन तथा छोटे स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम मानते हैं। मैं भी ठीक से परिभाषित शायद न कर सकूं परंतु मेरी और प्रेम जनमेजय की दोस्ती बहुत ही अलग दोस्ती है जो हिन्दी लेखन में दुर्लभ-सी है। वह मेरी अच्छी रचना या मुझे मिले किसी पुरस्कार पर इतना प्रसन्न हो सकता है कि आपको बनावटी सा लगे। पर वह प्रेम से भरा है। एक दिन प्रताप सहगल जी ने 'बारामासी' का उदाहरण देकर कहा कि व्यंग्य ऐसा होता है जो अलग से उपदेश देता न दिखे, तो प्रेम जनमेजय ने अपनी रचना की कमी बताने पर बुरा न मानते हुए इस बात पर खुशी ज़ाहिर की कि उन्हें ज्ञान की 'बारामासी' इतनी पसंद आई। तुरंत अपना मोबाइल लगाकर मुझसे बात कराई तो प्रताप सहगल हमारी मित्रता पर कविभूत होकर बोले कि यार 'प्रेम और ज्ञान' एक दूसरे के विरुद्ध भाव हैं फिर भी तुम्हारी मित्रता देखकर आश्चर्यचकित हूं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

मैंने तब उन्हें अपनी मित्रता का आधार बताते हुए वही कहा था कि हम दोनों ही लेखन में लोकतंत्र के बड़े हामी हैं- मुंहदेखी नहीं करते, बल्कि किसी विषय पर विपरीत राय रखने का हक एक-दूसरे को देते हैं। हमने कभी यह कैफियत एक दूसरे से नहीं मांगी कि तू मेरा मित्र होते हुए भी मेरी राय/लेख/रचना/किताब के विरुद्ध क्यों बोला/लिखा। लेखन की इस राजनीति से हमने अपनी मित्रता को हमेशा अलग रखा क्योंकि मैं प्रेम को प्रेम जनमेजय के तौर पर बेहद पसंद करता हूं और वह (कदाचित) मुझे मेरे ज्ञान चतुर्वेदी होने पर। हमने व्यक्तित्व को चाहा है और सारी कमियों और विशेषताओं के साथ चाहा है- उसने (या मैंने) क्या लिखा, क्या कहा, इससे ऊपर है हमारी दोस्ती।

तो प्रश्न फिर यह आता है कि क्या है प्रेम जनमेजय के व्यक्तित्व में जो मुझे यूं आकर्षित करता है ? मुझे वह हिन्दी लेखन की छद्म दुनिया में एक बेहद बेबाक और ईमानदार आदमी के तौर पर बेहद सम्माननीय किस्म का लगता है। विशेषतौर पर दिल्ली के लेखन संसार में/मुझे वह राजधानी में गंवार ही लगता है जो राजधानी के तौर-तरीके सीख ही नहीं पाया (मुझे दूसरे ऐसे व्यक्ति विष्णु नागर लगते हैं जोकि उनसे मेरी मुलाकातें बड़ी कम हैं परंतु एक चावल देखकर काम पता कर ही लेते हैं कि वह कितनी आंच में पका है।) प्रेम के व्यक्तित्व में आत्मीयता और बेबाकी का अद्भुत मेल है। मुझे ऐसे खांटी व्यक्ति हमेशा ही आकर्षित करते हैं जो ठीक वैसे होते हैं जैसे वे संसार को दिखते भी हैं। अंजनी चौहान, प्रभु जोशी, हरिभटनागर और श्रीकांत आप्टे आदि को मैं इसी कारण चाहता रहा हूँ। बनावट न हो आपके व्यक्तित्व में और इतना दो मुंहापन न हो कि कभी आपका दूसरा मुंह देखने को मिल जाए तो पहचान ही न पाओ कि वह वही है। प्रेम अंदर और बाहर वही हैं। वह समय तथा स्वार्थ के साथ कभी बदला नहीं है। बीस-पच्चीस साल से वह वही प्रेम है जो था। वह इस मायने में अद्भुत है।

प्रेम बेहद पारिवारिक व्यक्ति हैं। लेखन का अर्थ परिवार की उपेक्षा नहीं। छतरपुर में मेरे मित्र डॉ. पिपरसानिया ने जो प्रकाण्ड ज्योतिष भी हैं, प्रेम का हाथ देखकर कहा था कि तुम्हारा सारा सौभाग्य, सफलताएं और ऊंचाइयां पत्नी के प्रबल प्रभाव के कारण हैं तो प्रेम ने अविभूत होकर जिस तरह भाभी के अवदान की चर्चा मुझसे करते हुए माना था कि आशा का मेरे जीवन में बहुत बड़ा स्थान है- उसने मुझे उसका प्रशंसक बना दिया था। प्रेम और आशाजी बेहद आत्मीय दंपति हैं। मैं जब भी दोनों को देखता हूं तो एक ऐसे छोटे भाई की भांति संतोष से भर जाता हूं, जिसके परिवार में ऐसे भाई-भाभी हैं, जिनके रहते आप सदा ही सुरक्षित तथा तृप्त महसूस कर सकते हैं। अपने दोनों बेटों (और अब बहुओं) के लिए वे दोनों जितना चिंतित होकर, जितना करते हैं वह देखने और महसूस करने से ताल्लुक रखती है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे अनेक अवसर मिले हैं। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि मैं एक दिन के लिए भी दिल्ली गया हूं और प्रेम के घर न गया हूं। मेरा मन ही नहीं मानता। न मिलूं तो लगता है कि दिल्ली से खाली हाथ लौट रहा हूं और प्रेम भी, इतनी व्यस्तताओं के बीच भी छुट्टी लेकर भी मेरे साथ हो लेता है। कभी उससे जानना चाहूंगा कि उसे मुझमें ऐसा क्या अच्छा लगता है।

प्रेम को दुनियादारी की खासी समझ है और दुनिया की भी। वह चालाकियां करना चाहे तो उतना होशियार वह है। वह 'नेटवर्किंग और सेटिंग' भी कर सकता है। मुझे उसकी यही बात पसंद है कि वह सक्षम होते हुए भी बदमाश या तिकड़मी नहीं है। वह बिना आर्थिक आगा-पीछा देखे 'व्यंग्य यात्रा' जैसी पत्रिका निकालने में लिए घाटे के सौदे में कूद जाता है और फिर उस दुधारु पत्रिका के संपादक के तौर पर उससे 'दूध' भी ठीक से 'दोह' नहीं पाता। वह पत्रिका की कमंद फेंककर ऊंचे बुर्जों को विजित करने के प्लान नहीं बनाता। उल्टे वह चिंता करता है कि कृष्ण चराटे जैसे अद्वितीय परंतु लगभग उपेक्षित व्यंग्यकार पर कैसे अंक को फोकस किया जाए जबकि चराटेजी से उसे कुछ नहीं मिलना है। हिन्दी व्यंग्य के प्रति वह उतना ही चिंतित तथा समर्पित है जितना मैं स्वयं को मानता रहा हूं- यह एक बात भी हमें जोड़कर रखती है। वह व्यंग्य के लिए युवा पुरस्कार, अंक, गोष्ठियां, सेमिनार प्लान करने में परेशान रहता है। वह न जाने कितने युवा व्यंग्यकारों के संपर्क में रहकर उन्हें मार्गदर्शन देता रहता है और यह सब वह बिना हल्ला-गुल्ला किए करता जाता है और सांसारिक अर्थों में देखें तो अपने रचनात्मक समय का बहुत बड़ा हिस्सा वह ऐसी गतिविधियों में व्यर्थ करता है परंतु मैं सोचा करता हूं कि तिर्यक अर्थों में यह भी कम रचनात्मक काम नहीं है, जहां आप नई पीढ़ी को लगातार अच्छे व्यंग्य की तमीज के संस्कार देने का बीड़ा उठाते हैं। प्रेम वह काम इतनी निष्ठा से करता है कि लगभग जुनून की हद में पहुंच जाता है। मैं उसके इस जुनूनी जज़्बे को बहुत प्यार और सम्मान से देखा करता हूं। उसके इसी जुनून ने व्यंग्य को एक सीमित दायरे से निकालकर व्यापक किया है। आज व्यंग्य पर चर्चा करने वालों का दायरा बढ़ा है।

प्रेम पहले (मेरी तरह) बाल डाई करता था। अब नहीं करता। सफेद बालों के साथ वह और भी भव्य-सा निकल आया है। मैं उसका 'फोन पर उपलब्ध' फेमिली डॉक्टर भी हूं और उसकी फैमिली बहुत बड़ी है। वह अपने दोस्तों और परिवार की स्वास्थ्य संबंधी सारी पड़ताल मुझसे करता रहता है। वह मानसिक और शारीरिक रूप से मेरे से व्याप्त संतुलित व्यक्ति है। वह ऐसा दुर्लभ-सा इंसान है जैसे ईश्वर ने इन दिनों बनाने बंद कर दिए हैं। उसका होना मुझे बेहद आश्वस्त करता है। उसका होना मुझे इंसानियत पर भरोसा बनाए रखना सिखाता है। ऐसा व्यक्ति आपका दोस्त है- इससे ज्यादा क्या चाहिए आपको यार ? मैं धन्य हूं- यही कर सकता हूं। प्रेम खूब बढ़े और हमारी दोस्ती ऐसी ही चले, यही कामना है। ◆◆◆

सरापा व्यंग्यकार है प्रेम

प्रेम जनमेजय विशेषांक

■ *महेश दर्पण*

"गलत कुछ नहीं है, जो तुम करोगे, देश और पार्टी के लिए करोगे रिश्वत खाओगे, तो देश के लिए। उपहार लोगे, तो पार्टी के लिए। तुम अपने समस्त कार्य इसके नाम अर्पण कर दो। इसकी चिंता मत करो कि तुम गलत कर रहे हो या सही, इसकी चिंता तो जनता करती है। अतः हे अर्जुन, इससे पहले कि और लोग दीमक बनकर इस देश को चाट लें, तुम हड़प जाओ।'

यह 'यदि महाभारत चुनाव भवति' शीर्षक प्रेम जनमेजय के व्यंग्य का एक अंश है। मार्च, 1990 में प्रकाशित 'सारिका' के 'व्यंग्य-विनोद-अंक' में प्रकाशित यह व्यंग्य तब तो चर्चित रहा ही था, आज भी प्रासंगिक है। मुझे याद है, इस अंक में अमृतलाल नागर, मुज्तबा हुसैन, विनोद शंकर शुक्ल, हरीश नवल आदि सहित अनेक व्यंग्यकारों की रचनाएँ थीं। एक तरह से यह अंक नागर जी को समर्पित था। 23 फरवरी, 1990 को उनका निधन हुआ था लखनऊ में। उनकी रम्य-रचना 'जुलाब की गोली' भी इस अंक में प्रकाशित की गई थी। प्रेमजी की रचना की विशेष चर्चा का कारण यह था कि उन्होंने 'चुनावी गीता' का नया कंसेप्ट खोजा था, जो लगता है आज देश के हर राजनीतिक दल ने अपने गुप्त एजेंडे में शामिल कर लिया है।

प्रेम मिजाज और अपने रचना सरकारों में सरापा व्यंग्यकार हैं। मेरी उनसे पहली मुलाकात आठवें दशक में दिल्ली या साहिबाबाद में हुई है। फिर लगातार मिलना या फुनियाना होता रहा। मुझे याद है, सबसे पहले उनके प्रति आकर्षण का कारण था, उनका पहला व्यंग्यसंग्रह 'राजधानी में गंवार'। उन दिनों दिल्ली का साहित्यिक वातावरण बेहद आत्मीय था। जगह-जगह रचनाओं पर बातें हुआ करती थीं। लोग अपनी कम दूसरों की कृतियों की चर्चा करने में ख़ुशी महसूस करते थे। ऐसे ही माहौल में प्रेम के व्यंग्य राजधानी में हर जगह चर्चा में आ गए। यह वह समय था जब रमेश बत्रा, जगदीश चंद्रिकेश, डॉ. विनय, रमेश उपाध्याय, अजित कुमार, रमाकांत, सुरेन्द्र मनन, हरीश नवल, दिविक रमेश, तरसेम गुजराल, प्रचंड आदि बेहद सक्रिय हुआ करते थे। प्रेम जनमेजय इनमें से हर किसी के साथ सक्रिय रहते।

प्रेम अपनी रचनाएँ सुनाते, दूसरों की सुनते। समय-समय पर वह गंभीर आलेख भी लिखते। चूँकि उनकी रुचि व्यंग्य में धंसी-बसी थी, लिहाजा गुरु ने 'प्रसाद के नाटकों में हास्य-व्यंग्य' जैसा काम पूरे मन से किया। पंजाबी से हिन्दी में आकर भी प्रेम का संस्कार विशुद्ध हिन्दी का है। उनका संभाषण और लेखन खांटी हिन्दी वाला है। वह जानते हैं कि समकालीन साहित्य में व्यंग्य का स्थान कैसे बना रह सकता है। बात शायद 1988 की है। 'सारिका' के एक व्यंग्य विशेषांक के अतिथि संपादक थे शरद जोशी। इस अंक के लिए 1987 के व्यंग्य का सर्वेक्षण प्रेम जनमेजय ने किया था। तब उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया था कि पाठक वर्ग और लेखक वर्ग दोनों रूपों में व्यंग्य एक लोकप्रिय विधा बनता जा रहा है। अनेक कहानीकार इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं। उनका यह इशारा बिलकुल सही था कि वस्तुतः भारत की वर्तमान परिस्थितियां इतनी विसंगतिपूर्ण है कि व्यंग्य किये बिना लगता है जैसे अभिव्यक्ति को पूरी ज़मीन नहीं मिली है।

यह वह दौर था जब हरीश 'नवल' के 'बागपट के खरबूजे' रविन्द्रनाथ त्यागी के भद्र हास्य की सुघढ़ रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन' 'रविन्द्रनाथ त्यागी की प्रतिनिधि रचनाएँ', शरद जोशी का 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' श्रीलाल शुक्ल का 'उमराव नगर में कुछ दिन', हरिशंकर परसाई का 'गंगा' में प्रकाशित होने वाला स्तम्भ खूब चर्चा में थे। प्रेम जी ने बैगर किसी लाग-लपेट के वर्ष भर में प्रकाशित हुए व्यंग्य साहित्य पर अपनी सुलझी हुई राय दी थी। इस मामले में उन्होंने दिखावटी व्यंग्यकारों की ख़बर भी ली थी--'घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंड़ा हास्य उत्पन्न करने वाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते घूमते हैं।

प्रेम जनमेजय विशेषांक

प्रेम जी ने महज़ व्यंग्य-विधा का सर्वेक्षण-समीक्षा की हो ऐसा नहीं है। मुझे स्मरण है सन् 1983 के अप्रैल के 'सारिका' के अंक में उनकी लिखी सर्वे-समीक्षा 'सन् बयासी की कहानियों का संसार' भी प्रकाशित हुई थी। इस समीक्षा में उन्होंने रचना-वर्ष की उपलब्धि के रूप में युवा रचनाकारों को मिलने वाली ज़मीन का ज़िक्र ठीक ही किया था। ज़िक्र ही नहीं, उन्होंने छत्रपाल, नरेंद्र मौर्य, धीनेंद्र अस्थाना, अवधेश श्रीवास्तव सरीखे उस वक्त के युवा कथाकारों के सद्यप्रकाशित संग्रहों की चर्चा भी की थी। उस समय सक्रिय चर्चित कथाकारों में नरेंद्र कोहली, चित्रा मुद्गल, इंदु बाली, रमेश उपाध्याय, अशोक अग्रवाल, असगर वजाहत, राजेश जोशी, मृणाल पांडे, बलराम, सुरेश उनियाल सहित अनेक कथाकारों की चर्चा उन्होंने की थी। स्मृति में ये बातें इसलिए अटकी रह गई हैं क्योंकि ख़ाकसार तब 'सारिका' में ही काम किया करता था।

प्रेम तब 10 दरियागंज के दफ्तर आकर 'सारिका' के साथियों से मिलते थे। सुरेश उनियाल को 'पड़ोसी' कहकर संबोधित करते तो पान मुँह में दबाए रमेश बत्रा मुस्कुरा देते। 'सारिका' की चाय से मज़ा न आता तो सड़क पर आकर सरदारजी की दुकान पर चाय पी जाती। खूब ठहाके लगते और प्रेम का आना सचमुच आना लगता। वह तब भी खूब पढ़ते थे और अब भी वही सिलसिला जारी है। कॉफी हाउस में जाने कितनी बैठकें हुई होंगी।

इस बीच उनकी अनेक कृतियाँ आई है, लेकिन सच कहूँ तो मुझे 'बेशर्मेव जयते' और 'पुलिस पुलिस' के साथ 'शहर की चोरी' की याद अक्सर आती रहती है। दिल्ली में धुर गाँव से आए किसी नए चेहरे को देखता हूँ तो सोचता हूँ मैं भी कभी ऐसे ही आया था 'राजधानी में गंवार' की तरह।

मैंने प्रेम जनमेजय को अनेकों रूपों में देखा है- मित्र, लेखक, शिक्षक, पारिवारिक, गोष्ठी संचालक, कुशल सम्पादक और पढ़ाकू। जो तीन रूप मुझे सबसे अधिक भाए हैं वे हैं- व्यंग्यकार, सम्पादक, मित्र। उनसे मिलकर कभी असहज नहीं लगा। बल्कि सामने वाले को किस तरह सहज किया जाता है, यह वह बखूबी जानते हैं। मैंने दिल्ली में बहुतों को चेहरे बदलते पाया है, लेकिन प्रेम उन बहुत कम लोगों में से हैं, जो जैसे थे, वैसे हैं। सम्मान देते हैं, सम्मान पाते हैं।

मुझे अच्छी तरह से याद है 'इंडो रशियन लिटरेरी क्लब' की रशियन सेंटर में होने वाली अनेक गोष्ठियाँ। दिविक के बाद वही थे, जिन्होंने उस संस्था की गरिमा को बनाये रखा। कई बार वक्ता-श्रोता के रूप में उन्होंने मुझे आमंत्रित किया और अच्छे अनुभव कराए। उनका संचालक रूप यहीं मैंने करीब से देखा। वह अपने प्रेम-व्यवहार से हर पीढ़ी के रचनाकारों को न सिर्फ एकत्र कर लेते, वरन उनसे सार्थक संवाद भी करवा लेते। माहौल कुछ बोझिल होने को होता, तो तुरंत अपने किसी चुटीले कमेन्ट से उसे सहज कर देते।

'व्यंग्य यात्रा' के संपादक के रूप में मैंने उन्हें अद्भुत परिश्रमी पाया। वह उन बहुत कम संपादकों में एक हैं, जो कई- कई बार फोन अथवा मेल पर आग्रह कर अच्छे-अच्छे से लिखवा लेते हैं। अनेक रचनाकार केन्द्रित अंकों का तो उन्होंने कुशल संपादन किया ही है, उनके द्वारा सम्पादित 'हिन्दी व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य' पर आधारित 'व्यंग्य यात्रा ' का अंक एक उपलब्धि ही है। इस अंक में उन्होंने पाथेय में जहाँ श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिंह, नरेंद्र कोहली, रमेश उपाध्याय, शंकर पुणतांबेकर, कृष्ण चराटे की रचनाओं को जगह दी वहीं चिंतन, चिंता, त्रिकोणीय के अतिरिक्त अनेक व्यंग्य-रचनाएँ भी दीं। इस सब की विशेषता यह भी कि लेखकों को स्वयं अपनी व्यंग्य रचना का न सिर्फ चुनाव करना था बल्कि उस पर एक टिप्पणी भी देनी थी। अधिकांश लेखकों ने यह कार्य किया और बखूबी किया। इसके पीछे मूल प्रेरणा संपादक प्रेम जनमेजय की होती थी। अपना अनुभव साझा करूँ, तो कहना होगा कि अपनी एक कहानी को चुनकर एक टिप्पणी भी उस पर लिखने का काम मैं अगर कर सका तो महज इसलिए कि यह प्रेमजी का आग्रह था। वह यह आग्रह करना जानते हैं और यह भी जानते हैं कि उसे पूरा कैसे करवाया जाता है। 'व्यंग्य-यात्रा' जैसी पत्रिका को उन्होंने न सिर्फ स्थापित किया बल्कि सम्मान भी दिलाया। वह लेखकों को ही नहीं साहित्य-प्रेमियों को भी बराबर का आदर देते हैं। मुझे याद पड़ रहा है कि 'रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार समारोह' की रपट के साथ उन्होंने ऐसे फोटो भेजने का आग्रह किया था, जिसमें श्रोता भी मौजूद हों। सिर्फ मंच की स्टीरियो टाइप फोटो में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रही। सबसे अच्छी बात यह है कि व्यंग्य की प्रतिनिधि पत्रिका निकालकर उन्होंने यह दिखा दिया है कि वह जो काम हाथ में लेते हैं, वह पूरे मन से करते हैं। हमारे समय का शायद ही कोई उल्लेखनीय व्यंग्यकार हो जो इस पत्रिका में न छपा हो।

संपादन का कौशल प्रेम जी ने 'गगनांचल' में भी दिखाया है। वह जिनके प्रति सम्मान, प्रेम, श्रद्धा रखते हैं, उसके प्रति उनमें वह भाव सचमुच होता है। इसका प्रमाण कन्हैयालाल नंदन की स्मृति में निकला। इस पत्रिका का अंक है। इसे उन्होंने 'स्मृति-चन्दन' कहा है। इस अंक में उनका यह भाव-त्रय साफ़ नज़र आता है।

वह स्वयं को नहीं, दूसरों को सामने या केंद्र में रखने में विश्वास रखते हैं। मुझे याद है, एक बार जब मैं उनके निवास पर पहुँचा तो लन्दन में बैठे कवि-कथाकार मित्र के साथ उन्होंने टेलीफोनिक काव्य-सांध्य करवा डाली। कविता सुनी गई, उस पर चर्चा हुई और एक शाम खुशनुमा। यह उनका सहज स्वभाव है। वही हैं जो एक साथ विविध विचारों के लेखकों को अपने अंक में जगह देने के साथ ही उन्हें समादृत करते हैं। नहीं तो आज हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में पहले वाला वह खुलापन है कहाँ!

जन्म के हिसाब से देखें तो हमारे प्रेम प्रकाश कुंद्रा यानि प्रेम जनमेजय 62 वर्ष के पूरे हैं, लेकिन आप उनसे मिलते समय ऐसा कतई महसूस नहीं कर सकते। यही ऊर्जा उनकी शक्ति है। इसी ने उन्हें ऐसा बनाया है कि आज व्यंग्य-साहित्य का इतिहास उनके बगैर न लिखा जा सकेगा। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

व्यंग्य के दिशायुक्त प्रहारक प्रेम जनमेजय

■ *डॉ. अजय अनुरागी*

व्यंग्य को एक गंभीर कर्म तथा सुनिश्चित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा मानने वाले प्रेम जनमेजय वैश्वीकरण एवं बाज़ारवाद के दौर में तेज़ी से बदलते समाज की विसंगतियों की पहचान करके दिशायुक्त प्रहार करने वाले समर्थ व्यंग्यकार हैं। वे सामाजिक विषमताओं के उन पहलुओं को व्यंग्य की परिधि में ले आते हैं जो वर्तमान में सबसे बड़ी चुनौती बने हुए हैं। जिन्होंने समाज की मूल समस्याओं को दरकिनार कर दिया है तथा समाज को ऐसी समस्याओं में उलझा दिया है जिनसे जन-सामान्य का किसी भी प्रकार का हित होने वाला नहीं है। अब समस्याएं विशिष्ट वर्ग की समस्याओं में तब्दील हो गई हैं। यह भी एक तरह का सुनियोजित षड्यंत्र है, जिसमें से सामान्य व्यक्ति या सामान्य वर्ग गायब होता जा रहा है। प्रेम जनमेजय पूंजी नियंत्रित इस चाल को व्यंग्य के माध्यम से मुखर करते हैं।

प्रेम जनमेजय व्यंग्य को गंभीर लेखन मानते हैं और अपने लेखन में गंभीरता का ध्यान भी रखते हैं। उनकी हर रचना उद्देश्यपूर्ण होती है। हर व्यंग्यकार को उद्देश्य के साथ ही व्यंग्य को साधना चाहिए। यह प्रेम जनमेजय से सीखा जा सकता है। उन्होंने व्यंग्य संग्रहों की सप्तक परंपरापूर्ण कर ली है। हालांकि वे व्यंग्य संग्रहों की संख्या में भी इजाफा कर सकते थे किंतु उन्होंने 'व्यंग्य यात्रा' के जिम्मेदाराना एवं गंभीर संपादन में जो समय होम किया है वह व्यंग्य संग्रहों की गणनात्मक दृष्टि से कहीं अधिक मूल्यवान है।

यह व्यंग्यकार की शैली है कि वह देश की समस्याओं और विसंगतियों पर सीधे-सीधे कुछ नहीं कहकर अपने घर परिवार, मुहल्ले से बात शुरू करता हुआ समाज व देश तक पहुंचता है। व्यंग्यकार का केन्द्रीय लक्ष्य भले ही देश होता है किंतु वह देश तक सोपान दर सोपान ही पहुंचता है। यह एक तरह से आत्मीय शैली है जिससे पाठक आसानी से जुड़ जाता है।

एक वाक्य में ही कहा जाए तो प्रेम जनमेजय की व्यंग्य लेखन-यात्रा समाज में व्याप्त आर्थिक विसंगतियों एवं सांस्कृतिक प्रदूषण की स्थितियों परिस्थितियों से सजग एक व्यंग्यकार की यात्रा है। जिसके अंतर्गत पूंजी की दौड़ में टूटते मूल्यों, छूटती नैतिकता, पसरती फूहड़ता, बिखरती सामाजिक संरचना, दिखावे का आडम्बर, ठगी के मानवीय पहलू, ढोंग के नए-नए आविष्कार आदि का घटाटोप है। पूंजी की बढ़ती ललक एवं बाज़ारीकरण की चमक ने न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को चौंधियाया है बल्कि संस्कृति की मौलिकता एवं स्वाभाविकता का भी हनन किया है। प्रेम जनमेजय अपने व्यंग्यों में झोपड़ी और मॉल की विडम्बनाओं को नए ढंग से उठाते हैं। उनमें एक नई तरह की पीड़ा भी उजागर हुई है। जो यह बताती है कि अचानक हमारी सुंदरता दूसरों का कबाड़ बन रही है और दूसरों का कबाड़ हमारी सुंदरता बन रही है।

प्रेम जनमेजय जिस स्थान पर रहते हैं वह देश की राजधानी है। यह स्थान साहित्यिक संस्कारों के लिए जाना जाता था मगर आज स्थिति यह है- दिल्ली की जिन गलियों को कभी शायर छोड़कर नहीं जाना चाहता था, अब वही गलियां मॉल संस्कृति की शोभा बढ़ाने के लिए दिल्ली को छोड़कर जा रही है। व्यंग्यकार की यह पीड़ा न केवल अर्थकेन्द्रित है बल्कि सांस्कृतिक ह्रास की भी

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

पीड़ा है। इस वैश्वीकरण की आंधी ने संस्कृति को सबसे अधिक नष्ट किया है। स्थानीय पहचान एवं लक्षण मिटते जा रहे हैं। इन सबको बचाए रखने की चिंता व्यंग्यकार की चिंता बन गयी है। दिल्ली की ही बात करें तो पहले वसंत के आने से बहार आती थी, आजकल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने से आती है।'यह स्थिति इंगित करती है कि पूंजी का प्रभाव न केवल मन एवं संवेगों को परिवर्तित कर देता है, बल्कि प्रकृति को चुनौती देने जैसा गंभीर अपराध भी कर रहा है। यह पूंजी ऐसा कृत्रिम वातावरण निर्मित कर देती है जिसकी चकाचौंध में व्यक्ति भौंचक रह जाता है तथा वह अपने श्रम व शक्ति से विश्वास खो देता है। इन कम्पनियों का उद्देश्य है कि परिवेश को खूबसूरत बनाकर पैसा कमाना। ऐसे में वे मानवीय भावनाओं का शोषण करने में भी नहीं हिचकती हैं। इस खूबसूरती और खुशहाली को देखने के केंद्र हैं मॉल और मल्टीप्लेक्स। वहां पहुंचकर थोड़ी देर के लिए गरीब और दु:खी भी अपनी स्थिति को भूल जाता है। दु:ख, शोक, पीड़ा और आंसू का विलय जिस स्थान पर होता है वह है श्मशान। यह मनुष्य की अंतिम शरीर यात्रा की स्थली हुआ करता है मगर इसे भी आज ताजमहल जैसा सुंदर बनाकर पैसा कमाया जाने लगा है। श्मशान के सौंदर्यीकरण के पीछे का भाव भी सेवा न होकर पैसा कमाना ही है। आजकल खूबसूरती है जहाँ पैसा है वहाँ। सुंदरता बेचो और पैसा खींचो। श्मशान सुंदर हुआ तो उसके ठेके उठे सुंदर श्मशान की डिजाइनिंग का ठेका, पार्किंग का ठेका, लकड़ी का ठेका, आचार्य कर्म का ठेका, नारियल का ठेका, सामग्री का ठेका आदि-आदि।

दु:ख तो तब होता है जब शव को भी समारोह बना दिया जाता है। श्मशान में पहुंचने वालों में भी भेद किया जाता है। प्रेम जनमेजय इस शोकाकुल स्थिति पर कटाक्ष करते हैं- वी.आई.पी. आने से मुरदा अक्सर गौण हो जाता है और मुरदे के परिवार के लोग अक्सर महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अगर मरने वाले के कारण वी.आई.पी. आए हों तो परिवार का सिर गर्व से ऊंचा उठ जाता है और मरने वाले की कीमत समझ आ जाती है।

'इक श्मशान बने न्यारा' प्रेम जनमेजय का प्रतिनिधि व्यंग्य कहा जा सकता है। इस व्यंग्य में उन्होंने मानवजन्य प्रवृत्तियों पर तीखा प्रहार किया है। उन्होंने एक ऐसे विषय पर कलम चलायी है जिसे हम दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों के लिए छोड़ देते हैं। श्मशान जैसे वीतरागी स्थल पर व्यंग्य लिखकर दूसरे व्यंग्यकारों को लिखने की एक नई दृष्टि दी है। निपटाने की संस्कृति पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने महानगरीय लिपे-पुते चेहरों को बेनकाब किया है- बड़े-बड़े महानगरों के लोग बहुत बिजी होते हैं श्रीमान! यहां निपटाने की संस्कृति चलती है। सुबह शवयात्रा निपटाई। दोपहर का क्लाइंट के साथ लंच निपटाया, शाम को बर्थडे पार्टी निपटाई और रात को शादी निपटा दी। मनुष्य इस व्यस्तता में भावहीन और संवेदन शून्य बन गया है। व्यंग्यकार की मूल पीड़ा यही है, मनुष्य कहीं भी गंभीर नहीं रहा। सब जगह छिछलापन प्रकट हो रहा है। जीवन एवं जीवन के दायित्वों को भार स्वरूप वहन कर रहा है। यह स्थिति चिंताजनक है।

प्रेम जनमेजय अपने व्यंग्यों का ताना-बाना आस-पड़ौस के पात्रों से बुनते हैं। उन्होंने अपने व्यंग्यों में स्थानीय समस्या को व्यापक सामाजिक सरोकारों से जोड़कर देश व दुनिया की पड़ताल की है। जो चीज़ें हम अपने आसपास देख रहे होते हैं वे ही चीज़ें समाज व राष्ट्र का परिदृश्य होती हैं। इसलिए व्यंग्यकार अपने आसपास से चलता हुआ देश तक पहुंचता है। यह व्यंग्यकार की शैली है कि वह देश की समस्याओं और विसंगतियों पर सीधे-सीधे कुछ नहीं कहकर अपने घर परिवार, मुहल्ले से बात शुरू करता हुआ समाज व देश तक पहुंचता है। व्यंग्यकार का केन्द्रीय लक्ष्य भले ही देश होता है किंतु वह देश तक सोपान दर सोपान ही पहुंचता है। यह एक तरह से आत्मीय शैली है जिससे पाठक आसानी से जुड़ जाता है। प्राय: पाठकीय स्वभाव होता है कि वह अपने निकट की चीज़ों को चाव से पढ़ता है और यह लेखकीय कला है कि व्यंग्यकार अपने को पढ़वाने के लिए पाठकीय स्वभाव और मनोविज्ञान का कितना ध्यान रख पाता है? प्रेम जनमेजय इस कला के गंभीर पारखी हैं। वे राजधानी में गंवार'से लेकर कौन कुटिल खल कामी तक की व्यंग्य यात्रा में इसी विशेषता का निर्वाह करते देखे जा सकते हैं। उनकी दृष्टि झोपड़ी से लेकर मॉल तक की विसंगतियों पर एक साथ जाती है तथा दोनों की अलग-अलग विसंगतियों को उजागर करती है।

मॉल कल्चर और अति आधुनिक जीवन शैली ने मनुष्य के चेहरे की विशेषताओं को बदल दिया है। व्यक्ति के मूल्यांकन के प्रतिमान भी बदल गए हैं। अब यह चेहरा कुटिल, कामुक एवं कटुतापूर्ण हो गया है। प्रेम जनमेजय ने मानवीय कुटिलता, दुष्टता और कामुकता से बुने हुए व्यक्तित्व की पर्तों को रस्सी के रेशे-रेशे की तरह उधेड़ा है। चाहे लफंगई हो, नंगई हो या दबंगई हो, जहां भी व्यंग्यकार को कुवृत्तियां दिखलाई पड़ती हैं वहीं उसने दिशायुक्त प्रहार करने के अपने लक्ष्य को साधा है। यह सच है, नंगई, दबंगई और लफंगई से समाज का विकास नहीं होता। वह तो शिष्टता, समरसता, मैत्री एवं सृजनशीलता से ही आगे बढ़ा करता है। ये प्रतिमान न तो मानव के लिए और न ही समाज के लिए ही उपयुक्त हैं। आज इन्हीं अवगुणों को सामाजिक नैतिकता माने-जाने का प्रचलन चल पड़ा है उससे हमारा अहित ही अधिक हो रहा है। यह सब स्वार्थ और सत्ता लोलुपता के कारण हुआ है। अपराधियों एवं भ्रष्टाचारियों को संरक्षण एवं सम्मान मिलने के कारण भी ऐसा हुआ है। इन बिन्दुओं पर विचार करने का समय किसी के पास नहीं है। 'नंगई की मार्केटिंग का धंधा' इतना ज़ोरों से चल रहा है कि संतई भी एक तरह का उद्योग हो गया है।

प्रेम जनमेजय इसे और कटु एवं तिक्त शब्दों में स्पष्ट करते हैं- जीवन की गंदगी को आत्मीय भाव से ग्रहण कर उससे लिपटे सुअर को आपने देखा है, चेहरे पर कैसा संतई का भाव होता है। ऐसा ही संतई

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

का भाव मुझे आजकल के बाबाओं और संतों के चेहरों पर दिखाई देता है।

पाखंड को सलीके के साथ उजागर करने वाली लेखकीय शैली निराली है। समाज में कौन कुटिल खलकामी है? का प्रश्न जिस संदर्भ में व्यंग्यकार ने उठाया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि 'जीवन में कुत्तागिरी' भी फलीभूत हो जाती है। यही नहीं व्यंग्यकार की दृष्टि और गहरे पैठती है और यह बताती है कि व्यक्तिगत गुण उसकी कुटिलता, दुष्टता और कामुकता के जाल को और मज़बूत बना देते हैं। कुटिल मन के चेहरे पर चिपकी मोहक मुस्कान और मधुरवाणी मछली फाँसने के कांटे की तरह इस्तेमाल किए जाते हैं।

व्यंग्यकार इस निष्कर्ष पर भी पहुंचता है कि 'कलियुग में जो दुष्ट है, उसी को सुखी रहने का अधिकार होना चाहिए' या दूसरे शब्दों में कहें तो 'आजकल दुष्टों को ही आलीशान होने का अधिकार है।' सज्जनों की दुर्गति इस व्यवस्था में जैसे निश्चित हो गई हो। यह पीड़ा कोरी पीड़ा नहीं है बल्कि पीड़ा के द्वारा सामाजिक वास्तविकता को सबके समक्ष प्रस्तुत करना है। शिक्षा की व्यावसायिकता पर व्यंग्य कसते हुए प्रेम जनमेजय बहुत सहजता के साथ समाज की दुखती रग को छू देते हैं- 'मैं भी आस लगाए बैठा हूं कि जिस देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, महंगाई और अन्याय के अवसर बढ़ रहे हैं, वहां शायद रोज़गार के अवसर बढ़ जाए।' युवाओं और शिक्षितों के समक्ष बेकारी का संकट कितना सघन है, यह इन पंक्तियों से प्रकट हो जाता है, साथ ही समाज की मूल समस्याओं के आलोक में बेरोज़गारी के भविष्य का अंधकार भी यहां साफ-साफ दिखाई दे रहा है।

प्रेम जनमेजय मानव की उस प्रवृत्ति को निशाना बनाते हैं जो उसके दोहरे चरित्र को प्रस्तुत करती है। वह प्रवृत्ति जो मुँह को साफ करके मूर्खता के चिन्ह गायब कर खुले बाज़ार वाली आधुनिकता जैसी प्रतीत होने लगती है, जिसका उद्देश्य होता है- 'होने से अधिक दिखाई देना।' आजकल स्वच्छ छवियां इसी तरह गढ़ी जा रही हैं। चाहे मंत्री हों या प्रधानमंत्री।

'अरे, सुन ओ सांप' व्यंग्य में नैतिकता और ईमानदारी के प्रतिमान किस कदर बदल गए हैं, पर व्यंग्यकार की दृष्टि जाती है। वह राजनीति को रोज़गार का साधन मानते हुए लिखता है- आजकल ऊपरी कमाई का श्रेष्ठ साधन राजनीति है। नौकरी के लिए तो पढ़ा-लिखा होने की शर्त होती है, इसके लिए वह भी नहीं। इस विडम्बना के लिए लोकतांत्रिक विधान दोषी है। भ्रष्टाचार को सामाजिक हैसियत का प्रतीक मानने वाले समाज के लिए काजर की कोठरी में बैठा क्लर्क ईमानदारी के महल में बैठे अफसर से श्रेष्ठ होता है। क्या यह परिवर्तन एक दिन में आ गया है? नहीं, स्वतंत्रता के बाद ही धीरे-धीरे निरंतर यह स्थिति मजबूत होती रही है। राजनीति इसके लिए मुख्यत: दोषी है। बेस्ट नेता की योग्यता बताते हुए प्रेम जनमेजय लिखते हैं- नेता वही बेस्ट होता है, जो एक-दो हवालों में फंसा हो, कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाता हो।... चेहरे से बेशर्मी का सौंदर्य टप-टप टपकता हो। यदि यही जन प्रतिनिधि हैं तो लोकतांत्रिक प्रणाली में विकृतियां आना स्वाभाविक हैं। मंत्री क्षेत्रे: कुरुक्षेत्रे व्यंग्य में अच्छे व्यक्ति की पहचान में कहा गया है- जो भी व्यक्ति मंत्री की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में अपनी सहायता दे वही अधिक अच्छा व्यक्ति कहलाता है। इस दृष्टि से पूंजीपति नामक जीवन बहुत अच्छा है। वह मंत्री को चुनाव के लिए धन देता है और परिवार के लिए जीविका। मंत्रियों द्वारा पूँजी द्वारा लड़े गए चुनावों में पूंजीपतियों को ही लाभ मिलना तय होता है। गरीब के लिए योजनाएं बनाई तो जाती हैं लेकिन लाभ उनको नहीं मिल पाता। गरीब व्यक्ति और गरीब का झोपड़ा सिर्फ वोट के लिए याद आते हैं- देश के नेताओं के लिए ये झोपड़े किसी तीर्थ से कम नहीं होते हैं। ये झोपड़े वर्दी वालों के लिए आर्थिक और शारीरिक आमदनी का अजस्र स्रोत होते हैं। उनके लिए गरीब के झोपड़े आमदनी के छोटे-छोटे व्यापारिक केंद्र' बन जाते हैं। व्यंग्य के माध्यम से यह बात साफ हो गई कि देश और कानून की रक्षा करने वाले प्रशासन और शासन दोनों के लिए 'गरीब' कमाई का साधन है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

देश के शासन व प्रशासन का केंद्रीय स्थल दिल्ली का हाल बयां करते हुए जनमेजय इस दुरव्यवस्था के प्रति दिल्ली को ही ज़िम्मेदार ठहराते हैं क्योंकि दिल्ली में देश को उजाड़ने वाले बादशाह बस गए हैं। बे निरन्तर मज़बूत हो रहे हैं और मोटे-ताज़े भी। देश का उजाड़ने की गतिशील पंचवर्षीय योजनाएं इसी दिल्ली में बनती हैं।... देश उजड़ रहा है और दिल्ली फल-फूल रही है।

दिल्ली के फलने-फूलने का मतलब है- भ्रष्टाचार, अनैतिकता, बेईमानी, शोषण, हत्या, अन्याय में निरंतर वृद्धि होना, जो पूरे देश में फैल गया है। स्थिति यह है कि दिल्ली उजड़ नहीं रही है, दूसरों को उजाड़ रही है।'प्रेम जनमेजय ने दिल्ली पर महत्वपूर्ण व्यंग्य लिखा है जो पूरे परिदृश्य को आईने की तरह अपने भीतर समेट लेता है। उन्होंने दिल्ली की सभ्यता को भी अलग-अलग बांट कर देखा है। जैसे- दक्षिणी दिल्ली में रहना सम्मानजनक है तो पूर्वी दिल्ली में रहना गाली है। इसका कारण भी वे बताते चलते हैं। दक्षिणी दिल्ली स्मगलरों, कॉलगर्लों, भ्रष्ट अफसरों, पूंजीपतियों का आश्रय स्थल है जहां रहना स्टेटस सिम्बल माना जाता है। परिश्रमी लोगों की प्रतीक जमना पार बसी पूर्वी दिल्ली असभ्यों का कुरूप इलाका माना जाता है। यहां मजबूरी में जाने वाला नाक पर रुमाल रखकर जाता है। दिल्ली में भी पूँजी और परिश्रम के बीच विभाजक रेखा मज़बूत है।

प्रेम जनमेजय पूंजी की संस्कृति पर कटाक्ष करते हुए उनके मन की पर्तों को उघाड़ते हैं- अंदर से दक्षिणी दिल्ली की भड़कीली आत्माएं चाहे कितनी भी खोखली हों, परंतु बाहर से महान आत्माएं अपनी सज-धज बिगड़ने नहीं देती हैं। कितनी महान हैं यह आत्माएं जो बिकी हुई हैं।

भूख और अमीरी के रेशों से बनी दिल्ली के बारे

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

में प्रेम जनमेजय लिखते हैं- जो दिल्ली में है वह भारत में है और जो दिल्ली में नहीं है, वह कहीं भी नहीं हैं।'यद्यपि दिल्ली देश का प्रतिनिधित्व करती है किंतु विडम्बनाएं और विसंगतियां भी यहां सबसे अधिक हैं। इसे भी नकारा नहीं जा सकता है।

'जाना सुदामा का कृष्ण से होली खेलने' व्यंग्य में राजा और प्रजा के अंतर को एक आख्यान के द्वारा स्पष्ट किया है- प्रजा का महल की ओर बढ़ने का अर्थ होता है विद्रोह और राजा का झोपड़ी में जाने का अर्थ होता है जनसेवा। इस प्रजा का दुर्दशा का चित्रण 'मौसमे-आंधी' में अच्छे ढंग से किया है- जैसे गरीब के झोपड़े का जन्म बाढ़ में बह जाने के लिए हुआ है, गधे का जन्म बोझा ढोने के लिए और मेमने का जन्म भेड़िये का भोजन बनने के लिए हुआ है, वैसे ही निरीह भारतीय मतदाता का जन्म हुआ है। यहां भेड़ रूपी मतदाता की विवशता है भेड़िये का चुनाव करना।

प्रेम जनमेजय ने समारोहों में मंच पर बैठने वालों तथा अग्रिम पंक्ति में शोभा बढ़ाने वालों की लोलुपता पर भी व्यंग्य कसा है- हे धृतराष्ट्र! जो निगुर्णी हैं, जिन्होंने देश सेवा की खातिर अपने सभी गुणों का त्याग कर दिया है और बाज़ारवाद के इस युग में अपने को बेचने योग्य बनाए जाने का सुअवसर पास आया जान चुके हैं, वे सब पहली पंक्ति की शोभा बढ़ा रहे हैं। अपने मद और गरिमा से मंडित ये लोग सिर्फ 'स्वयंभु''बने हुए हैं। मंच और उसके आसपास जो भिनभिनाहट सुन रहे हैं, ये सब महिमा ढोने वालों की है। व्यंग्यकार ने महिमा और महानता के दंभ में डूबे लोगों की वास्तविकता को उजागर करते हुए उनकी मनोदशा का वास्तविक चित्रण किया है। माला की विशालता में माला पहनने वाले का चेहरा न जाने कहां गायब हो गया है और माला डालने वालों के चेहरे दमक रहे हैं। महिमामंडितों को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। जिनसे समाज दबा-दबा महसूस करते हैं। यह मंच लोलुपता और पद-मोह व्यक्ति के भीतर औरों को तुच्छ और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का दंभ पैदा करता है।

प्रेम जनमेजय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की उपेक्षा पर हर वर्ग के मनोभावों में बसी अंग्रेज़ी की भावना को 'माथे की बिंदी' में अभिव्यक्त किया है। चुनाव और हिन्दी दोनों बहनें ही तो हैं- दोनों में राजनीति होती है। हिन्दी भाषा पर भी हमारा ध्यान हिन्दी दिवस पर ही जाकर टिक जाता है। इस दिन के बाद हम फिर अंग्रेज़ीमय होकर रह जाते हैं। हिन्दी के प्रति सिर्फ धार्मिक स्वर में जो स्तुतियां की जाती हैं उनसे हिन्दी का भला होने से रहा। प्रेम जनमेजय हिन्दी की दुर्दशा पर मार्मिक आघात करते हुए लिखते हैं कि हिन्दी तो गऊ माता है, जिसका दूध निकालने के बाद उसे गंदगी में मुंह मारने के लिए छोड़ दिया जाता है। फिर मजे से आदमी उसका चारा खाता है। हिन्दी भाषा और उसकी राजनीति पर ये पंक्तियां महीन मार करती हैं। यही नहीं हिन्दी फिल्मों की हीरोइनें जो हिन्दी की बदौलत यश व धन की अपार सफलता अर्जित करती है वह भी अंग्रेजी में ही अभिव्यक्ति करती है- वह टॉप की हीरोइन है, पर उसके जिस्म से टॉप अक्सर गायब रहता है। अपने टॉपलेस सौंदर्य की बदौलत उसने हिन्दी फिल्मों में करोड़ों कमाए हैं।'वह भी हिन्दी बोलकर अपनी मार्किट वेल्यू नहीं गिराना चाहती।

विश्व हिन्दी सम्मेलन में जाने के लिए हिन्दी के शहीदों ने अपनी-अपनी शहादत का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करते हुए न्यूयार्क गमन हेतु जो जोड़-तोड़ दिखायी थी उसे भी व्यंग्यकार अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सका। तेरे पास विदेश में जाकर हिन्दी सेवा करने का सुअवसर है, इसे मत जाने दे। एक बार जाकर तो देख, तेरी टी.आर.पी. कैसे बढ़ जाती है।

हिन्दी साहित्य में अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने की जो जुगत है, वह चिंता योग्य है। कुछ साहित्य सेवी सिर्फ यही कर रहे हैं। जो न्यूयार्क विश्व हिन्दी सम्मेलन में गए वे गौरवान्वित हुए- उन्हें हिन्दी का सुनहरा भविष्य दिखाई दिया। जो रह गए वे शर्मिंदा हुए होंगे। अगली बार जाने की तैयारी में जुट गए होंगे।

व्यंग्यकार इस शर्मिंदगी को भी व्यक्तित्व विकास में बाधा पाता है और बेशर्मी विजय दिलाने का माध्यम बनाती है। 'बेशर्ममेव जयते' में इसी बेशर्मी से सफलता प्राप्त की जाती है- बेशर्म मुस्कान कई स्थलों पर आपका स्वागत करती मिलेगी। पुलिस थाना हो, सरकारी दफ्तर हो, प्रकाशक हो, दुकान हो, सरकारी अस्पताल हो या किसी नेता का घर। मुस्कान के पीछे छिपी चालाकी को व्यंग्यकार ने उजागर किया है।

व्यंग्य साहित्य को समृद्ध करते हुए प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य नाटक भी लिखे हैं जो सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं को उभारने में सफल रहे हैं। 'सोते रहो' नाटक में तीन पात्र गांधी के तीन बंदरों के प्रतिनिधि हैं। जिनकी इच्छा रहती है- कि देश, सुख-चैन की नींद सोता रहे और ये अपना सोना बटोरते रहें। नाटक के मंगलाचरण में सोने व जगने की स्थितियों पर तीखा व्यंग्य करना है- जगने पे तो उजाला दिखेगा। उजाले में सब साफ दिखेगा/ साफ दिखेगा तो दिल दुःखेगा/... मुंदी आंख से अंधेरा दिखेगा/अंधेरे में न कुछ साफ दिखेगा/न दिखेगा तो माल बनेगा।

नाटक की शुरुआत में यह रोचक गीत पूरे नाटक के सार को प्रकट कर देता है। व्यंग्य की पैनी धार वाला यह नाटक विसंगतियों को बखूबी उजागर करता है। फाइल पर बाबू सोया हो, कचहरी में न्याय सोया हो, थाने में सिपाही सोया हो, संसद में नेता सोया हो तो उस देश के आम नागरिक का जीवन कितना दूभर हो जाएगा, इसी स्थिति को नाटक में बयान किया गया है।

पूरा नाटक पाठकीय एवं दर्शकीय रोचकता को बनाए रखता है। इसलिए संवाद भी दैनिक घटनाओं एवं पारिवारिक संबंधों के क्रियाकलापों पर आधारित हैं। सरदार मनजीत सिंह द्वारा अपनी पत्नी को कर्कश आवाज में कहे गए डार्लिंग शब्द पर व्यंग्यकार की टिप्पणी दीजिए- डार्लिंग शब्द है ही

खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास। इस कथा में युवा पीढ़ी का भी चित्रण है जो चेहरे से ही महान भारत का आधुनिक नौजवान लगता है। शरीर और दिल माइकल जैक्शन की जूठन जैसा। मां-बाप उसके लिए वस्तु हैं। जो लेट नाइट पार्टी में अपना 'बर्थडे' मनाना चाहता है। जिसमें बड़े अधिकारियों, व्यापारियों के बेटे-बेटियां भी शामिल होंगे। पिता उसके ऐश करने को इच्छा से अधिक रुपए दे देता है। आगे चलकर यह बिगाड़ना ही उनके लिए जी का जंजाल बन जाता है। युवाओं के समक्ष अपनी मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा को छोड़कर अंग्रेज़ी की पैरवी करना भी सांस्कृतिक समस्या को जन्म देता है।

समारोहों, पार्टियों में शराब पीने-पिलाने की परंपरा का आम हो जाना भी समाज में नए तरह के संस्कारों को जन्म दे रही है। महादेवन अपनी पत्नी कल्याणी के साथ सरदार जी की पार्टी में जाने के लिए बच्चों को खाना खिलाकर घर पर छोड़े जाते हैं। कल्याणी ऐसी पार्टी को बुरा मानती है मगर महादेवन की दृष्टि कुछ और ही कहती है- इन पार्टियों में बड़ा-बड़ा काम होता... तुम देखा हम जो पार्टी दिया... अपने बॉस को स्कॉच पिलाया... तुम अपने हाथों से सर्व किया। कितना सुंदर चिकन बनाया... बॉस कितना खुश हुआ, जाते हुए तुम्हारा हाथ चूमा। पत्नी अपनी पति की बात का विरोध करती है। वह इस पश्चिमी कल्चर को स्वीकार नहीं करता। पति महादेवन उसे समझाता है कि तुम्हारे ऐसा करने से मेरा प्रमोशन हो गया। पत्नी बॉस की हरकतों को पचा नहीं पा रही थी किंतु प्रमोशन और श्री बेडरूम वाले बड़े मकान के मिलने की आशा पर वह इस सबको स्वीकार कर लेती है। समाज में आया यह बदलाव पतन की निशानी है या विकास की? इसे नैतिकता के आधार पर ही समझा जा सकता है। स्वार्थ हमारी साँस-साँस में बस गया है और इसके वशीभूत होकर गलत को भी स्वीकार करने में हमें कोई हिचक नहीं हो रही है। नाटक में व्यंग्यकार ने इन मामूली प्रसंगों से महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया है।

समाज में उपभोग की वृत्ति के प्रति आकर्षण निरंतर बढ़ता चला जा रहा है और पार्टियों के आयोजन इसी क्रम में मौज-मस्ती के छिछले स्तर को प्रकट करने लगे हैं। 'सोते रहो' के 'दृश्य पांच' की स्टेज पर पश्चिमी संस्कृति के खुलेपन के दर्शन होते हैं- कुछ पतिव्रता महिलाएं, पति साथ निभाने के लिए मदिरा का गिलास थामे, अपने पति की पद-प्रतिष्ठा बढ़ाने में व्यस्त हैं। कुछ पिछड़ी महिलाओं के हाथ में शर्बत के गिलास हैं।

पति के साथ पत्नी का साथ निभाना तो स्वीकार किया जा सकता है किंतु पति का पद-प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यह सब किया जाना सहज स्वीकृत नहीं हो सकता। सतवंत, बैनर्जी और महादेवन अपनी-अपनी पत्नियों के साथ शराब पार्टी में मशगूल हो जाते हैं। आपसी बातचीत का यथार्थ चित्रण इस नाटक में हुआ है। आम बोलचाल की भाषा में जिस तरह से अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों की घुसपैठ हुए जा रही है, वह भी इस नाटक के पात्रों को जीवंत बनाती है। नाटक के आखिरी दृश्य में पुलिस द्वारा पार्टी में शराब पीने वालों से शराफत की दुहाई देते हुए रिश्वत लेकर रफा-दफा करने वाले मनोरम दृश्य भी हैं। पुलिस वाले सरकारी नौकर से उसकी नौकरी का वास्ता देकर रुपए ऐंठ लेते हैं। यह नाटक प्रतिकार्थ रखता है। 'सोते-रहो' जनता से कहा जा रहा है ताकि सत्ता व प्रशासन अपने-अपने स्तर पर लाभ उठाते रहें यह ऐसा आश्वासन है जो जनता की तरक्की इसलिए नहीं चाहता कि अभिजनों के हितों की पूर्ति रुक जाएगी।

'सीता अपहरण केस' नाटक में पौराणिक कथा को आधुनिक संदर्भों में दर्शाया गया है। व्यवस्था में जो भ्रष्टाचार पनप गयी हैं उन सबको प्रेम जनमेजय ने सहज शैली में चित्रित किया है। इस नाटक का मंचन भी अनेक बार हो चुका है। व्यंग्य नाटकों की दिशा में यह उनका गंभीर प्रयास कहा जा सकता है।

एक व्यंग्यकार की दृष्टि से देखें तो प्रेम जनमेजय सतही एवं बनावटी व्यंग्य लेखन से परे गंभीर गहरे, यथार्थवादी दृष्टि के लेखक हैं। वे तात्कालिक घटनाओं को आत्मसात करके विश्लेषण के पश्चात ही व्यंग्य का विषय बनाते हैं, ताकि भावों का ज्वार उतर जाए तथा जो स्थिर बचे उसी में से विषय वस्तु चुनते हैं। इसीलिए तात्कालिक विषयों या प्रसंगों पर किया गया व्यंग्य भी बहुत देर तक तथा दूर तक अपनी अनुगूंज छोड़ता है। कल्पांत पत्रिका के आत्मकथ्य से इस

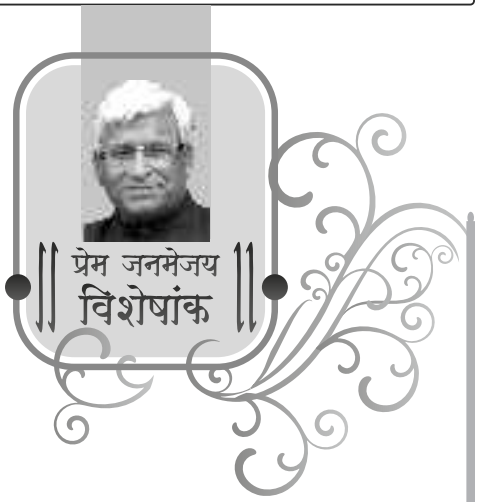

बात की पुष्टि और हो जाती है- अक्सर मेरे मस्तिष्क में रचना का कोई विचार कौंधता है तो उसे मैं पकने देता हूं या फिर मकड़ी की तरह उसके इर्द-गिर्द जाला बुनता हूं। यही कारण है कि प्रेम जनमेजय की रचनाएं काल का अतिक्रमण करती प्रतीत होती हैं।

व्यंग्य की प्रकृति पर विशेष रूप से प्रहार की प्रकृति पर उनके विचार उल्लेखनीय हैं- व्यंग्य अगर हथियार है तो इसके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता भी है। तलवार को लक्ष्यहीन हाथ में पकड़कर घुमाने से किसी का भी गला कटकर अराजक स्थिति पैदा कर सकता है तथा स्वयं की हत्या का कारण भी बन सकता है। आज हिन्दी व्यंग्य में इस तरह का अराजक माहौल पनप रहा है। इससे व्यंग्य अपने लक्ष्य से भटक रहा है। जिस व्यंग्य को नैतिक तथा सामाजिक यथार्थ की गहराई से जुड़कर, पाठक को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करना चाहिए, वही सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सतह पर ही घूम रहा है।

प्रेम जनमेजय हमारे समय के एक महत्वपूर्ण व्यंग्यकार हैं। वे न केवल व्यंग्य लेखक के रूप में बल्कि व्यंग्य के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु किए जा रहे प्रयासों के लिए भी उल्लेखनीय हैं। उनकी लेखनी का प्रहार समर्थों, संपन्नों, दबंगों तथा दुष्टों की कुवृत्तियों की ओर सदैव रहा है। उपेक्षित एवं वंचित व्यंग्य के दायरे से बाहर रहे हैं। 'व्यंग्य-यात्रा' पत्रिका के संपादन एवं प्रकाशन के लिए 'व्यंग्य समाज' सदैव उनका ऋणि रहेगा। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

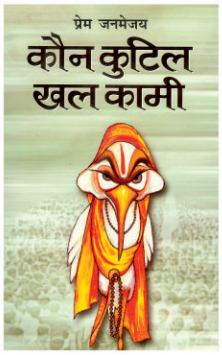

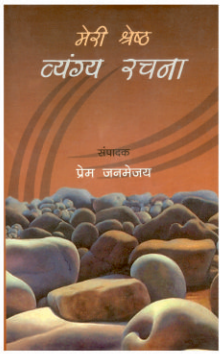

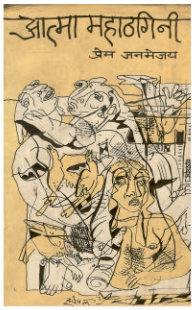

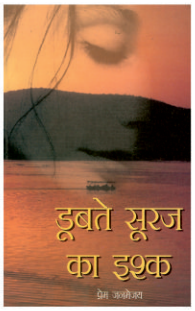

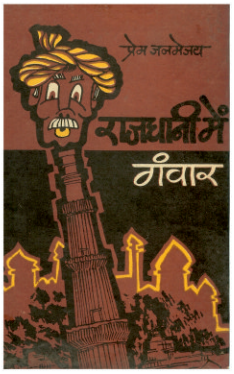

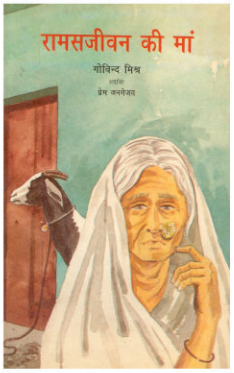

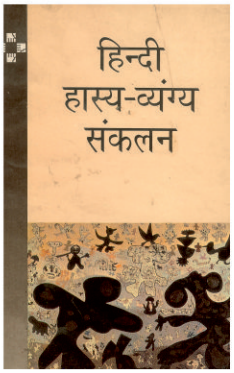

प्रेम जनमेजय विशेषांक

प्रेम जनमेजय के दो व्यंग्य नाटकों के बहाने

■ *प्रताप सहगल*

हिन्दी में 'अच्छे' नाटकों की कमी को लेकर हाय तौबा मची रहती है। यह बात उतनी सच नहीं है, जितनी यह कि हिन्दी रंगमंच के अधिकतर रंग-निर्देशक नए मौलिक हिन्दी नाटकों पर काम करने से कतराते हैं। जब बने-बनाए विदेशी भाषाओं के नाटक अंग्रेजी में उपलब्ध हों और उन्हें अनूदित या रूपांतरित करके खेला जा सकता है तो फिर नए मौलिक हिन्दी नाटकों पर माथा-पच्ची क्यों की जाए। नाटकों की कमी की बात जितनी हिन्दी के लिए सच है, उतनी ही सच वह दूसरी भाषाओं के लिए भी है। अब यह बात दीगर है कि अनेक विदेशी भाषाओं के नाटक अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं और उन्हें जल्दी से हिन्दी में उपलब्ध किया जा सकता है। हम जब अच्छे नाटकों की बात करते हैं तो हमारा मंतव्य ऐसे नाटकों से होता है, जिन्हें सफलता पूर्वक मंच पर उतारा जा सके। अगर आंशिक रूप से यह मान भी लिया जाए कि हिन्दी में मौलिक नाटकों की कमी है तो यह बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि हिन्दी में व्यंग्य नाटक लेखन का इलाका एकदम खाली पड़ा हुआ है। शरद जोशी के दो व्यंग्य-नाटकों (अंधों का हाथी और एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ) के बाद अजय गुप्ता का व्यंग्य नाटक 'ताजमहल का टेंडर' ही नज़र आता है। यूँ गिनवाने लगें तो बहुत से व्यंग्य नाटकों का नाम लिया जाएगा, लेकिन वे सभी नाटक व्यंग्य कम और हास्य की सृष्टि ज्यादा करते नज़र आते हैं। कहीं-कहीं तो यह नाटक इतने फूहड़ हास्य का सबब बनते हैं कि उन्हें हास्य-नाटकों की जगह हास्यास्पद नाटक कहना सही लगता है।

अपनी परंपरा की बात करें तो हमारे आचार्यों ने जिन आठ और फिर नौ रसों की स्थापना और उनकी विशद व्याख्या की है, उनमें एक रस हास्य-रस भी है और नाट्य-शास्त्र में ही नाटक (रूपक) के भेदों की चर्चा करते हुए प्रहसन को भी एक रूप माना गया है। प्रहसन में ही व्यंग्य निहित है। जाहिर है कि वहाँ व्यंग्य को उस रूप में देखा-समझा नहीं गया, जिस रूप में उसे हम आज देखने या समझने का उपक्रम करते हैं। भारतेन्दु युग का व्यंग्य कहीं वक्रोक्ति तो कहीं आधुनिक अर्थ में समझे जाने वाले व्यंग्य के रूप में मिलता है। 'कहै बात औरे कछु, अर्थ करै कछु और। वक्र उक्ति ताको कहैं, श्लेष काकु द्वै ठौर' (साहित्यदर्पण'के अनुसार कुलपति की परिभाषा)। आज न सिर्फ व्यंग्यकार जानता है कि वह कहाँ और किस विकृति या विद्रूप पर व्यंग्य कर रहा है, व्यंग्य-रचना पढ़ने या देखने वाला भी जानता-समझता है कि व्यंग्य कहाँ और किस पर किया जा रहा है। यही शायद एक सूक्ष्म अंतर पहले के व्यंग्य-लेखन को परसाईं और उनके बाद के व्यंग्य लेखन को अलग करता है।

संस्कृत नाटकों में भरत-वाक्य के साथ नाटक का अंत करने का सबब भी सुखांत नाटकों का सृजन ही नज़र आता है। कामदी और त्रासदी की कल्पना प्राचीन यूनान और पश्चिम की देन है। हालाँकि राधावल्लभ त्रिपाठी और कई अन्य विद्वान भारतीय संस्कृत साहित्य में त्रासदी की अलग तरह की कल्पना की स्थापना करते नज़र आते हैं। भवभूति और कालिदास के नाटकों या फिर उनके नाटाकांशों का आधार उनके पास है। लेकिन अंततः त्रासदी की कल्पना है तो यूरोप की ही। कुछ लोग संस्कृत आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त के साथ व्यंग्य को जोड़कर देखने की कोशिश करते हैं, जो सही नहीं है।

क्या व्यंग्य नाटक नाटक से कोई अलग विधा है या उसे नाटकों का विभाजन करते हुए नाटक का एक रूप ही मानना चाहिए? इसी के साथ प्रश्न यह भी जुड़ा हुआ है कि व्यंग्य-लेखन कोई एक अलग विधा है याकि मात्र एक लेखन-शैली।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

दरअसल अंग्रेज़ी के स्टायर का असर भी हिन्दी पर नज़र आता है और हास्य -व्यंग्य को अलग-अलग करके देखने की कोशिश शुरू होती है। शुरू में हास्य-व्यंग्य की बात एक साथ की जाती थी नाकि सिर्फ व्यंग्य की और इस तरह के सारे लेखन को हास्य-रस के लेखन की कोटि में ही डाल दिया जाता था। भारतेन्दु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा ना भवति' एक ऐसा प्रहसन है जिसे आधुनिक हिन्दी का पहला व्यंग्य नाटक माना जा सकता है और फिर 'अंधेर नगरी' तो उनका एक क्लासिक व्यंग्य नाटक है। तब व्यंग्य-नाटक की अवधारणा स्पष्ट न होने के कारण इन दोनों व्यंग्य नाटकों को प्रहसन ही माना गया। भारतेन्दु स्वयं उन्हें प्रहसन की श्रेणी में ही रखते हैं। लेकिन आज जब हम व्यंग्य नाटकों की बात करते हैं तो संभवत: हम उसकी शुरुआत इन दो नाटकों से ही कर सकते हैं।

प्रश्न यह है कि क्या व्यंग्य नाटक नाटक से कोई अलग विधा है या उसे नाटकों का विभाजन करते हुए नाटक का एक रूप ही मानना चाहिए? इसी के साथ प्रश्न यह भी जुड़ा हुआ है कि व्यंग्य-लेखन कोई एक अलग विधा है याकि मात्र एक लेखन-शैली। हिन्दी के अब तक के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई व्यंग्य को कोई अलग विधा नहीं मानते। उनका तर्क है कि क्योंकि व्यंग्य के पास अपना वैसा कोई स्ट्रकचर नहीं है, जैसा कि कविता, नाटक या कथा-लेखन के पास है, इसलिए व्यंग्य को एक अलग विधा नहीं माना जा सकता। व्यंग्य-लेख, व्यंग्य-निबंध, व्यंग्य नाटक या व्यंग्य उपन्यास आदि अन्तत: इन्हीं विधाओं के खाते में ही दर्ज किए जाएँगे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'व्यंग्य' लेखन की एक शैली है नाकि कोई अलग विधा। इस तर्क के बरक्स यह तर्क खड़ा नज़र आता है कि जब हम व्यंग्य को लेखन की मात्र एक शैली मानते हैं तो फिर व्यंग्य लेखक या व्यंग्य-लेखन क्या होता है? हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, श्याम जोशी आदि और बाद में ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल आदि को हम व्यंग्य-लेखक क्यों कहते हैं? इससे साबित यह होता है कि व्यंग्य-लेखन को लेकर अभी भी कोई साफ़ और बेबाक एप्रोच या समझ नहीं बनी है। मैं स्वयं उन लोगों में हूँ जो यह मानते हैं कि अब व्यंग्य मात्र एक लेखन शैली नहीं रही, बल्कि वह एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो चुकी है। यानी उपन्यास, उपन्यास तो होता है लेकिन वह व्यंग्य-उपन्यास नहीं होता, व्यंग्य उपन्यास में व्यंग्य का पुट इतना ज़्यादा होता है कि वह उपन्यास निरा उपन्यास न होकर व्यंग्य-उपन्यास हो जाता है और जब हम व्यंग्य को एक अलग विधा के रूप में रेखांकित करें तो इस तरह के उपन्यासों को व्यंग्य की कोटि में ही रखा जाना चाहिए नाकि निरे उपन्यास लेखन की कोटि में। ठीक इसी तरह से व्यंग्य नाटक भी निरा नाटक नहीं होता बल्कि अपने भेदक व्यंग्य रूप के कारण वह व्यंग्य नाटक होता है और उसे व्यंग्य लेखन के नाट्य-रूप में समाहित करना चाहिए।

तर्क यह भी दिया जा सकता है कि कोई भी नाटक बिना 'ड्रामेटिक आयरेनी' के नाटक नहीं बनता। इस तर्क के जवाब में यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य नाटक की 'ड्रामेटिक आयरनी' ना सिर्फ उसके नाट्य-व्यापार में बल्कि उसमें दृश्यों के हर फ्रेम में और उससे से भी ज़्यादा उसके संवादों में होती है। यह दो बातें हमें निरे नाटकों में नहीं मिलतीं और यही दो बातें मुख्यत: व्यंग्य नाटक को व्यंग्य लेखन विधा में प्रवेश दिलवाती हैं। प्रेम जनमेजय के दो नाटक 'सोते रहो' और 'सीता अपहरण केस' इसी कोटि के नाटक हैं।

इन नाटकों पर बात करने से पहले दो एक शब्द व्यंग्य पर भी करना जरूरी है। समय-समय पर अनेक लेखकों, विचारकों ने व्यंग्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। किसी ने इसे हास्य के साथ जोड़ा है, किसी ने अलगाया है। मेरी समझ से व्यंग्य कहीं कशाघात करता है तो कहीं कुशाघात। कहीं व्यंग्य हँसी का वह आलोक पैदा करता है, जिस आलोक के पीछे टीस का साम्राज्य होता है। एक ऐसी स्थिति जहाँ व्यक्ति हँस तो रहा है, लेकिन अंदर ही अंदर कहीं विचलित हो रहा है। रोना चाहता है, लेकिन रोने के बजाय हँसता है और उस हँसी के पार्श्व में कहीं आँसुओं की एक हल्की-सी लीक दिखाई दे जाती है। कहीं व्यंग्य मारक होते-होते मार्मिक हो जाता है तो कहीं त्रासद। ऐसा त्रासद कि वह कहीं अंदर तक छील देता है।

प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य-लेखन में एक लंबी यात्रा तय की है। शुरू के दिनों में इन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखीं, जिनमें व्यंग्य-लेखन की आहट सुनाई देती है। लेकिन शुरू के दिनों में किसी भी लेखक के लिए यह तय करना मुश्किल होता है कि वह थोड़ा आगे चलकर लेखन की कौन-कौन-सी पगडंडी पर चलेगा। प्रेम ने अपनी राह और अपनी सामर्थ्य जल्दी ही पहचान ली और व्यंग्य की राह पकड़ ली। यह वह समय था जब हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी और रविन्द्रनाथ त्यागी व्यंग्य-लेखन की नई परिभाषा गढ़ रहे थे। अनेक अन्य लेखक भी थे जो अन्य विधाओं में लिखते-लिखते कभी-कभी व्यंग्य में भी हाथ आजमा लेते। धीरे-धीरे प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी और हरीश नवल की त्रयी व्यंग्य लेखन में रेखांकित होने लगी और आज तीनों ने अपनी-अपनी जगह बनाई है। ज्ञान ने व्यंग्य उपन्यास की राह पकड़ी और बारहमासी तथा नरक यात्रा जैसे व्यंग्य उपन्यास हमें दिए। हरीश व्यंग्य में ही जमे रहे। यूँ वे कभी-कभी कविता या नाटक में हाथ आजमाते रहते हैं। प्रेम ने पहली बार व्यंग्य नाटक के इलाके में उतरने की जुर्रत की है और मुझे कहा है कि मैं इन नाटकों के साथ दो-दो हाथ करूँ।

प्रेम के यह दोनों व्यंग्य नाटक पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर मंचित भी हो चुके हैं। मुझे मंचित होते देखने का अवसर तो नहीं मिला, लेकिन इन्हें पहले भी उन्हीं की पत्रिका इन्हें व्यंग्य-यात्रा में पढ़ने का अवसर जरूर मिला है। 'सोते रहो' और 'सीता अपहरण केस', यह दोनों ही नाटक व्यंग्य नाटकों की दुनिया में नया दखल है। सोते रहो का

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

लोकेल और उसकी वस्तु दोनों ही बहुत पहचाने हुए हैं। इन्हें पढ़ते-पढ़ते यह भी ध्यान आया की प्रेम की नज़र में सम्भवत: नाटक सिर्फ दिखाने की चीज़ नहीं, बल्कि पढ़ने की चीज़ भी है। इन नाटकों में दिए गए 'रंग-संकेत' दिखाने की बजाय पढ़ाने के लिए लिखे गए ज़्यादा नज़र आते हैं। मैं अपनी बात एक उदाहरण देकर समझाना चाहता हूँ। 'सोते रहो' में एक रंग-संकेत इस तरह से है-

(सतवंत अचानक हुए इस वाणी प्रहार से धक्क-सी रह जाती है। हाथ में गिलास गिर कर टूट जाता है। डार्लिंग शब्द है ही खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास। मनजीत सिंह का प्रवेश)

इस रंग-संकेत पर ज़रा गौर फरमाइए। सतवंत अचानक हुए इस वाणी प्रहार से धक्क-सी रह जाती है। हाथ में (वैसे यहाँ 'में' की जगह 'से' होना चाहिए) गिलास गिरकर टूट जाता है'यहाँ तक का रंग-संकेत दृश्य बनाता है, लेकिन आगे 'डार्लिंग शब्द है ही खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास' मात्र एक पाठ्य नाट्य-संकेत है। इसे अगर दिखाना हो तो यह सतवंत के पति मनजीत सिंह के संवाद का हिस्सा होना चाहिए था या फिर व्यंग्य नाटककार को कोई ऐसी नाट्य-युक्ति निकालनी चाहिए थी कि यह संवादमंच के माध्यम से ही दर्शक तक संप्रेषित हो सकता। क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि व्यंग्य नाटय-लेखन का एक स्वरूप यह भी हो सकता है कि आप इसे पढ़ें तो नाटक के आनंद के साथ-साथ व्यंग्य का आनंद भी लेते चलें या यह मानना चाहिए कि लेखक पर व्यंग्य-लेखन का भूत इतना सवार है कि वह किसी भी स्थिति पर व्यंग्य करने का लोभसंवरण नहीं कर पाता। मुझे लगता है कि यहाँ या ऐसी ही दूसरी जगहों पर रंग-संकेत देते हुए लेखक को सावधान रहने की ज़रूरत है।

'सोते रहो' व्यंग्य नाटक के मंतव्य बहुत स्पष्ट हैं। अपने इन्हीं मंतव्यों को दर्शक तक पहुँचाने के लिए प्रेम ने देश के विभिन्न राज्यों से पात्र चुने हैं। मनजीत सिंह और सतवंत तथा रमा आहूजा और आहूजा पंजाबी हैं, बैनर्जी और जयश्री बंगाली, महादेवन और कल्याणी दक्षिण भारतीय (यानी चैन्नई) के हैं। यह पात्र भारत के दूसरे प्रांतों से होते तो भी नाटक के संप्रेष्य मंतव्यों में कोई फ़र्क नहीं पड़ता। इन पात्रों के साथ ही बंसल, चौकीदार, कवि कौंचू और कवि भौंक, शराबी सब-इंस्पेक्टर और कुछ पुलिस वाले, सभी मिलकर नाटक का ताना-बाना बुनते हैं। नाटक के पहले अंक में मनजीत सिंह और सतवंत अपने घर में एक पार्टी की तैयारी करते नज़र आते हैं और शेष जोड़े अपने-अपने घरों में उस पार्टी में जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। मनजीत सिंह एक ठेकेदार हैं और शेष लोग इस तरह के नौकरीपेशा हैं जो मनजीत सिंह की ठेकेदारी को बढ़ाने और फलने-फूलने में मदद कर सकते हैं। बीच में मनजीत सिंह के बेटे बंटी का प्रवेश यह साफ कर देता है कि पैसे की अतिशयता बच्चों को किस कदर बिगाड़ देती है। पहले अंक में पार्टी की तैयारी और फिर पार्टी के माहौल का रंग है। यहाँ मौजूद सभी पात्रों के माध्यम से ही एक-दूसरे के प्रति और सामाजिक विद्रूपताओं के प्रति व्यंग्य उभरता नज़र आता है। दूसरे अंक में एक शराबी के प्रवेश से नाटक उसी दिशा में जाता है, जिस दिशा में नाटककार उसे ले जाना चाहता है। शराबी और महादेवन में ठन जाती है। सभी पात्र क्योंकि एक ही मोहल्ले में रहते हैं, बाहर आ जाते हैं। पंजाबी क्या करेगा? सीधे भिड़ेगा या फिर दूसरे की लड़ाई में मज़ा लेगा और करेगा कुछ नहीं। मनजीत सिंह सीधे भिड़ने को तैयार हैं तो बंसल बीच-बीच में 'सही कै रये हो, सही कै रये हो' कहकर ही लड़ाई का मज़ा लेते हुए अपना दायित्व निभाता रहता है। जयश्री का बंगाली चरित्र सामने आता है और महादेवन का अपने इलाके का। सब-इंस्पेक्टर शराफत सिंह हो या चौकीदार सभी परिचित अंदाज में ही सामने आते हैं। इस प्रकार के चरित्रों के साथ नाटक लिखने का एक लाभ यह होता है कि दर्शक जल्दी ही उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, लेकिन खतरा भी है कि कहीं चरित्र-चरित्र न रहकर एक कैरिकेचर बन कर ही ना रह जाए। इसके लिए कहीं- कहीं तो प्रेम सावधान नज़र आता है। सावधान वहाँ है जहाँ वह प्रतिनिधि चरित्रों किसी व्यैक्तिक पक्ष को उभार कर उसे एक

कोई भी नाटक बिना 'ड्रामेटिक आयरेनी' के नाटक नहीं बनता। इस तर्क के जवाब में यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य नाटक की 'ड्रामेटिक आयरनी' ना सिर्फ उसके नाटच-व्यापार में बल्कि उसमें दृश्यों के हर फ्रेम में और उससे से भी ज़्यादा उसके संवादों में होती है। यह दो बातें हमें निरे नाटकों में नहीं मिलतीं और यही दो बातें मुख्यतः व्यंग्य नाटक को व्यंग्य लेखन विधा में प्रवेश दिलवाती हैं। प्रेम जनमेजय के दो नाटक 'सोते रहो' और 'सीता अपहरण केस' इसी कोटि के नाटक हैं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

अलग रूप दे देता है। जैसा कि मनजीत सिंह के चरित्र के साथ हुआ है और कहीं उसने अपने पात्रों को मात्र एक प्रतिनिधि चरित्र बनाकर छोड़ दिया है। कवि कौंचू और कवि भौंक के माध्यम से उसने आज हास्य के नाम पर चल रही मंचीय चुटकला नुमा कविता का वैसा ही मखौल उड़ाया है, जिस मखौल के काबिल यह चुटकलिया तुकबंदियाँ हैं।

नाटक के अंत में जब पुलिस वाला शराबी से पैसे और महादेवन से शराब की तीन बोतलें ले जाने लगता है और जाते- जाते चौकीदार को कह जाता है कि तुम 'सोते रहो' की आवाज़ लगाते रहो तो वहाँ दारुण व्यंग्य की स्थिति उत्पन्न होती है। मेरी राय में तो चौकीदार की इस आवाज़ में पुलिस की आवाज़ भी मिला दी जाती तो व्यंग्य और धारदार हो जाता। नाटक के नाम 'सोते रहो' में ही व्यंग्य की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। नाटक की पूरी बुनावट में जिस तरह से स्थितियों और संवादों का संसार खड़ा किया गया है, उसमें हास्य का पुट बहुत गहरे तक घुला हुआ है।

यही बात प्रेम के दूसरे व्यंग्य नाटक 'सीता अपहरण केस' के बारे में नहीं कही जा सकती। 'सीता अपहरण केस' का मंचन भी कई जगह हो चुका है। संभवत: 'सोते रहो' की अपेक्षा अधिक जगहों पर। भोपाल में हुए मंचन को सी.डी. के माध्यम से देखने का सुयोग हुआ। इस समय मध्यप्रदेश में भाजपा की सरकार है। इस नाटक का मंचन करने वाले ग्रुप के सदस्य इतना साहस नहीं बटोर पाए कि नाटक का शीर्षक न बदलते। शासन के या भाजपाई शक्तियों के संभावित दबाव में उन्होंने इस नाटक का मंचन ना सिर्फ 'मुकदमा' नाम से किया बल्कि नाट्य-युक्ति का सहारा लेकर थानेदार एवं राम-लक्ष्मण के एनकाउंटर वाले सीन को एक ड्रीम सीक्वन्स में बदल दिया। किसी रचना का इस तरह का असर कि कुछ शक्तियाँ उससे डरने लगें, यह उस रचना की ही बड़ी सफलता है।

'सीता अपहरण केस' भी दो अंकीय व्यंग्य-नाटक है। पहले अंक में थानेदार, थानेदार की पत्नी, नेता जी और पत्रकार सिन्हा के माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि पूरी तरह से भ्रष्ट हो गई व्यवस्था के तार किसी न किसी रूप में इन सबसे जुड़ते हैं। आज हालत यह हो गई है कि कहीं ईमानदार नेता या पत्रकार हो भी तो यकीन नहीं आता कि वे ईमानदार होंगे। लगता है कि उनकी कथित ईमानदारी वास्तविक न होकर उनकी किसी स्ट्रेटजी का हिस्सा है। हालाँकि पहला अंक थोड़ा खिंच गया लगता है, लेकिन उसमें दूसरे अंक में हुए घटना-क्रम का तर्क स्थापित हो जाता है कि ऐसे घोर 'कलियुग' में सीता का अपहरण होता तो क्या होता? हमारी पौराणिक, ऐतिहासिक रामकथा ही इस नाटक के थीम का आधार है। नाटककार के साथ आप भी कल्पना कीजिए कि आज अगर सीता का अपहरण होता तो आज का थानेदार क्या कहता।

थानेदार- साला किड़शन सिंह... हमें तिया नंदन समझता है..कहता है रामायण देखो... अबे क्या देखो उसमें? महादेव जी का... (नशे में स्वर धीमा होता है) अब क्या है उसमें... पुलिस कहाँ है... इतने मर्डर और पुलिस गायब... सीता गायब हुई और राम-लक्ष्मण हमारे थाने नहीं आए... मैं ढूँढ़कर देता सीता को... मैं बिना पैसे के ढूँढ़कर देता... पर हम पुलिसवालों पर तो कान्फीडेन्स ही नहीं है... नो कान्फीडेन्स रामा... आन पुलिस, व्हाई... पुलिस नाट देयर... व्हाई... इस तरह से इस अंक में एक से एक हार्ड-हिटिंग संवाद भरे पड़े हैं। इन संवादों की अदायगी के अंदाज से दर्शकों का लाटर तो मिलेगा ही, वह अंदर ही अंदर कहीं कसमसाता भी रहेगा कि आखिर ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था और ऐसी भ्रष्ट पुलिस का वह करे तो क्या करे? हार झख मार कर फिर उसे इसी भ्रष्ट पुलिस का सहारा ही गाहे-बगाहे लेना पड़ता है। हमारे मौजूदा जीवन का यही विरोधाभास व्यंग्यकार के निशाने पर है। थानेदार का यह संवाद,'इसने रावण से पंगा लिया है... तू तो गया काम से। शासन से पंगा लेना बड़ा महंगा पड़ता है'या फिर 'पुलिस सहायता' शब्द की नई व्याख्या कि 'पुलिस सहायता' मतलब पुलिस की सहायता करो। और जब राम सीता के अपहरण की बात करते हुए थानेदार को बताता है कि वह सोने के एक मृग के पीछे गया था। बस इतना सुनते ही थानेदार का कहना- '...यानी हमारे इलाके में सोने के हिरण बन रहे हैं... अरे भाई वाह... सोने के हिरण भी बनने लगे और हमें पता ही नहीं' और फिर राम को यह मशविरा भइए, अगर ऊपर के आदेश से तुम्हारी सीता गायब हुई है तो समझ लो उसे गायब होना ही था। तुम सात तालों में सीता बंद करके रख लेते, तब भी तुम्हारी सीता गायब हो जाती। इस तरह के व्यंग्यात्मक संवादों की इस नाटक और विशेषत: दूसरे अंक में भरमार है। कुछ संवाद अनावश्यक रूप से लंबे किए गए लगते हैं। उनमें प्रासंगिक व्यंग्य तो है लेकिन वे नाटक की मूलधारा से इधर-उधर भटक गए लगते हैं।

यह तो मानना ही होगा कि इस नाटक में प्रेम जनमेजय की कारयत्री प्रतिभा अपने उत्कर्ष पर है। मंच की दृष्टि से इन नाटकों का परखने का लोभ भी संवरण नहीं कर पा रहा। हालाँकि यह अधिकार उस निर्देशक को देना होगा, जो इन नाटकों का मंचन करेगा। लेकिन नाटक पढ़ने के साथ-साथ ही एक मंच पाठक के अंदर भी खुलने लगता है। पढ़ने में यह नाटक कहीं मज़ेदार, कहीं मारक, कहीं चुटीले तो कहीं विरेचक हैं, लेकिन मंच पर आते ही इन्हीं संवादों के साथ नाटकीय त्वरा कम होने के आसार नज़र आते हैं या तो इनके लिए निर्देशक को कुछ नाट्य-युक्तियों का सहारा लेना होगा या फिर इनकी शब्द-बहुलता कम करनी होगी या उन्हें तोड़कर नया रूप देना होगा। बिल्कुल इसी तरह से पेश करने में नाटक के ड्रैग होने की पूरी-पूरी संभावनाएँ हैं। कहने को तो हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसे ही नाटक तो निर्देशक के लिए एक चुनौती होते हैं। खेल के देखिए तो सही और मुझे तो संतोष इस बात का भी करना चाहिए कि मेरे एक प्यारे दोस्त ने इन नाटकों के साथ व्यंग्य नाटकों के खाली पड़े इलाके में कदम रखा है। इन अर्थों में यह नाटक दो व्यंग्य-धमाके हैं। ◆◆◆

डॉ. प्रेम जनमेजय के प्रति प्रेम जन्मेजय करे जग

■ **प्रो. हरिशंकर आदेश**

डॉ. प्रेम जनमेजय संज्ञा है एक ऐसे व्यक्ति की जो साक्षात् प्रेम की प्रेममूर्ति है। जिसे किसी से ईर्ष्या-द्वेष-घृणा करना आता ही नहीं (जो सबको समुचित सम्मान देता है, प्रशंसा देता है, स्नेह देता है, आवश्यकता पड़ने पर सक्रिय सहयोग भी देता है।) मूर्धन्य व्यंग्यकार होते हुए भी किसी के व्यक्तिगत जीवन पर कभी कोई कटाक्ष नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी की चाटुकारिता करता है। नहीं, नहीं ऐसा विचार भी मन में लाना अनुचित होगा। स्पष्ट बात करने में भी उसका कोई साम्य नहीं है। किंतु वह कटु सत्य कहकर किसी का हृदय भी नहीं दुखाता। यही कारण है कि प्रेम जनमेजय से जिसकी भी एक बार भेंट होती है, वह उन्हें कदापि विस्मृत नहीं कर सकता। मैं इसे ईश्वरीय कृपा ही मानता हूं कि डॉ. प्रेम जनमेजय जैसे महान व्यक्ति से मिलने का अवसर मिला। अवसर था छोटा-सा परंतु एक विशेष समारोह जो मित्रवर डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित अपने आवास पर मेरे स्वागत में आयोजित किया गया था। यह समारोह इसलिए विशेष था क्योंकि इसमें स्वर्गीय यशपाल जैन, स्वर्गीय डॉ. नगेंद्र, श्री लल्लन प्रसाद व्यास तथा डॉ. दिविक रमेश आदि जैसे महानुभाव पधारे थे। उन्होंने मेरे विषय में कुछ स्नेहपूर्ण सुष्ठु विचार भी व्यक्त किए थे। यद्यपि मेरा कण्ठ शीत के प्रकोप के कारण अस्वस्थ था परंतु हिन्दी के अनेक मूर्धन्य आचार्यों एवं साहित्यकारों से वार्तालाप कर के हृदय पुलकित हुआ था। इसी चिर स्मरणीय उल्लास भरी संध्या में डॉ. ऋतुपर्ण ने चलते समय एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से परिचय करवाया, जिसका नाम था डॉ. प्रेम जनमेजय। औपचारिक परिचय एवं अभिवादन के उपरांत ऋतुपर्ण जी ने इतनी ही सूचना दी थी कि डॉ. प्रेम जनमेजय एक लेखक हैं तथा शीघ्र ही ट्रिनिडाड आने वाले हैं। उस समय शकुंतला महाकाव्य सहित मेरी पाँच पुस्तकें शिल्पायन दिल्ली से प्रकाशित हुईं थीं। मेरे हाथ में पुस्तकें देखकर जनमेजय जी के सादर आग्रह पर मैंने अपनी एक पुस्तक प्रवासी की पाती भारत माता के नाम उन्हें भेंट की। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे उसकी समीक्षा लिखेंगे।

मैं उन दिनों उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रदत्त प्रवासी हिन्दी भूषण सम्मान प्राप्त करने भारत गया हुआ था। यद्यपि नियमित सम्मान समारोह अक्टूबर-नवम्बर में ही संपन्न हो चुका था, परंतु उसमें भाग नहीं ले सका था। अतएव फरवरी में मेरे लिए पृथक से व्यवस्था की गई थी। लखनऊ से लौटकर दिल्ली कनाट प्लेस में जंतर-मंतर के समक्ष निर्मित पार्क होटल में ठहरा हुआ था। यद्यपि समय का अभाव था परंतु मित्रवर डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण जी का प्रेमाग्रह पूर्ण निमंत्रण को अस्वीकार करने की क्षमता मुझमें नहीं थी। मेरी धर्मपत्नी डॉ. निर्मला आदेश अस्वस्थ होने के कारण नहीं जा सकीं थीं।

जीवन में अपनी भारत-यात्राओं में लगभग प्रत्येक मूर्धन्य विद्वान से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रायः अनुभव हुआ है कि गर्जन-युक्त मेघ वर्षण नहीं करते। किंतु यह सज्जन तो वचन के पक्के निकले। इसका विश्वास हुआ जब ओटावा स्थित भारतीय उच्चायुक्त कार्यालय से मेरे नाम एक सौ पचहत्तर डॉलर का चैक आ गया। पत्र में सूचना भी थी कि गगनांचल में मेरी पुस्तक प्रवासी की पाती-भारत माता के नाम की समीक्षा के प्रकाशन के उपलक्ष्य में यह धन-राशि प्रदान की गई है। यह पत्र प्राप्त होते ही दिल्ली में मिले डॉ. प्रेम जनमेजय की सौम्य मूर्ति नयनों के सम्मुख साकार हो उठी। अंतर ने अनायास आभार प्रदर्शन किया। इसलिए नहीं कि वह धन राशि मिली थी अपितु इसलिए कि इतने सुविख्यात लेखक ने मेरी पुस्तक की समीक्षा लिखी और वह गगनांचल जैसी स्तरीय पत्रिका में प्रकाशित हुई।

इस मध्य डॉ. प्रेम जन्मेजय ट्रिनिडाड आ चुके थे तथा कतिपय विशिष्ट जनों से मुझसे मिलने की जिज्ञासा भी व्यक्त कर चुके थे। मेरे आश्रम में दूरभाष पर मेरी उपस्थिति के विषय में पूछताछ भी की थी। मुझे संदेश मिल गया था कि कोई डॉ. प्रेम कुंद्रा भारत से आए हैं और मुझ से मिलने के लिए उत्सुक हैं। मैं दो-तीन मास उपरांत अपने आश्रम पर लौटा। ट्रिनिडाड के हिन्दी-जगत में सेवारत कुछ शिष्यों से ज्ञात हुआ कि डॉ. कुंद्रा मुझसे

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

मिलना चाहते हैं। मैं भी उत्सुक था जानने को कि डॉ.प्रेम कुंद्रा कौन हैं कैसे हैं। आज तक भारत सरकार द्वारा प्रेषित किसी भी हिन्दी विद्वान ने मुझ से मिलने की इतनी उत्कण्ठा व्यक्त नहीं की। लगभग सभी विद्वान औपचारिक रूप से मिले और कुछ तो अपना त्रिवर्षीय कार्य-काल पूर्ण करके मुझसे बिना मिले ही भारत लौट भी गए। मैं इसी ऊहापोह में था कि अगले दिन ही डॉ. कुंद्रा से दूरभाष पर वार्तालाप हुआ। रहस्योदघाटन हुआ और आधे घंटे में ही हम एक दूसरे के आमने-सामने थे। तो, यह थी हमारी प्रथम भेंट ट्रिनिडाड में। प्रथम भेंट ही इतनी सुंदर, मधुर, सार्थक तथा प्रभावपूर्ण रही कि हम आत्मीयता के उस स्तर तक पहुंच गए कि यदि दो-चार दिन नहीं मिलते थे तो लगता था कि बिना मिले बरसों व्यतीत हो गए हों। प्रेम जी की धर्मपत्नी आशा जी से मिलकर तो मानो हमारे परिवार मिलकर एक हो गए। प्रेम जी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि वे प्रत्येक नवागंतुक को भी अपना बना लेते हैं। इसीलिए मेरी लेखनी से स्वत: ही नि:सृत हो गया था कि प्रेम जन्मे जय करे जग। यह पूरी कविता उनके पास है। मैंने तो यूं ही उनके सामने ही बैठे-बैठे कुछ पंक्तियां लिख दी थीं।

उन्होंने मेरे महाकाव्य शकुंतला, कहानी-संग्रह रजत जयंती तथा निर्मल सप्तशती आदि का अध्ययन किया तथा अपने विचार भी लिखित रूप में व्यक्त किए। मेरे निवेदन पर उन्होंने मेरी कबीराना या अटपटी कविताओं के संकलन निर्वेद की सुंदर भूमिका भी लिखी। मैंने अनुभव किया डॉ. प्रेम जनमेजय केवल एक सशक्त व्यंग्यकार ही नहीं प्रत्युत् एक सजग, सक्रिय तथा अनुभवी लेखक एवं समीक्षक भी हैं। उन दिनों मैं राम नामक फॉन्ट का प्रयोग करता था, जो पुराना हो गया था। जनमेजय जी ने अर्जुन फॉन्ट का परिचय कराया और उसकी एक प्रति भी प्रदान की। मैं तब से अर्जुन फॉन्ट का ही प्रयोग करता हूं। इस प्रकार वे सर्वदा मेरे स्मृति-लोक में बने रहते हैं। उनकी स्मृति कभी मुझसे दूर नहीं जाती। देखा गया है कि लेखक तथा कवि प्राय: अतिशयोक्तिमय वक्तव्य, आलस्य एवं प्रमाद के रोगी होते हैं, परंतु जनमेजय जी में ऐसा कोई अवगुण दूर-दूर तक दृष्टिगत नहीं हुआ। वे लेखन में कदापि विलम्ब नहीं करते हैं। उनकी स्पष्टवादिता मुझे अत्यंत रुचिकर लगी।

डॉ. प्रेम जनमेजय भारत सरकार की ओर से आने वाले प्रथम निष्पक्ष, उदार तथा निर्भीक व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय विद्या संस्थान की गतिविधियों की हृदय से सराहना ही नहीं की अपितु सार्थक सुझाव तथा सहयोग भी दिया। संस्थान का कोई भी उत्सव उनके बिना नहीं होता था। वे भारतीय विद्या संस्थान के एक अभिन्न अंग बन गए थे। आज भी लोग उन्हें स्मरण करते हैं। उनके साथ व्यतीत किए हुए क्षणों को यदि लिपिबद्ध किया जाए तो एक बड़ी पुस्तक बन जाएगी। अत: उन संस्मरणों को अपनी आपबीती (आत्मकथा) पुस्तक के लिए सुरक्षित रख रहा हूं।

अस्तु, हमारी साहित्यिक एवं व्यक्तिगत आत्मीयता उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई। जनमेजय जी में भी कुछ करने की लगन है। उन्होंने विश्वविद्यालय में हिन्दी शिक्षण करते हुए भी भारतीय उच्चायुक्त आयोग के कार्यालय में आयोजित हिन्दी कक्षाओं में भी यथेष्ट कार्य किया। उन्होंने न जाने किस भावना से प्रेरित होकर मुझे ऋषि शब्द से संबोधित किया। डॉ. नरेश मिश्र के उपरांत वे द्वितीय महानुभाव थे, जिन्होंने मुझे स्वत: ही ऋषि कहकर संबोधित किया। मैं पूर्ण परिचित था कि भारतीय उच्चायुक्त आयोग के गुप्त एवं पारंपरिक निर्देश की अवहेलना करके ही वे मुझ से मिले थे। मैं उनका हृदय से आभारी हूं कि उन्होंने भारतीय उच्चायुक्त आयोग में मेरे प्रति पल रही भ्रांति का उन्मूलन किया। उनके प्रयास से ही मुझे भारतीय उच्चायुक्त आयोग ने विशिष्ट हिन्दी सेवा सम्मान से सम्मानित भी किया। उन्होंने भारतीय उच्चायुक्त आयोग में मेरा एकल कविता पाठ भी करवाया। जनमेजय जी ने स्वयं कवि न होते हुए भी अपने आवास पर हिन्दी कवि गोष्ठियों का आयोजन

डॉ. प्रेम जनमेजय भारत सरकार की ओर से आने वाले प्रथम निष्पक्ष, उदार तथा निर्भीक व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय विद्या संस्थान की गतिविधियों की हृदय से सराहना ही नहीं की अपितु सार्थक सुझाव तथा सहयोग भी दिया। संस्थान का कोई भी उत्सव उनके बिना नहीं होता था।

किया। दीपावली नगर तथा विश्वविद्यालय में विराट कवि सम्मेलन भी करवाए, जिनमें अधिकांश अवसरों पर मुझे ही अध्यक्ष पद का सम्मान प्रदान किया। इन कवि सम्मेलनों में स्व. डॉ. कन्हैयालाल नंदन, डॉ. अशोक चक्रधर, डॉ. दिविक रमेश, बाबा मौर्य, गजेंद्र सोलंकी, मनोहर पुरी, मधुप मोहता आदि अनेक कवियों ने भाग लिया। उन्हीं के सौजन्य से भारत से आने वाले सभी कवियों ने आदेश आश्रम में भी आयोजित कवि सम्मेलनों में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने हस्ताक्षर क्लब भी चलाया। ट्रिनिडाड ने उन्हें भी कवि बना दिया, जिसका प्रमाण उनका जहाजी चालीसा है। उनका स्वदेश- प्रेम सराहनीय है। इसके अतिरिक्त वे एक अच्छे मित्र हैं। मित्रता का निर्वहन भी उन्हें आता है। यहां से जाने के उपरांत भी सब से संबंध बनाए रखना सरल कार्य नहीं है। उन्होंने सन् 2004 ई. में हमारे दिल्ली - प्रवास में अपने आवास पर मेरे स्वागत में एक कवि-गोष्ठी का आयोजन किया, जो अविस्मरणीय है। ट्रिनिडाड में डॉ. प्रेम जनमेजय द्वारा किया गया हिन्दी सेवा कार्य स्मरणीय है। वे केवल एक उत्तम व्यंग्यकार ही नहीं अपितु एक अच्छे लेखक, समीक्षक, व्याख्याता, व्यवस्थापक, मंच संचालक तथा सत्य अर्थों में अच्छे मित्र भी हैं। सब से बढ़कर वे एक अच्छे मानव हैं। मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी चेतना उन पर एक विशेषांक निकाल रही है। तदर्थ हिन्दी चेतना परिवार तथा डॉ. प्रेम जनमेजय जी को बधाई। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे स्वस्थ एवं दीर्घायु हों तथा उनकी लेखनी वेगपूर्वक चलती रहे। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय बनाम व्यंग्य यात्रा

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

■ *अविनाश वाचस्पति*

प्रेम जनमेजय से मेरा परिचय मेरी उन रचनाओं ने कराया जो 2007 और 2008 में नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, राष्ट्रीय सहारा, जनसत्ता पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इंटरनेट के जरिए उनसे परिचय हो गया था। इंटरनेट ने खूब सारे मित्र दिए हैं परंतु उनमें प्रेम जनमेजय का स्थान इसलिए विरल है क्योंकि बाद में वे ब्लॉग जगत के साथी बने, सभा-गोष्ठियों में उनसे मुलाकात होने लगी, उनके जरिए ज्ञान चतुर्वेदी, प्रताप सहगल, लालित्य ललित तथा अन्य कई और साहित्य साधकों से भी मिलना हुआ। इंटरनेट पर लिखचीत (चैट) होने पर भाई तेजेन्द्र शर्मा, पूर्णिमा वर्मन, सुधा ओम ढींगरा, राजीव रंजन प्रसाद इत्यादि से भी मन मिले।

बात प्रेम जी की हो रही है तो मेरा ऐसा मानना है कि प्रेम जनमेजय और व्यंग्ययात्रा एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं बल्कि प्रेम को व्यंग्य के पर्याय के तौर मान्यता दिए जाने से पाठक का तो फायदा ही है और इन दोनों की ज़िम्मेदारी बढ़ जाएगी। दोनों को एक दूसरे से ऊर्जा मिलती है, मिलती रही है और मिलती रहेगी। यह ऊर्जा व्यंग्य के विकास के लिए परम आवश्यक है। व्यंग्यकारों को आपस में जोड़ने का जो कार्य व्यंग्य यात्रा कर रही है, उसका श्रेय सीधे तौर पर संपादक प्रेम जनमेजय को जाता है। इस प्रकार यह कहना भी समीचीन ही होगा कि व्यंग्य यात्रा की समीक्षा करना या उसके गुणों को पहचानना स्पष्ट तौर पर प्रेम जनमेजय को जानना पहचानना ही है।

प्रेम व्यंग्य में और व्यंग्य प्रेम में कुछ इस तरह घुल-मिल गया है कि यह घुलना-मिलना मिलावट नहीं है। इस प्रक्रिया की सबसे बेहतरीन उपलब्धि है। व्यंग्य यात्रा प्रेम जनमेजय के सार्थक विचारों का प्रतिफलन है। प्रेम के बीज व्यंग्य यात्रा के अंकुर बन फूटे हैं और विकसित हो रहे हैं। यह निश्चय ही बरगद बनेंगे। वैसे जहाँ तक मैं समझता हूं कि इसे सिर्फ प्रेम की व्यक्तिगत उपलब्धियों के खाते में जोड़ना सही नहीं है। इसमें प्रेम के परिवार के सदस्यों की भागिता यूं भी महसूस की जा सकती है।

प्रेम व्यंग्य यात्रा के सिर्फ संपादक ही नहीं हैं, सब कुछ हैं। इस बीज के अंकुरित होने और बरगद बनने के बाद भी प्रेम जनमेजय के योगदान की अनदेखी करना संभव नहीं है और कोई चाहेगा भी नहीं कि इस श्रम को स्वीकारने से शर्माया जाए।

वे इसके फुलटाइम वितरक भी हैं। सभी गोष्ठियों में इसे अपने साथ यूं रखते हैं जैसे कोई अपने कलेजे के टुकड़े को सदा अपने साथ रखता है और प्रेमीजनों को निस्पृह भाव से सौंपते भी दिखाई देते हैं। प्रेम की यह अकेली सफलता ही साहित्य हित के लिए प्रभावी है। इसे वे ही सींच रहे हैं। इसे फसल माना जाए तो इस पर खेती के लिए ज़रूरी सभी उपादान अकेले प्रेम के ही बस का है। प्रेम को व्यंग्य किसान कहा जाना चाहिए। अगर ऐसा न होता तो अब तक इसकी बराबरी में व्यंग्य यात्रा की तर्ज पर व्यंग्यमात्रा, व्यंग्यबात, व्यंग्यपात्र, व्यंग्यघात सरीखी अनेक पत्रिकाएं आरंभ हो चुकी होतीं। इससे अगर आर्थिक लाभ हो रहा होता तो फिर यह चमत्कार व्यंग्य संसार में अवश्य होता। आप व्यंग्य से जुड़ी हुई पत्रिकाओं की भीड़ से अपने को घिरा हुआ पाते। पर अब भीड़ नही हैं पर जो यात्रा जारी है, वो नेक है। इसे आप कोरी तारीफ़ कतई मत समझिएगा, यह तारीख़ में दर्ज करने योग्य किस्सा है, किस्सा छोटा है पर इसकी ऊंचाई बहुत ऊंचे तक गई है। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

एक आत्मीय व्यक्तित्व

■ *राधेश्याम तिवारी*

इस दुनिया में बहुत कम ऐसे लोग हैं जो अपने नाम के अनुरूप हैं। व्यक्ति के नाम ही क्यों, वस्तुओं के नाम तक विरोधाभाषी हैं। दुनिया की इस उल्टी गति को देखकर कबीर को तो रोना तक आ गया था और तभी तो उन्होंने लिखा-

''चलती को गाड़ी कहे
दूध को कहे खोया,
रंगी को नारंगी कहे
देख कबीरा रोया।''

लेकिन प्रेमजी यानी डॉ. प्रेम जनमेजय के संबंध में ऐसा बिल्कुल नहीं है। जिस भी ज्योतिषी ने उनका नामकरण किया होगा वह निश्चय ही तरीफ़ के काबिल है। गुण-धर्म को ध्यान में रखकर ही उसने इनका प्रेम नाम रखा होगा। साहित्य का सत्य भी प्रेम ही है। वह प्रेम चाहे प्रकृति से हो या मनुष्य से। जिसके पास प्रेम तत्व का अभाव है, वह न अच्छा मनुष्य हो सकता और न लेखक ही। प्रेम की एक खासियत यह भी है कि यहां संकुचन नहीं होता। यह इतना विराट है कि पूरी कायनात भी इसमें समा जाए, तो भी इसमें प्रिय जनों के लिए जगह बची रहती है। जिसने 'प्रेम गली अति सांकरी' कहा है, उसने शायद प्रेम के इस विराट रूप का दर्शन नहीं किया होगा। खलील जिब्रान ने प्रेम के संबंध में लिखा है- प्रेम मृत्यु से अधिक बलवान है, मृत्यु जीवन से अधिक बलवान है। यह जानते हुए भी मनुष्य-मनुष्य के बीच कितनी संकुचित सीमा खींची गई है। प्रेमजी में यह संकुचन हमने कभी महसूस नहीं किया। शायद यही कारण है कि 1992 में दिल्ली आने के बाद से हम लोग जुड़ते चले गए। मुझे कई बार ऐसा लगता है कि अगर ऐसे आत्मीय जन मुझे नहीं मिले होते तो शायद मैं दिल्ली कब का छोड़ चुका होता। प्रेमजी मेरे संघर्ष के विश्वसनीय साक्षी हैं। सच कहूं तो कठिन समय में वे हमारे और करीब लगे। गो कि वह कठिन समय अभी गया नहीं है, लेकिन अब महसूस नहीं होता, क्योंकि उसे झेलने की आदत-सी पड़ गई। हालांकि मुझे याद नहीं कि डॉ.प्रेम जनमेजय से मेरी पहली मुलाकात कब और कहां हुई थी, लेकिन इतना ज़रूर याद है कि उनसे मिलवाने वाले मेरे अज़ीज़ ललित किशोर मंडोरा हैं, जो इन दिनों एनबीटी में अलख जगा रहे हैं। ललित से मेरा परिचय शायद गुरुवर डॉ. रामदरश मिश्र ने करवाया था। उसके बाद कड़ी से कड़ी जुड़ती चली गई। मुझे जहां तक याद है ललित तब अनुवाद का कोर्स कर रहे थे और यदा-कदा मुझसे मिलने झंडेवालान में स्थित पीपीएच में आया करते थे। उसी बिल्डिंग में एक बड़ा-सा ऑफस हुआ करता था, जहां सीपीआई के सभी बड़े नेता तो आते ही थे, मेरे मित्रगण भी आते थे। मैं नियमित रूप से वहां बैठता था। मेरे साथ श्री अनिल राजिमवाले भी होते थे। अनिलजी का जीवन आज भी पार्टी के लिए समर्पित है। वहां ललित जब आते थे, तो अपने परिचितों की चर्चा करते थे। उनमें उनकी पहली पसंद प्रेमजी ही थे। यहां यह बता दूं कि ललित में आज भी कोई परिवर्तन मैंने नहीं देखा। अभी तक उनमें वही खिलंदड़ापन मौजूद है और जब भी मिलते हैं तो पूरी गर्मजोशी से मिलते हैं।

प्रेमजी के पास संघर्ष करने वाले ऐसे युवाओं की एक जमात थी, जिसको वे पूरा प्रेम दिया करते थे और उनसे मैत्री भाव रखते थे। उनका यह भाव आज भी बना हुआ है। मुझे तो आज भी नहीं लगता कि वे 62 से अधिक के हो गए हैं। शायद जुड़ने की उनकी ललक ने ही उन्हें ऐसा बना दिया है कि वे उम्रखोर हो गए। यही कारण है कि प्रेमजी आज भी हम लोगों के करीब लगते हैं। जबकि इसी दिल्ली में मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है कि वे कुछ लिखने क्या लगे कि अपने को सितारों से जोड़कर अपनों से कटते चले गए और आज उनकी स्थिति ऐसी हो गई है कि अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए उन्हें कुत्ते पालने पड़ते हैं। कुछ लेखकों ने तो इतने खूंखार कुत्ते पाल रखे हैं कि उनकी दशा कोई देखने जाना भी चाहे, तो डर से जा नहीं पता। एक ऐसे ही लेखक को मैं जानता हूँ, जिनका बाद में कुत्ते ने भी साथ छोड़ दिया और स्वर्ग सिधार गया। अपने कुत्ते के निधन पर उन्होंने जो दर्दनाक कविता लिखी थी,

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

> “एक लेखक के रूप में भी वे मुझे उतने ही आत्मीय लगे। दरअसल व्यक्ति का जैसा जीवन होता है, उसका लेखन भी वैसा ही होता है। जहां लेखन और जीवन दोनों में साम्य नहीं है, समझना चाहिए कि वहां कुछ गड़बड़ी है। हालांकि बाकी चीज़ों की तरह लेखन के क्षेत्रों में भी अपवादों की कमी नहीं है। डॉ. प्रेम जनमेजय एक समर्पित व्यंग्य लेखक हैं।”

उस कविता के बारे में उनका आत्म विश्वास है कि वह ‘सरोज स्मृति’ के आगे की रचना है।

प्रेमजी ने कभी न तो लेखक होने का अभिनय किया और न ही गुरु गंभीर होने का। वे जब भी मिलते तो सबसे पहले बात परिवार से शुरू होती और अंत भी उसी से। मेरे घर में उनको न सिर्फ सभी जानते हैं, बल्कि परिवार का एक बड़ा सदस्य मानते हैं। उनसे जुड़ी मेरे पास इतनी बातें हैं कि उसे बयान करना अभी संभव नहीं। ऐसे आत्मीय जनों के होने में ही अपने होने का बोध होता है। यह जो आत्मीय भाव है यही हमारे भीतर की दुनिया को उजागर करता है। अगर हमारे भीतर इस तरह का प्रेम तत्व नहीं होगा तो हम किसी से जुड़ ही नहीं सकते। फिर वह जो जुड़ाव होगा वह आत्मीय नहीं हो सकता। इसी संबंध में भवभूति ने अपने एक श्लोक में लिखा है-

व्यतिषजति पदार्थनान्तरः कोऽपि हेतु–

नं खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।।

(कोई भीतरी कारण ही पदार्थों को परस्पर मिलाता है; बाहरी गुणों पर प्रीति आश्रित नहीं होती।) डॉ. प्रेम जनमेजय का यह भीतरी गुण ही है जो ये किसी को अपना बना लेते हैं।

जब भी उन्हें कोई अवसर मिलता है तो मुझे अपने साथ जोड़ने में उन्हें जो सुख मिलता है वह मेरे लिए भी कम प्रीतिकर नहीं है। प्रेमजी का याराना व्यवहार और किसी के लिए कुछ करने की उनकी इच्छा आज के समय में दुर्लभ है। प्रेमजी के घर पश्चिम विहार मैं अनेक बार गया हूँ। नितांत पारिवारिक आयोजनों में भी वे मुझे याद करते रहे। मुझे याद है करीब सात-आठ वर्ष पूर्व एक बार मैं उनके घर गया था। वहाँ एक बूढ़े सज्जन से उन्होंने मेरा परिचय करवाया कि ये हैं प्रख्यात व्यंग्यकार श्री रवीद्रनाथ त्यागी। त्यागीजी से मेरी वह पहली मुलाकात थी। बाद में फोन और पत्रों के माध्यम से त्यागी जी से संवाद होता रहा। जब भी बात हो तो प्रेमजी के प्रति उनका प्रेम साफ़-साफ़ झलकता था।

अपने निजी जीवन में डॉ. प्रेम जनमेजय को मैंने जितना आत्मीय पाया, एक लेखक के रूप में भी वे मुझे उतने ही आत्मीय लगे। दरअसल व्यक्ति का जैसा जीवन होता है, उसका लेखन भी वैसा ही होता है। जहां लेखन और जीवन दोनों में साम्य नहीं है, समझना चाहिए कि वहां कुछ गड़बड़ी है। हालांकि बाकी चीज़ों की तरह लेखन के क्षेत्रों में भी अपवादों की कमी नहीं है। डॉ. प्रेम जनमेजय एक समर्पित व्यंग्य लेखक हैं। इस विधा के प्रति लंबे समय से समर्पित भाव से लेखन और इसके विकास में अपना उल्लेखनीय योगदान करते आ रहे हैं। ‘व्यंग्य यात्रा’ का संपादन इनके मिशन का एक सुखद उदाहरण है। प्रेम जनमेजय सही मायने में मध्यमवर्गीय जीवन स्थितियों के व्यंग्यकार हैं। इनके यहाँ व्यंग्य दूर से लाई हुई कौड़ी जैसी नहीं है, बल्कि ये अपने आस-पास के परिवेश से ही व्यंग्य की तलाश कर लेते हैं। यहाँ यह बता दूं कि भारत का मध्य वर्ग पश्चिम के मध्य वर्ग जैसा नहीं है। यहाँ के मध्य वर्ग में पांव-पैदल चलने वाला एक साधारण नौकरी पेशा आदमी भी आता है, जिसकी अगर एक महीने की तनख्वाह रोक दी जाए, तो दूसरे महीने से उसकी भूखो मरने की नौबत आ जाएगी, जबकि पश्चिमी देशों में कार से चलने वाला व्यक्ति भी मध्य वर्ग में ही आता है। सच तो यह है कि भारत के मध्य वर्ग का जीवन इतना जटिल है कि उसे समझना बेहद मुश्किल है। उसकी स्थिति यशपाल की ‘पर्दा’ कहानी जैसी है। किसे पता है कि पर्दे के भीतर कौन कैसा जीवन जी रहा है। मध्य वर्ग के जीवन की इन्हीं विसंगतियों को उजागर करते हुए तथाकथित बड़े लोगों को प्रेम जनमेजय अपने व्यंग्य का विषय बनाते हैं। लेकिन खास बात यह है कि निम्न और मध्य वर्ग के प्रति जहां उनके व्यंग्यों में सहानुभूति है, वहीं शातिर उच्च वर्ग के प्रति अनुदारता। इससे उनके लेखकीय दृष्टि का अंदाजा तो लगता ही है, लेखकीय दायित्व बोध का भी अंदाजा लगता है। इसी दायित्व बोध का निर्वाह प्रेम जी अपने संबंधों में भी करते हैं। अपने इस वरिष्ठ साथी के सफल रचनात्मक जीवन की कामना करता हूं। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय विशेषांक

उनके व्यंग्य परदुःखकातरता के उदात्त रूप हैं

■ *डॉ. अजय नावरिया*

अभी लगभग दो-तीन साल पहले तक मेरा प्रेम जनमेजय जी से कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं था, परन्तु आज जिन दो चार पाँच शुभचिंतकों को अपने जीवन में आशीर्वाद की वर्षा करते ऋषि गुरुजन के रूप में देखता हूँ, वे उनमें से एकजैन।

हालाँकि मुझे उनके लिए 'प्रेम जनमेजय जी' लिखने में संकोच हो रहा है, परन्तु यहाँ मैंने इसी संबोधन का चुनाव किया है। यहाँ मैं एक और उलझन खोलकर रखूं तो वह यह कि मुझे उनका उपनाम अर्थात 'जनमेजय जी'... लिखने... बोलने... में काफी कष्ट होता है जबकि उनका ढाई आखर का मूल नाम बहुत ही प्रेमपूर्ण है।

यूँ तो मैं बहुत पहले से उनकी साहित्यिक यात्रा के बारे में सुनता-पढ़ता रहा हूँ और खासतौर से उनकी 'व्यंग्य यात्रा' या कहूँ कि व्यंग्य की यात्रा से अच्छे से परिचित रहा हूँ परन्तु मेरी स्मृति में जो उनके साथ हुई पहली मुलाकात अंकित है, वह ढाई- तीन साल पुरानी है।

अक्षरम नामक संस्था प्रत्येक वर्ष एक साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन करती है। हो सकता है कि एक से अधिक करती हो परन्तु मेरी जानकारी में यही एक है। यह 2008 का साल था और शायद नवम्बर का महीना था। इण्डिया इंटरनेशनल सेंटर के कांफ्रेंस रूम में यह कार्यक्रम था, जिसके संचालन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व प्रेम जनमेजय पर है।

यहीं हमारा पहला आत्मीय संवाद हुआ था।

हुआ यह कि जब उन्होंने मुझे व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया तो मैंने अनामिका जी समेत अन्य वक्ताओं के नाम आदरपूर्वक लिए। इन्हीं में, मैंने उन्हें 'प्रेम जनमेजय जी' के स्थान पर गलती से 'प्रेम जनविजय जी' कह दिया। यह असावधानी से हुआ था तत्कालीन त्वरा के चलते ...वहाँ मेरे नाम की पट्टी पर सिर्फ 'अजय नावरिया' लिखा गया था, बाकी के सभी वक्ताओं के आगे 'डॉ.' लिखा हुआ था। मैंने अपने वक्तव्य की शुरुआत इसी 'आयोजकीय चूक' से की थी। वक्तव्य के शुरुआती हिस्से का सार यह कि आखिर 'अजय नावरिया' भी 'डाक्टरेट' की डिग्री प्राप्त हैं, तब उन्हें इतने हल्के में क्यों लिया गया।

मेरे वक्तव्य के अंत में, प्रेम जनमेजय ने बहुत ही सम्मान और स्नेह से इस 'आयोजकीय भूल' को अपने ऊपर धारण किया और खेद भी प्रकट किया। साथ ही उन्होंने मुझे यह भी याद दिलाया कि 'आपने भी मेरा नाम गलत संबोधित किया था। मैं प्रेम जनमेजय हूँ, जनविजय नहीं। उनके स्वभाव के प्रकट होने की यह प्रथम रश्मि थी। मुझे अहसास हुआ कि वे मृदुभाषी, मधुरभाषी और क्षमाशील हैं।

इस घटना के बाद बात फिर आयी-गयी हो गई। हम लोग फिर आपस में सालभर तक मिल न सके। कहना चाहिए कि ऐसा कोई अवसर ही नहीं बन सका।

अवसर बना सन् 2009 के दिसंबर में। निमित बने सुपरिचित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा जी। एक दोपहर हमें मिलना था। उन्होंने यह भी बताया कि शाम को 'प्रेम जी' के घर जाना है, साथ ही मुझे भी चलने को निमंत्रित किया। मैंने शर्मा जी से कहा कि मुझे ख़ुशी होगी, उनसे मिलकर, परन्तु आप पहले फोन करके मेरे सम्बन्ध में उनसे पूछ लें। इस तरह के 'शामी मौकों' पर मैं ज़्यादा सतर्क और सावधान रहता हूँ। किसी को भी यह अनाधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिए। आखिर हमें 'पारस्परिक निजता' का आदर करना आना ही चाहिए।

तेजेन्द्र जी लन्दन में रहते हैं और इसे बखूबी समझते हैं। वे एक संवेदनशील कथाकार हैं तो उन्होंने मेरे मन को भी समझा और 'प्रेमजी' को फोन करके पूछ लिया। शाम को तेजेन्द्र जी के साथ हम लोग पश्चिम विहार के साक्षरा अपार्टमेन्ट में पहुँचें।

इस शाम, मैंने दूसरे 'प्रेम जनमेजय' को पाया। वे एक उदार और अतिथि प्रेमी सदगृहस्थ के रूप में थे। उनकी पत्नी भी, जो स्वयं भी उच्चशिक्षिता और अध्यापक हैं, बढ़-चढ़ कर एक कर्तव्य निष्ठ और समर्पित मेज़बान की तरह उन्हें सहयोग कर रही थीं। कुल मिलाकर, एक-दूसरे के पूरक के रूप में उनकी भाव भंगिमा (बॉडी लैंग्वेज तथा फेस एक्सप्रेशन) है।

यह एक प्रेमपूरित सदगृहस्थ का परिवार था, जिसके आत्मीय वृत में हम सब बंध गए थे। ऐसा

प्रेम जनमेजय विशेषांक

आभास बहुत पहले मुझे कमलेश्वर जी के घर में हुआ था। मैं जे.एन.यू. में पढ़ता था और कमलेश्वर जी की कहानियों पर अपना शोध-प्रबंध लिख रहा था। इस सिलसिले में मुझे कई बार उनके घर, इरोज़ गार्डन सूरजकुंड जाना पड़ता था। यह अनुभूति और वह अनुभूति लगभग एक जैसी है।

यह सब लिखते हुए मुझे सुविख्यात कहानीकार और नया ज्ञानोदय के यशस्वी संपादक रविन्द्र कालिया जी का अगस्त का सम्पादकीय याद आ रहा है। सम्पादकीय उन्होंने आदरणीय राजेन्द्र यादव जी और हंस के साहित्यिक योगदान को लेकर लिखा है। हंस पत्रिका के रजत जयंती अंक में भी उनका यह लेख प्रकाशित हुआ था।

वे लिखते हैं- अपनी सुविधा के लिए राजेन्द्र जी ने कुछ निष्कर्ष निकाल रखे हैं, जैसे कि परम आज्ञाकारी पुत्र ज़िम्मेदार पिता या विनम्र पति बड़ा रचनाकार नहीं हो सकता 'लब्बोलुआब' (सारांश) यह कि एक सदगृहस्थ अच्छा रचनाकार नहीं हो सकता।

प्रेम जनमेजय की साहित्यिक सक्रियता इस 'निष्कर्ष' या धरना को खंडित करने के लिए, मैं समझता हूँ, पर्याप्त से नीचे नहीं है।

उन्होंने अपने परिवार के एक-एक रेगे पर व्यक्तिगत ध्यान दिया है। पत्नी, उसी पति के साथ कंधे से कन्धा जोड़ती है, जिससे वह उचित सम्मान, प्रोत्साहन और प्रेम पाती है। इसी... में पत्नी, पति की अर्द्धांगिनी बनना स्वीकार करती है।

उस शाम मेरी मुलाकात प्रताप सहगल जी से भी हुई। काफी देर बात-चीत होती रही। मैंने प्रेमजी का स्टडी रूम देखना चाहा और उन्होंने ख़ुशी-खुशी उसे दिखाया। वह किताबों से लबलबा भरा हुआ था। लबलबा होने के बावजूद वहाँ एक व्यवस्था थी। एक आंतरिक लय ही होती है जो किसी के व्यक्तित्व का परिचय देती है।

प्रेम जनमेजय ने अपने भीतर इन पुस्तकों के सार को गहकर थोथा उड़ा दिया है और इसीलिए वे इतने सहज और निरहंकारी हैं कि लबलबा होने के बावजूद कतरा भर भी छलकते नहीं हैं।

इसी शाम इनके घर बातचीत के दौर में यह खोज भी हुई कि वे उसी कॉलेज में पढ़ाते हैं, जिससे मैं पढ़कर निकला हूँ। मुझे 'कॉलेज ऑफ वोकेशेशल स्टडीस' (दिल्ली विश्वविद्यालय) के वे सारे अध्यापक याद आ गए, जिनसे हम पढ़ते थे और जिनमें से कुछ को हम बहुत प्रेम करते थे और एकाध ऐसे भी थे जिन्हें हम परेशान भी करते हैं।

संयोग यह रहा कि उन्हीं तीन वर्षों में जनमेजय जी विदेश रहे। मेरा उनसे कोई परिचय महाविद्यालयी दिनों में नहीं बन सका।

यूँ मैं उनका विधिवत विद्यार्थी नहीं बन सका, परन्तु वे हैं मेरे 'फ्रेंड-गाईड-फिलोसफ़र' ही। उन्होंने इस प्रेम से मुझे स्वीकार किया कि मुझे उस पल से आज तक कभी परायापन नहीं लगा।

इस असार संसार में कोई सार या 'सीक्रेट' मुझे जब शेयर करना होता है। तब जिन आत्मीय जनों की ओर जाता हूँ, उनमें एक प्रेम जनमेजय 'सर' भी हैं, उस शाम के बाद एक आत्मीय सदस्य की और उपलब्धि हुई।

यह तेजेंद्र जी का सहयोग है। इस सहयोग का आभार मैंने कई बार तेजेन्द्र जी को ज्ञापित किया है।

यह शाम इस अर्थ में भी हसीन थी कि बाहर का मौसम बहुत रोमानी था। जब हम बाहर निकले तो बाहर इतना कोहरा था कि हाथ भर की दूरी के बाद कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। प्रताप सहगल जी ने अपनी कार का हीटर (एयरकंडिशनर) चलाया, तब कार के शीशों से दस मिनट बाद धुँध हटी। मुझे और अजित राय को उन्होंने इतनी परेशानी के बावजूद मेट्रो स्टेशन तक छोड़ा। मुझे उनकी सदाशयता बहुत अच्छी लगी।

फिर तो कई आयोजनों में हम साथ- साथ रहे। यमुनानगर के डी.ए.वी. गर्ल्स कॉलेज में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय प्रवासी कथा सम्मेलन के वे तीन दिन तो लगभग अविस्मरणीय हैं।

आत्मीय ऊष्मा से भरे एक अग्रज की तरह उनका वरदहस्त हर वक्त रहा, खासतौर से जब मित्रों के भेष में विरोधियों का हमला हुआ, तब वे अडिग हिमालय के तरह बीच में खड़े रहे। उन 'मित्रों' के सब प्रयत्न निष्फल चले गए। ऐसे में, जब तेजेन्द्र शर्मा जी जैसे प्रशांत महानगर में भी हिलौर उठ गई (चाहे बाद में उन्होंने अपने व्यवहार के लिए क्षमा मांग ली) परन्तु तब भी प्रेम जनमेजय ने मुझे अकेला नहीं पड़ने दिया।

एक पत्रिका का एक विशेषांक उन पर केन्द्रित था, जिसमें उनका आत्मकथ्य भी है। इस आत्मकथ्य में विनम्रता से स्वीकार किया है कि 'मैं एक सांसारिक जीव हूँ और लेखकीय अलौकिकता से पल्ला झाड़ लिया। वे सम्बन्धों के निर्वाह के सम्बन्ध में वाकई सांसारिक जीव हैं। यह आत्मकथ्य, अन्य कई दृष्टियों से भी महत्वपूर्ण है।

हम एक ऐसे असहिष्णु समय में जी रहे है, जहाँ तमाम आधुनिकता और प्रगितिशीलता के वावजूद दीवारें और काँटों की लम्बी बाड़े हैं। जाति, धर्म आधारित दूरियां हैं। यह आत्मकथ्य हमें एक प्रकाशस्तम्भ की तरह मार्ग बताता है।

अब मैं एक ऐसे विरोधाभास को रेखांकित करने जा रहा हूँ जो सामान्यत: दिखाई नहीं देता।

मैं व्यक्तिगत रूप से हरिशंकर परसाई, शरद जोशी या श्रीलाल शुक्ल से कभी परिचित नहीं रहा, इसलिए उनके मूल स्वभाव को लेकर कोई टिप्पणी करने की स्थिति में नहीं हूँ। परन्तु प्रेम जनमेजय जी के सम्बन्ध में अपनी अत्यल्प बुद्धि के बावजूद कुछ जान गया हूँ। यह 'ज्ञान' मुझे यह कहने को प्रेरित करता है।

प्रेम जनमेजय, सिर्फ सांसारिक जीव ही नहीं है बल्कि एक उदार, क्षमाशील, संवेदनशील और परदु:खकातर मनुष्य भी है। विरोधाभास यही है और यही है कि परदु:खकातर क्षमाशील मनुष्य, धनाधन चोट करने वाला व्यंग्यकार कैसे हो सकता है! शायद विरोधाभास से अधिक उपभुक्त शब्द 'आश्चर्य' हो सकता है।

हो यह भी सकता है कि जब दुनिया के प्रपंचों का वाष्प, प्रेम जनमेजय के भीतर बहुत घनीभूत हो जाता होगा, तब वह व्यंग्य वर्षा बनकर घनन-घनन घनघोर रूप से बरस पड़ता होगा। कहा यह भी जा सकता है कि व्यंग्य लेखन परदु:खकातरता का

प्रेम जनमेजय विशेषांक

उदात्त रूप है, जहाँ कोई एक व्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं रहता। व्यक्ति नगण्य हो जाता है और प्रवृत्ति प्रमुख। व्यंग्य सामान्यत: व्यक्ति के बहाने होता है, परन्तु होता मनुष्य की प्रवृत्ति और उसके सांस्थानिक रूप- 'व्यवस्था'- पर ही है।

प्रेम जनमेजय का व्यंग्य लेखन परदु:खकातरता के उदात्त रूप का अन्यतम उदहारण है। वहाँ 'मनसाराम' की तरह 'राधेलाल' उनका 'ट्रेडमार्क' है, जो यत्र-तत्र-सर्वत्र है। उनके व्यंग्य की परिधि में सामान्यजन पीड़ा मल जी से लेकर अभिजन मुलायम-मनमोहन-मायावती तक शामिल हैं।

जनमेजय का व्यंग्य किसी राजनैतिक दल विशेष से नहीं बल्कि राजनैतिक सोच से जुड़ा है। वे आडवाणी से लेकर मुलायम और मनमोहन तक पर प्रहार करते हैं। उनकी दृष्टि में सिर्फ वह आदमी है जो इस समाज के अंतिम पायदान पर खड़ा है और उसके पुकारने की आवाज़ भी सत्ता के कानों तक नहीं पहुँचती है।

प्रेम जनमेजय इसी अन्तिम व्यक्ति के लिए न्याय की आवाज़ अपने व्यंग्य लेखन में उठाते हैं।

उनके लिए व्यंग्य लेखन, एक रचनाकार का विधा-चुनाव भर नहीं है बल्कि सार्थकता और पूर्णत: का प्रश्न है। वे लिखते हैं- 'मेरे लिए व्यंग्य और व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं वाली स्थिति रह गई थी। मेरे चिंतन की सारी पगडंडिया व्यंग्य के मुख्य मार्ग पर ही जाकर मिल रही थीं।' (व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथलोक प्रकाशन, पृ. 51)

रचनाकार के साथ एक बड़ी समस्या अपने अनुकूल विधा का चुनाव भी होता है। कभी-कभी बहुत से रचनाकार अपने इसी चुनाव में भटककर रह जाते हैं। वे कभी कहानीकार, कभी कवि और आलोचक बनते रहते हैं।

व्यंग्य लेखन का एक हमशक्ल हास्य लेखन होता है। व्यंग्य लेखन ही असल चीज़ है। हास्य लेखन उसका 'डुप्लीकेट' ही है... इसलिए अक्सर फूहड़ और अस्तरीय होता है। प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य के नाम हास्य लेखन कभी नहीं किया; यह प्रीतिकर है। इस सम्बन्ध में मंच के प्रति भी अन्य व्यंग्यकारों (हास्यकारों) की तरह उनमें कभी लोलुपता नहीं दिखी। यह ठीक ही है कि 'मंच उनके लिए अछूत नहीं रहा' परन्तु 'परमश्रद्धेय ब्राह्मण' भी नहीं रहा, जिनके पाँवों तले ही बैकुंठ मिलेगा। उन्होंने मंच को उपयोग लोकत्रांतिक मूल्यों को स्थापित करने और सामंती सोच को समूल नष्ट करने के लिए भी जब-तब किया। उनको डर रहता है कि 'हास्य मेरी रचना को हल्का कर देगा।'

उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'लोकप्रियता होना कोई गुनाह नहीं है, गुनाह तो लोकप्रियता के मोह में साहित्यिक मूल्यों से किनारा करना है। सवाल ये होना चाहिए कि क्या वह लोकप्रिय मानवीय समाज का शुभचिंतक है ? (पुस्तक वही पृ. 11)

सच्चाई यही है कि उन्होंने अपने चिन्तन और लेखन की सारी ऊर्जा और शक्ति इसी 'मानवीय समाज' की शुभ चिन्तन में नियोजित की। वे भलीभांति विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि इंसानियत से बड़ा कोई दर्शन, जाति या मज़हब नहीं, यह सब कटघरे, स्वार्थों ने बनाये हैं। इन्हीं स्वार्थों पर वे लगातार चोट करते रहे हैं।

यह स्वार्थ ही है जो अपने वृहद रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक भ्रष्टाचार का रूप लेता है। प्रेम जी का व्यंग्य लेखन इसी स्वार्थ पर कुठाराघात करता रहा है।

संवेदनशीलता, जो किसी भी उदार और परदु:खकातर मनुष्य का गुण होता है, उसकी नब्ज़ टटोलते हुए वे लिखते हैं- 'कुछ लोग बहुत संवेदनशील होते हैं, सहने की बात दूर, इनसे किसी का तनिक सा कष्ट भी नहीं देखा जाता है। संसार में कोई पीड़ा व्यापे, इनकी संवेदना जाग जाती है।' (कौन कुटिल खल कामी, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 69)

इस व्यंग्य में इस संवेदनशीलता को धारण करने वाले 'पीड़ामल जी' हैं, जो 'संवेदनशीलता के व्यापर' के सत्य पर ही अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रखते है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध बहुत ही मज़बूत, परन्तु नाज़ुक रेगों से बना होता है। स्त्री की पक्षधरता में उतरते हुए उनका व्यंग्य कार अपनी उत्कृष्ट भूमिका में आता है 'पत्नी को धोखा देना, पति की सबसे बड़ी मर्दानगी होती है।' (पृ. 11 पुस्तक वही)

तत्कालीन मुद्दों से लेकर सार्वकालिक समस्याओं तक पर उनकी गहरी दृष्टि है। उनके व्यंग्य लेखन का विस्तार बहुत अधिक है।

एक और विशेषता उनके व्यंग्य लेखन में प्रमुखता से दिखाई देती है और वह है तुलनाएँ ; काव्य की भाषा में कहा जाए तो उपमाएँ। ये उपमाएँ इतनी अचूक और मारक हैं कि अर्थ सम्प्रेषण शत-प्रतिशत होता है। दो एक उदहारण देखिए :-

(क) दो किलो प्याज के सामने बर्फी, रसगुल्ला, कलाकंद और ड्राई फ्रूट ऐसे लग रहे थे जैसे आजकल अमेरिका के सामने रूस लग रहा है। (पृ. 89)

(ख) मैं उनके सामने नतमस्तक था और वे मेरे नतमस्तक को ज्ञान से ऐसे भर रहे थे जैसे अमेरिका नतमस्तक देशों को 'प्रजातंत्र' के ज्ञान से भरता है। (पृ. 21)

(ग) इधर ज्योतिषी भैया समाजवादी व्यवस्था से गए, उधर मेरी पत्नी ने धुली अर्थव्यवस्था सा घर में प्रवेश किया है। (पृ. 49)

(घ) अंग्रेज़ी के माध्यम से हिन्दी पढ़ाने के सुख को पहली बार भ्रष्टाचार की कमाई का कुछ पाने वाली सुगृहिणी समझ सकती है।

प्रेम जनमेजय ने ये मोती समाज में गहरे डूब कर ही प्राप्त किये हैं। इसीलिए इन मोतियों की अब सच्ची और अछूती है।

प्रेम जी जानने के लिए हिन्दी के प्रथम व्यंग्यकार कबीर का ही हाथ पकड़ा जा सकता है और वह भी बहुत सहज ढंग में कि- 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होये' - मुझे लगता है कि इससे अधिक कुछ भी पढ़ना निष्फल और असार्थक ही होगा। ◆◆◆

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

व्यंग्य के फ्रेम में 'प्रजातंत्र'

■ *डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ*

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल के साथ संवाद करते हुए प्रेम जनमेजय ने उस 'षड्यंत्रकारी दौर' का उल्लेख किया है, जिससे गुज़रते हुए आज का लेखक लिख रहा है। उनके अनुसार 'एक भयानक षड्यंत्र चल रहा है और पूंजीवाद हमारा मसीहा बनने के लिए अनेक प्रकार के आयोजन कर रहे हैं।' श्री जनमेजय इन असंगतियों से टकराते हुए जनसाधारण के लिए प्रतिश्रुत कही जानेवाली व्यवस्था के अंतर्विरोधों को अपने व्यंग्य- साहित्य में विशेषत: उद्घाटित करते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि 'प्रजातंत्र' उनकी व्यंग्य रचनाओं में एक प्रमुख चिंता के रूप में उपस्थित है। चुनाव, संसद, संविधान, दलबदल, सत्ता लिप्सा आदि से सब (उनकी व्यंग्यात्मक टिप्पणियां उनके परिवेश-सजग और संवेदनशील होने की गवाही देती हैं।

'कन्हैया राजा होली खेले' में आया एक वाक्य बहुत व्यंजनात्मक है। इस राजनीति का जन्म ही शायद मनुष्य को अस्वाभाविक बनाने के लिए हुआ है। यहां 'राजनीति' का मात्र तिरस्कार नहीं है अपितु सत्ता और प्रभुत्व के लिए षड्यंत्रकारी कुटिल राजनीति की ओर अंगुलि-निर्देश है। इसी के चलते एक जनहितकारी व्यवस्था- प्रजातांत्रिक व्यवस्था भी जनविरोधी हो जाती है। पूरी भारतीय राजनीति की व्याख्या प्रेम जनमेजय ने दो शब्द-प्रतीकों 'नाई' और 'यजमान' के द्वारा की है। जनसेवक नाई है और प्रजा यजमान। मूंडना नाई का धर्म है, मुंडना प्रजा की नियति। हमारे यहां प्रजातंत्र का एक ही मौसम होता है- चुनाव, प्रजातंत्र को जुगाड़-तंत्र कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा, क्या पांच साल बाद जाग कर पुन: सो जाना ही प्रजातंत्र है- आदि टिप्पणियां बहस-तलब और विचारोत्तेजक हैं और कथित आज़ादी और प्रजातंत्र को लेकर अनेक सवाल उठाती हैं। व्यंग्यकार ने बहुत क्षोभपूर्वक बार-बार संकेत किया है कि यह आज़ादी वह आज़ादी नहीं है, जिसके लिए शहीदों ने कुर्बानी दी थी और यह प्रजातंत्र उस प्रजातंत्र की अपेक्षाओं को तनिक भी पूरा नहीं करता, जो हमारे देश के कर्णधारों और संविधान-निर्माताओं को अभीष्ट था।

व्यंग्यकार ने दर्शाया है कि इस प्रजातंत्र में सबसे बुरी स्थिति 'प्रजा' की है। चुनाव के समय प्रजा का महत्व कुछ दिनों के लिए अवश्य बढ़ जाता है। 'आग लगन्ने झोपड़ा' में इस विडम्बना को इन शब्दों में कहा गया है- जब-जब देश में धर्म की हानि होती है और देश त्राहि-त्राहि करता है... झोपड़ों में उपस्थित देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उन्हें मदिरा-स्नान कराया जाता है, भोग लगाया जाता है और कहीं-कहीं उनकी झांकियां भी निकाली जाती हैं। चुनाव समाप्त होते ही देवताओं का देवत्व समाप्त हो जाता है और देश सेवक अपनी-अपनी राह होते हैं। एयरकंडीशंड कमरों में झोपड़ों के दर्द का हिसाब करते हैं।

चुनाव के समय प्रजा का महत्व कुछ दिनों के लिए अवश्य बढ़ जाता है। 'आग लगन्ने झोपड़ा' में इस विडम्बना को इन शब्दों में कहा गया है- जब-जब देश में धर्म की हानि होती है और देश त्राहि-त्राहि करता है... झोपड़ों में उपस्थित देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उन्हें मदिरा-स्नान कराया जाता है, भोग लगाया जाता है और कहीं-कहीं उनकी झांकियां भी निकाली जाती हैं।

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

'मंत्री क्षेत्रेः कुरुक्षेत्रे' में मंत्री को दुमुंहा सांप कहा गया है-... मंत्री का व्यक्तित्व दो-मुंहे सांप की भांति जाना जाता है वह एक मुंह से चारण बनकर पूंजीपतियों के प्रशंसा-गीत गाता है, लाइसेंस दिलाता है और दूसरे मुंह से समाजवाद लाने के वायदे करता है। ऐसे सांपों के हाथों में देश और जनता का भविष्य है और जाहिर है, वह कितना सुरक्षित होगा?

प्रजा के वोट का महत्व है। प्रजा का सम्मान सरकारें गिराता और बनाता है। लेकिन व्यंग्यकार इस प्रकार के परिवर्तन को 'भ्रम' करार देता है। पांच वर्ष के बाद जनता को लगता है कि उसने जनविरोधी सरकार से बदला ले लिया, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होती है। 'प्रभु अवतार लें' में 'प्रभु' भ्रम का निवारण करते हैं। जनता बदला लेने का भ्रम पालती है। ये सभी जनसेवक तो मेरे ही रूप हैं, जिसे भी चुनोगे, वह जन-सेवक ही तो होगा। एक सच्चा जनसेवक वही करेगा जो उसे करना चाहिए। हम सोचते हैं सब बदल गया, पर बदलता कुछ नहीं है। जाहिर है, जनता को नागनाथ के विकल्प में सांपनाथ को ही चुनना होता है। इसीलिए प्रेम जनमेजय को भारतीय मतदाता 'निरीह' लगता है। निरीह मतदाता इस भ्रम में जीता है कि वह प्रजातंत्र का स्तंभ है, उसे वरण की स्वतंत्रता है, जैसे टिटहरी को भ्रम होता है कि उसने आकाश थामा हुआ है, वैसे ही उसे भ्रम होता है कि उसने प्रजातंत्र थामा हुआ है। वह यह सोचकर खुश हो लेता है कि उसके एक कागजी हथियार से सरकार चुनी गयी है और उसने चुनी है। वह यह नहीं जानता है कि भेड़ किसी भी भेड़िए का चुनाव करे, जान तो उसकी ही जाएगी।

हमारे नापिताचार्य, सोकर पाने का सुख, आत्मा महाठगिनी हम जानी, मंत्री क्षेत्रेः कुरुक्षेत्रे' आदि अनेक रचनाओं में इन भेड़ियों का चरित्र अनावृत्त हुआ है। वे पूरे देश को लूट रहे हैं। मनुष्यता से उनका दूर का भी नाता नहीं है। खास मौकों पर उनकी आत्मा जाग उठती है। आत्मा की आवाज़ पर अपने को बेचने के लिए उद्यत एक जनसेवक का खुल्लमखुल्ला बयान है हमारी आत्मा बिल्कुल साफ है, हमें अगले चुनाव के लिए एक-दो करोड़ मिल जाएँ, अपनी पार्टी से कुछ कम भी ले लेवेंगे। ऐसे ही लोग सारे इंसानों के बराबर होने की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। 'चारा और बेचारा' में इन्हें सांप के रूप में देखा गया है। एक समय था जब सांप आस्तिनों में पला करते थे। जब आम जनता को इसकी पहचान हो गयी तो उन्होंने संसद के गलियारों में पलना शुरू कर दिया। आजकल सांप अपने बिलों में ताले लगाकर संसद के एयरकंडीशंड उपवन में मुक्तभाव से सांपिनों के साथ विचरण करते हैं।

'मंत्री क्षेत्रेः कुरुक्षेत्रे' में मंत्री को दुमुंहा सांप कहा गया है-... मंत्री का व्यक्तित्व दो-मुंहे सांप की भांति जाना जाता है वह एक मुंह से चारण बनकर पूंजीपतियों के प्रशंसा-गीत गाता है, लाइसेंस दिलाता है और दूसरे मुंह से समाजवाद लाने के वायदे करता है। ऐसे सांपों के हाथों में देश और जनता का भविष्य है और जाहिर है, वह कितना सुरक्षित होगा?

श्री जनमेजय की रचनाओं के परिचित चरित्र राधेलाल 'माथे की बिंदी' में उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो देशसेवा का मेवा निरंतर खा रहा है, देश भले ही गरीबी की रेखा के नीचे धंसा जा रहा है। व्यंग्यकार के अनुसार 'सही मायनों में तो देश उसी के लिए स्वतंत्र हुआ है। उसके पास हर तरह की आज़ादी है। अनेक लोगों की आज़ादी तो उसके पास गिरवी पड़ी है। ऐसे देशसेवकों को जनता को बरगलाने और सब्ज़बाग दिखाने में महारत हासिल है। इनके पास रंगीन चश्मे हैं, जिनसे वे अपने इंद्रधनुष का जादू, भूखे और अभावग्रस्तों की आंखों में झिलमिलाते रहते हैं। उनकी दृष्टि में देश की गरीबी की चर्चा करने वाले लोग देश के दुश्मन हैं।

प्रेम जनमेजय का व्यंग्य कहीं हथौड़ा बनकर इन बहुरूपियों पर टूटा है तो कहीं आलपिन की तीक्ष्ण चुभन का अहसास होता है। महत्वपूर्ण यह है कि हर स्थिति में उनकी दृष्टि सकारात्मक है, उसमें अवमूल्यों असंगतियों के प्रतिवाद का संकल्प है। केवल चुटकी लेने या मनोविनोद के लिए वे शासक, सत्ता, प्रजा, चुनाव आदि मुद्दों को नहीं उठाते हैं। उनकी कोशिश है कि 'सूरत' भी बदलनी चाहिए इसलिए 'प्रजातंत्र' की नियति के सम्बन्ध में उनका स्पष्ट आह्वान है। आज आवश्यकता है जनता के जागने की, जो अपने सहनशीलता की चादर से मुंह ढंके हुए हैं। 'नए बजट प्रस्ताव' में व्यंग्यकार ने जो सुझाव दिए हैं, वे हमारे देश, समाज और कुल मिलाकर 'प्रजातंत्र' के लिए कठिन चुनौतियों के व्यंजक हैं। हमारी उदारनीति है और दलबदल को परोक्ष में किस तरह वैध मान लिया गया है- ये सभी उदाहरण बेधक हैं और जनता के जागने की जरूरत को शिद्दत से रेखांकित करते हैं। प्रेम जनमेजय की व्यंग्य रचनाएं उनको उन दिशाहीन व्यंग्य-लेखकों की जमात से अलगाती हैं, जो एकाध अखबारी कालम हथियाकर स्वयं को व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए लालायित दिखायी देते हैं। ◆◆◆

व्यंग्य

अपने लक्ष्य से भटक रहा है...

प्रेम जनमेजय से लालित्य ललित की विशेष बातचीत

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

'सीता अपहरण केस' नाटक इन दिनों फिर चर्चा में है। आप इसे कैसे लेते हैं?

'सीता अपहरण केस' धीरे-धीरे अपनी गति पकड़ रहा है। सबसे पहले इसका लघु रूप मेरे कॉलेज में मेरे सहयोगी अध्यापकों ने मंचित किया। बहुत ही हिट गया। इसके बाद सुरेश कांत ने कानपुर में इसका मंचन किया। पिछले दिनों हैदराबाद की संस्था 'सूत्रधार' ने विनय वर्मा के निर्देशन में इसका व्यावसायिक शो किया, जो बहुत ही हिट गया। उससे प्रेरित होकर अगस्त में दो और शो हैदराबाद में किए। इसके पश्चात् सूत्रधार इसके अहमदाबाद में दो शो और बैंगलूरु में चार शो कर चुका है। भोपाल में युवा निर्देशक तरुण पांडेय के निर्देशन में भारत भवन आदि स्थलों पर इसके शो हो चुके हैं। लेखक अपने पात्रों को जब कागजों से निकलकर मंच पर जीवित होते देखता है तो उसे अच्छा ही लगता है। नाट्य लेखन मेरी रुचि है और इसी से वशीभूत मैंने अनेक रेडियो नाटक भी लिखे।

आपने कौन-कौन से रेडियो नाटक लिखे हैं?

मेरे युवा लेखकीय व्यक्तित्व का आरंभिक निर्माण करने में रेडियो नाटकों का महत्वपूर्ण योगदान है। बात संभवतः 1969 की है, उन दिनों भारत सरकार ने युवाओं के लिए 'युववाणी' कार्यक्रम आरंभ किया था। इस कार्यक्रम की प्रोड्यूसर कमला सांघी थी। उन्हीं दिनों कुमुद नागर ने दिल्ली आकाशवाणी में पदभार संभाला। वो युवाओं से नए रेडियो नाटक लिखवाना चाहते थे। सौभाग्य से मेरा भी उनसे परिचय हुआ। मैंने पहला रेडियो नाटक 'दीवारें' लिखा जिसका निर्देशन कुमुद नागर ने किया और जिसमें मनोज भटनागर ने नायक की भूमिका निभाई थी। इसके बाद 'हिंदुस्तानी होने का दुःख', 'पेन' आदि रेडियो नाटक लिखे। इसके बाद 'धर्मयुग' पर मेरी निरंतर प्रकाशित होती व्यंग्य रचनाओं ने मुझे व्यंग्य लेखन पर केंद्रित कर दिया। बरसों बाद सोमदत्त शर्मा नेशनल चैनल में प्रोड्यूसर के रूप में आए। वे मेरे रेडियो नाटक लेखक के रूप से परिचित थे। उनके कहने पर मैंने मृगनयनी, किरचें, पिकचर ऑफ डोरियन ग्रे, रोम की नगरवधू, साकेत आदि रचनाओं का रेडियो नाट्य रूपांतर किया। अब इस आधार पर तुम कह सकते हो कि नाटक के जीवाणु मेरे लेखकी रक्त में हैं।

> जबसे हमारे प्रवासी भारतीय भाई समृद्ध हुए हैं तथा इस कारण उनका साहित्य भी समृद्ध हुआ है, तबसे हमने विदेशी विद्धानों की ओर ताकना काफी कम कर दिया है।

आपको अनेक पुरस्कार/सम्मान मिल चुके हैं। कुछ पुरस्कार समितियों के निर्णय में भी आपका योगदान रहता है। ऐसे में क्या सिफारिशें आती हैं? निर्णय लेते समय आप उनको ध्यान में रखते हैं क्या? वर्तमान स्थिति के बारे में आपको क्या कहना है?

साहित्यिक पुरस्कार या सम्मान का सवाल अनेक विसंगतियों से युक्त है। जैसा कि मैंने कमला गोइंका सम्मान ग्रहण करते हुए कहा था कि यह एक प्रकार का लाक्षागृह है जिसमें से किसी लेखक को कोई और कृष्ण नहीं निकाल सकता है, लेखक को अपना कृष्ण स्वयं बनना पड़ता है। सम्मान या पुरस्कार आजकल सम्मान की कम जुगाड़ की वस्तु अधिक बन गए हैं। इनमें नीति कम रणनीति अधिक चलती है। इस विषय पर मैंने एक व्यंग्य भी लिखा है, 'पुरस्कारम् देहि'। उसमें मैंने पुरस्कारों की व्याख्या इस प्रकार की है-सम्मान तीन प्रकार के होते हैं, तयशुदा सम्मान, व्ययशुदा, वाणिज्यशुदा

प्रेम जनमेजय विशेषांक

सम्मान। समिति में जब-जब आपका तयशुदा आदमी तय करने की स्थिति में होगा तो वह तय आदमियों के लिये ही पुरस्कार तय करेगा। व्ययशुदा में सम्मान-समिति के सम्मान में व्यय करना होता है। ऐसे में अक्सर व्यय राशि सम्मान राशि से अधिक ही होती है। वाणिज्यशुदा सम्मान में जब आप समिति में होते हैं तो सम्मान/पुरस्कार देकर गौरवान्वित हैं और जब स्वयं लेना हो तो समिति से बाहर होकर सम्मान/पुरस्कार ग्रहण कर गौरवान्वित होते हैं। इस प्रकार के सम्मान में आप अपनी संस्था से सम्मान दिलावाते हैं और दूसरे की संस्था से सम्मान ग्रहण करते हैं। यह लिफ़ाफ़ेबाज जैसे कवि के नीति वाक्य-सा है- तू मुझे बुला, मैं तुझे बुलाऊँ। लिफ़ाफ़ा तूं कमा, लिफ़ाफ़ा मैं कमाऊँ।'पुरस्कार या सम्मान वही शुद्ध है जिसकी विश्वसनीयता है।

लेखन में आपकी पत्नी का क्या सक्रिय सहयोग रहता है?

बहुत सक्रिय सहयोग रहता है। लिखने और न लिखने में पत्नियों का अमूल्य योगदान है। पत्नी का सहयोग दोनों तरह से मिलता है लेखक को। वह सहयोग न दे तब भी लेखक असहयोग आंदोलन की प्रक्रिया में लाभान्वित होता है और उसे बाहर प्रेरणाएं मिल जाती हैं। मिल जाए तो भी वह उसे प्राप्त करता है और अपने को कामयाब सिद्ध करने की मुद्रा में गाता है कि हर कामयाब व्यक्ति के पीछे एक औरत होती है। खैर मुझे संतोष है कि मुझे आशा सहयोगिनी के रूप में मिली। उसका हर पल पर सहयोग मिलता है। मुझे साहित्यिक मित्रों को घर पर बुलाना, छोटी-छोटी मिलन गोष्ठी करना अच्छा लगता है। मुझे अच्छा लगता है और आशा मेरे उस अच्छे का सम्मान करती है, पूरा सहयोग देती है।

कुछ लेखक भारत में ही प्रतिष्ठा हासिल कर चुके थे। उस समय वे भारतीय लेखक कहलाते थे। विदेशों में जाकर बसते ही वे प्रवासी कहे जाने लगे। ऐसा क्यों?

हिन्दी साहित्य में आलोचकों ने अपनी सुविधा और अपनी विशिष्ट 'खोज' स्थापित करने के लिए अनेक खाने बना दिए हैं। किसी खाने में नारी विमर्श फिट है, किसी में दलित साहित्य और किसी में प्रवासी साहित्य। आपने सही कहा है कि भारत में रहने वाला लेखक विदेश में जाते ही प्रवासी रचनाकार कैसे हो जाता है। विसंगति तो यह है कि जो रचनाएँ उसने भारत में रची होती हैं उन पर भी प्रवासी साहित्य का बिल्ला लग जाता है। रचनाकार के द्वारा रचित साहित्य तो वही है, विदेश जाते ही क्या उसका धर्म परिवर्तन हो जाता है? जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि मेरे लिए बेहतर रचना बेहतर है। अब वो प्रवासी ने लिखी हो या फिर अप्रवासी ने। साहित्य दूर की वस्तु है, बरसों बाद हम कबीर की रचनात्मकता की ही प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग हर जगह आरक्षण की चाह में दिखाई देते हैं, ऐसे ही कुछ रचनाकार हैं जो अच्छा साहित्य तो न लिख सके पर अच्छा साहित्यकार कहलवाये जाने के लिए आरक्षण की मांग करते हैं। इस विषय पर मैंनें एक व्यंग्य लिखा था, 'प्रवासी से प्रेम' जिसमें मैंने एक स्थान पर लिखा- एक समय था जब विदेशी विद्वानों के मुँह से हिन्दी सुनकर हम भक्ति भाव से भर जाते थे। विदेशी विद्वान क्या बोल रहे हैं और क्यों बोल रहे हैं, इस ओर हिन्दी के भक्तों का ध्यान नहीं जाता था, बस उनके मुखारबिंद से हिन्दी सुनकर ही मन गुदगदाए जाता था। जैसे माँ अपने बच्चे का तुतलाना सुनकर ही मरी जाती है वैसे ही गोरी हिन्दी के उस युग में हिन्दी की अनेक माँएँ न्योछावर हो गईं। उन माँओं का बलिदान भी व्यर्थ नहीं गया, सात समुंदर पार तक हिन्दी की सेवा का सुनहरा अवसर मिला। गोरी हिन्दी को देखकर लगता था कि हमारी भाषा कितनी समृद्ध है। ये दीगर बात है कि इस प्रक्रिया में गोरी हिन्दी के भक्त तो समृद्ध हो गए पर भाषा विपन्न ही रही। इस विपन्न भाषा का उत्थान करने वाले कहाँ के कहाँ पहुंच गए और भाषा वहीं की वहीं कदमताल करती कहाँ की कहाँ रह गई।

आज समय बदल रहा है। अनेक मामलों में हम आत्मनिर्भर हो गए हैं। जबसे हमारे प्रवासी भारतीय भाई समृद्ध हुए हैं तथा इस कारण उनका साहित्य भी समृद्ध हुआ है, तबसे हमने विदेशी विद्वानों की ओर ताकना काफी कम कर दिया है। प्रवासी साहित्यकारों के आने से हिन्दी भाषा और साहित्य में वसंत छा गया है। विदेश भ्रमण की कोयल कूकने लगी है तथा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों तथा सम्मेलनों के भंवरे गुनगुनाने लगे हैं। हिन्दी की गूंज पूरे विश्व में सुनाई देने लगी है। यह दीगर बात है कि उस गूंज की प्रतिध्वनि भारत में अंग्रेज़ी के रूप में सुनाई देती है।

अपने सामने प्रवासी साहित्यकार को पाकर मैंने वंदना आरम्भ की- हे चतुर्भुजी प्रवासी साहित्यकार, तुझे बार-बार प्रणाम है! एक बार प्रणाम करने से किसी के सर में कितनी भी जूं हो वह कान के पास तक नहीं रेंगती है। हे चतुरंगी तेरे एक हाथ में सेवार्थ डॉलर/पाउंड है, दूसरे हाथ में विदेश बुलाने का लुभावना मृगतृष्णामय निमंत्रण है, तीसरे में प्रकाशकों के लिए पांडुलिपियाँ तथा चौथा हाथ यह बताने के लिये खाली है कि हे मूर्ख तू मुझसे क्या ले जायेगा! तेरे इस चतुर्भुज रूप का ध्यान कर ही तेरे भक्त तेरी पूजा अर्चना के लिए नित नए- नए स्वांग रचते हैं। तेरी एक मनमोहक मुस्कान पाने को हिन्दी साहित्य के देवता तरसते हैं और जब तू वो मुस्कान बिखेर देता है तो तेरे लेखन पर फूलों की वर्षा करते हैं। तूं कुछ भी लिख दे प्रकाशक के लिए वह अमूल्य है क्योंकि उसका मूल्य उसे डॉलरों और पाउंड में मिलता है। तू इतना त्यागमय है कि प्रकाशकों से रॉयल्टी तक नहीं लेता है अपितु हिन्दी साहित्य की दशा सुधारने के लिए तू प्रकाशकों को रॉयल्टी तक देने की क्षमता रखता है?

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

व्यंग्य को एक गंभीर विधा मानकर हास्य को उसकी बैसाखी बनाने का पक्षधर नहीं हूं। मेरे विचार से व्यंग्य आलोचन पक्ष पर गंभीर चिंतन नहीं किया गया है, आवश्यकता है व्यंग्य के सही स्वरूप-निर्धारण की। व्यंग्य की प्रवृत्ति और चरित्र का सूक्ष्मता एवं गंभीरता से अध्ययन किया जाए तथा उस पर चलताऊ सतही फिकरेबाजी से बचा जाए।

लेखन आपकी पहचान है या ज़रूरत?

लेखन 'आत्मअभिव्यक्ति' की मेरी विवशता है। लेखक भौतिक दृष्टि से बहुत ही कमज़ोर इंसान होता है। बहुत कम लेखक होंगे जो व्यवस्था का विरोध करते हों और व्यवस्था उन पर अत्याचार करे तो वे अपना विरोध अपनी कलम की तरह ही तीव्र रख सकें। दांत किटकिटाते हुए, आँखें लाल किए, दुश्मन के दांत खट्टे करने वाले रचनाकार के, हो सकता है उसी ताकतवर दुश्मन को सामने देख समस्त अंग कांपने लगें। पर उसकी कलम में विरोध का स्वर अनेक सशक्त लोगों को विरोध का संस्कार दे सकता है, लड़ने को प्रेरित कर सकता है। लेखन मेरी दिनचर्या का हिस्सा हो गया है। जैसे बिन खाए मन भटका-भटका रहता है, बिन सोए तबियत गड़बड़ा जाती है, बिन नहाए शरीर बेचैन हो जाता है और बिना पानी के सब सून लगने लगता है वैसे ही बिना लिखे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। स्वस्थ एवं लम्बे जीवन के लिए जैसे आपकी दैनिक आवश्यकताएँ आवश्यक हैं वैसे ही मेरे लिए लेखन भी आवश्यक है। बिन सोए मेरा काम चल सकता है पर यदि रचना दिमाग में अपना खाका बना रही है तो उसे लिखे बिना नींद नहीं आएगी। आज का समय विसंगतियों से भरा हुआ है और चकाचौंध में सामाजिक सरोकार तथा मानवीय मूल्य धुंधलाते जा रहे हैं। अस्मिता पर लुके-छिपे हमले हो रहे हैं। ये सब ईमानदार मस्तिष्क पर निरंतर अपने प्रभाव छोड़ते रहते हैं। आपका अवचेतन कभी भी नहीं सोता है, ये दीगर बात है कि कुछ महानुभाव उसके जागरण को महत्व ही नहीं देते हैं। पर लेखक-कर्म अपनाते ही आप अपने अवचेतन की सक्रियता को उपेक्षित नहीं कर सकते। लेखन-कर्म को ईमानदारी से अपनाते ही आप अति-संवेदनशीलता के रोगी' हो जाते हैं। वैसे इसे इस प्रकार कहना अधिक उचित होगा कि अधिक संवेदनशील होने के कारण आपको लेखन का रोग लगता है। जिस बात को लोग हवा में उड़ा देते हैं आप उसे हवा में उछल-उछल कर पकड़ते हैं। आम आदमी अपने चैन का मार्ग ढूंढ़ता है और ये लेखक नामक 'अव्यावहारिक' जीव स्वयं तो बेचैन होता है, दूसरों को भी करता है। मैं भी ऐसा ही 'अव्यावहारिक' जीव हूं। पत्नी अनेक बार कांतासम्मित उपदेश दे चुकी है कि संसार तो ऐसे ही चलेगा, तुम क्यों अपने जान हलकान करते हो। पर यहां आलम ये है कि समाज में घटित किसी विसंगति को देख-पढ़ सुनकर 'नींद क्यों रात भर आती नहीं' के सवाल पत्नी को घेरने लगते हैं। कोई विचार जब कौंधता है तो जब तक वो आकार नहीं ले लेता मन बेचैन रहता है और उसकी बेचैनी देख पत्नी बेचैन रहती है।

व्यंग्य-लेखन पर उसकी दशा पर क्या कहेंगे?

व्यंग्य की क्या कहें, पूरे हिन्दी साहित्य की दिशा ही सही नहीं है। मूल्यांकन का आधार कृति

प्रेम जनमेजय
विशेषांक

कम कृतिकार अधिक है। एक सांप्रदायिकता व्याप्त हो गई है आलोचना के क्षेत्र में। अपने-अपने गढ़ और मठ बन गए हैं। एक समय था हिन्दी साहित्य की राजधानी इलाहबाद हुआ करता था। जबसे संतों को सीकरी में इंटरेस्ट आने लगा और उन्हें वहां से पर्याप्त इंटरेस्ट मिलने लगा सारी मक्खियां इसी गुड़ के इर्द-गिर्द मंडराने लगीं। बहुत पहले मैंने 'व्यंग्य यात्रा' का एक अंक निकाला था- 'साहित्यकार की नैतिकता' पर केंद्रित। इस अंक के संपादकीय में मैंने लिखा था- आधुनिक संत कहीं कीचड़ में कमल की तरह हैं, कहीं इंद्रधनुष में सफेद खद्दर हैं और कहीं लाली मेरे लाल की तरह हर दिखने वाले स्थान में लाल हैं और ये दीगर बात है कि खून सफेद है। अनेक कलाओं में पारंगत ये संत जानते हैं कि काजर कोठरी में रहते हुए भी श्वेत रहने का कैसे अभिनय किया जा सकता है। ये जानते हैं कि श्वेत बगुला होते हुए भी कैसे हंसध्वनि की जा सकती है।'तुम तो जानते हो कि भाईगिरी क्या होती है। साहित्य में भी भाईगिरी चल निकली है। किसी की सुपारी लेना या किसी को मुख्यधारा का प्रोटेक्शन देने का धन्धा भी चल रहा है। दिल्ली में मेरे एक मित्र हैं जो रंगमंच से जुड़े हैं और उन्होंने बताया कि हिन्दी साहित्य में अकादमिक कॉल गर्ल्स का रैकेट चलता है। सार्थक व्यंग्य का राजमार्ग परसाई जोशी, शुक्ल और त्यागी ने स्वतंत्र मार्ग, स्वतंत्र भारत में तैयार किया और जिसमें नागार्जुन, भारती, नामवर सिंह, कमलेश्वर, महीप सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अज्ञेय आदि ने सहयोग दिया तथा जिसे शंकर पुणतांबेकर, लतीफ घोंघी, जो रास्ता परसाई और जोशी ने तैयार किया था, उस रास्ते पर कई लोग जा रहे हैं और पढ़े जा रहे हें। व्यंग्य पहले से बहुत ज्यादा पढ़ा जा रहा है। शिल्प की दृष्टि से इसका विकास हुआ है पर उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

लेखन में भ्रमण-यात्राएं कहीं बाधा तो नहीं करतीं?

भ्रमण मेरी रुचि है। साहित्यिक गोष्ठी में जाता हूं। आने-जाने का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है।

आपका लक्ष्य क्या है?

एक अच्छा व्यक्ति बने रहना और दूसरों को प्रेरित करना। साहित्य का बहुत शुक्रगुज़ार हूं। इसने अनेक संबंध दिए।

क्या आपने अपने लेखन की शुरुआत व्यंग्य से ही की थी? व्यंग्य में लिखना साधारण लिखने से किस रूप में अलग है? व्यंग्य के तहत कैसी रचनात्मक अनुभूति होती है?

मैंने अपने लेखन की शुरुआत व्यंग्य से ही की, ऐसा कहना ही उचित होगा। वैसे तो प्रत्येक रचनाकार आरंभिक अवस्था में कवि ही होता है। प्रेमप्रकाश निर्मल के नाम से आरंभ में मेरी कुछ कविताएं प्रकाशित हुईं। शताब्दी, खिलते फूल, कहानीकार में कुछ कहानियां छपीं। प्रेम जनमेजय के नाम से मेरे व्यंग्य पहले 'माधुरी' में और फिर 'धर्मयुग' में प्रकाशित होने आरंभ हुए। किसी विधा में लिखना किसी अन्य विधा की अपेक्षा भिन्न नहीं हो सकता। मेरे विचार से विषय की मांग और रचनाकार का व्यक्तित्व विधा को तय करते हैं। रचना की सृजन प्रक्रिया एक है, उसकी सृजनात्मक पीड़ा जो सुख में परिणत होती है, एक ही है। हां, व्यंग्य-लेखन के लिए एक भिन्न दृष्टिकोण की आवश्यकता है। रचनाकार समाज में व्याप्त विसंगतियों पर ही अपनी नज़र रखता है। उसका लक्ष्य प्रहार होता है। व्यंग्यकार समाज में व्याप्त विसंगतियों को देखकर क्षुब्ध होता है तथा अपने आक्रोश को पाठक तक संप्रेषित कर उसे प्रहार के लिए उत्तेजित करता है।

अक्सर लोग मानते हैं कि साहित्य की दूसरी विधाओं के साथ व्यंग्य बहुचर्चित नहीं होता, क्यों इसमें लिखने वालों की कमी है या लिखना नहीं बन पाता?

मैं तुम्हारी इस बात से सहमत नहीं हूं। स्वतंत्रता के पश्चात व्यंग्य अत्यधिक लोकप्रिय एवं पठनीय विधा है। विधा की बढ़ती लोकप्रियता ने उसे लुभावना बना दिया है, उसमें प्रदूषण के खतरे बढ़ गये हैं। प्रत्येक दुर्घटना को व्यंग्य के चश्मे से देखने की प्रवृत्ति बन गयी है। आज व्यंग्य लिखने वालों की कमी नहीं है। हां अच्छा और सार्थक व्यंग्य लिखने वालों की कमी अवश्य दिखाई दे रही है। विषयों में नवीनता नहीं है, अधिकांश व्यंग्यकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की नकल कर रहे हैं। व्यंग्य लिखना बहुत दुष्कर कार्य है। इसमें नितांत सावधानी की आवश्यकता है। व्यंग्य की अपनी अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। केवल सतह पर बैठकर कुछ व्यंग्यात्मक फिकरे कस देने से स्तरीय व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता है, उसके लिए सही सोच दिशायुक्त चिंतन की आवश्यकता है।

एक व्यंग्यकार के रूप में आपकी अपनी निजी मान्यताएं क्या हैं?

अब तक मैंने जो कहा, उसे मेरे विचार ही मान सकते हैं। मैं व्यंग्य को एक गंभीर विधा मानकर हास्य को उसकी बैसाखी बनाने का पक्षधर नहीं हूं। मेरे विचार से व्यंग्य आलोचन पक्ष पर गंभीर चिंतन नहीं किया गया है, आवश्यकता है व्यंग्य के सही स्वरूप-निर्धारण की। व्यंग्य की प्रवृत्ति और चरित्र का सूक्ष्मता एवं गंभीरता से अध्ययन किया जाए तथा उस पर चलताऊ सतही फिकरेबाजी से बचा जाए।

परसाई तथा शरद जोशी ने अपने व्यंग्य स्तंभों के माध्यम से व्यंग्य को लोकप्रियता दी, उससे क्या आपको नहीं लगता है कि खतरे बड़े हैं? क्या व्यंग्य अखबारी कॉलमों में सिमटकर रह गया है?

व्यंग्य की बढ़ती लोकप्रियता ने उसे बहुत हानि पहुंचाई है, विशेषकर अखबारों में प्रकाशित होने वाले स्तंभों ने नई पीढ़ी को बहुत दिग्भ्रमित किया है। आज सात-आठ सौ शब्दों की सीमा में लिखी जाने वाली अखबारी टिप्पणियों को ही व्यंग्य रचना मानने का आग्रह किया जाता है। क्षेत्रीय अखबारों

प्रेम जनमेजय विशेषांक

में स्तंभ लिखने वाले नए रचनाकार, अपनी कमीज़ का कॉलर उठाए, व्यंग्यकार का तमगा लगाए घूमते हैं तथा आग्रह करते हैं कि उनकी अखबारी टिप्पणियों के कारण उन्हें व्यंग्यकारों की जमात में शामिल कर लिया जाए। पनपती हुई शार्टकट संस्कृति के कारण जैसे-तैसे व्यंग्यकार को मोहर लगवाने की एक बहुत बड़ी लालसा पलती रहती है। यहां लेखन में श्रम के स्थान पर उसके छपने पर अधिक श्रम किया जाता है और इसके बाद पुरस्कारों के जुगाड़ पर और अधिक श्रम किया जाता है। व्यंग्य जहां एक ओर लोकप्रिय हुआ है वहीं उसके खतरे भी बढ़े हैं। अखबारों के इन स्तंभों के कारण विषय भी सीमित हो गए हैं। ले-देकर सामयिक राजनीति ही व्यंग्य का लक्ष्य रह गयी है। सामयिक विषयों पर आधारित होने के कारण इन रचनाओं का प्रभाव भी क्षणिक होता है। ऐसी रचनाएं लगभग उसी दिन के अखबार के साथ मर जाती हैं। अखबारी कॉलम में छपने वाली अधिकांश रचनाएं व्यंग्यात्मक टिप्पणियां होती हैं। व्यंग्य मूलत: एक सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा है। इसके प्रयोग में बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है। इसका लक्ष्य मात्र विसंगतियों का उद्घाटन करना ही नहीं है, अपितु उस पर प्रहार करना है। यहां सवाल उठता है कि इस प्रहार की प्रकृति क्या हो व्यंग्य अगर हथियार है तो इसके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता भी है। तलवार को लक्ष्यहीन हाथ में पकड़कर घुमाने से किसी का भी गला काटकर अराजक स्थिति पैदा कर सकता है तथा स्वयं की हत्या का कारण भी बन सकता है। आज हिन्दी व्यंग्य में इस तरह का अराजक माहौल पनप रहा है। इससे व्यंग्य अपने लक्ष्य से भटक रहा है। जिस व्यंग्य को भौतिक तथा सामाजिक यथार्थ की गहराई से जुड़कर, पाठक को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करना चाहिए वही सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सतह पर ही घूम रहा है।

प्रेम जनमेजय नाम कब पड़ा? आपकी पहली रचना कब छपी और कब लिखी गई?

नाम का किस्सा ऐसा रहा। रचनाओं के साथ उपनाम लगाकर बदलते रहे। ग्यारहवीं कक्षा में कहानी लिखी जो गाजियाबाद से प्रकाशित खिलते फूल नामक पत्रिका छपी थी। कल, आज और कल शीर्षक से और मेरा उपनाम था प्रेम प्रकाश 'शैल'। दिल्ली के मोतीलाल नेहरू कॉलेज में मैंने अपनी पढ़ाई की। वहाँ डॉ. नरेन्द्र कोहली से मुलाकात हुई। साहित्य-लेखन की ओर प्रेरित करने में नरेन्द्र कोहली की विशेष भूमिका है और उनका मैं आज भी सम्मान करता हूं। वहीं डॉ. महेन्द्र कुमार थे। उनसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। मैंने गणित ऑनर्स लिया था। उन्होंने मेरी कहानी देखकर कहा- तुम हिन्दी ऑनर्स क्यों नहीं लेते? मैंने कहा- मैंने तो हिन्दी आठवीं तक ही पढ़ी है। उन्होंने कहा- मैंने बी.एस.-सी. के बाद एम.ए. हिन्दी किया है। मुझे उनसे प्रेरणा मिली और उसी समय मैंने प्रण किया कि मुझे गणित ऑनर्स नहीं पढ़ना। हिन्दी ऑनर्स पढ़ना है। विशेष रूप से उस समय डॉ. नरेन्द्र कोहली से काफी सहयोग मिला और लेखन चल पड़ा। उस समय 'माधुरी' पत्रिका में संपादक, अरविन्द्र कुमार ने बहुत छापा। जनमेजय नाम रखने से पहले प्रेमप्रकाश निर्मल, प्रेम प्रकाश शैल रखा। मन में बहुत कुछ चल रहा था। तब मैंने परिक्षित कुंदरा भी रखने की सोची। प्रसाद मेरे प्रिय लेखक थे। उनका एक नाटक था जनमेजय का यज्ञ। नाम मुझे पसंद आया और मैंने प्रेम जनमेजय नाम रख लिया।

आप अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं को कैसे लेते हैं? उनकी चिट्ठियों का जवाब देते हैं।

अपने पाठकों से संवाद लेखक की प्राथमिकता होनी चाहिए। मुझे अपने पाठक अच्छे लगते हैं। सबसे सही प्रतिक्रिया देने वाला आपका पाठक होता है। जिसका साहित्य और उसकी धाराओं से कुछ लेना-देना नहीं होता, वह आपकी रचना पढ़ेगा और बता देगा कि इसमें क्या है। इसलिए मेरे बहुत सारे मित्र असाहित्यिक किस्म के हैं। जब भी लिखता हूं उनसे चर्चा जरूर करता हूं। पाठकों की प्रतिक्रियाएं मुझे अच्छी लगती हैं। उनसे मैं बराबर पत्र-व्यवहार किया करता हूं।

अगर प्रेम जनमेजय, प्रेम न होते तो क्या होते?

यह तो तुम्हारे जैसा कोई पंडित ही बता सकता है हाथ आदि देखकर। वो एक शेर है न कुछ ऐसा कि डुबेया मुझको होने ने... अभी मैं डूबने के मूड में नहीं हूं।

अपने लगभग चार वर्ष तक त्रिनिडाड में वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य के रूप में कार्य किया है। निश्चित ही आप जैसा सजग साहित्यकार वहां के व्यापक अनुभवों का खजाना लेकर आया होगा। संक्षेप में कैरेबियाई देशों में हिन्दी के स्वरूप के बारे में कुछ कहें।

ललित, संतों का कहना है कि पहला प्यार, पहला भ्रष्टाचार, पहली रचना, पहला पति-पत्नी, अर्थात जो भी पहला हो वह सदा याद रहता है। सन् 1999 के आरंभ में मेरे जीवन में बहुत कुछ पहला-पहला घट गया। यह पहला अवसर था कि मैंने हज़ारों किलोमीटर की हवाई यात्रा की और पहली बार त्रिनिडाड पहुंच गया। यह पहला अवसर था कि मैं स्वदेश, स्वजन, स्वपत्नी, स्वमित्रों आदि 'स्वों' से दूर एक लंबे अंतराल के लिए भीड़ में भी अकेला रहने को विवश हुआ। ऐसी 'पहली' उर्वर-भूमि उपस्थित हो तो त्रिनिडाड क्या किसी भी देश से पहली नज़र में प्यार होना स्वाभाविक ही है। प्रथम-प्रेम दृष्टि में ऐसी धुंध उत्पन्न करता है कि दूर दृष्टि धुंधला जाती है और सावन के अंधे-सा व्यक्ति सब कुछ हरा ही देखता है। त्रिनिदाद में हिन्दी मात्र एक भाषा ही नहीं है अपितु अपनी अस्मिता की पहचान है, अपनी जड़ों से जुड़ने की लालसा है। हिन्दी भाषा के प्रति अनन्य भूख है। ◆◆◆

आख़िरी पन्ना

प्रेम जनमेजय पर केन्द्रित विशेषांक की परिकल्पना और घोषणा तक मेरा आत्मविश्वास और संकल्प दोनों दृढ़ थे। ज्यों ही विशेषांक की घोषणा हुई और कुछेक साहित्यकारों की तीव्र प्रतिक्रियाएँ आईं तो मैं और त्रिपाठी जी समझने की कोशिश करने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है। कुछ क्षणों के लिए विचलित हुई, हिन्दी साहित्य की राजनीति और गुटबंदियों ने हल्की–सी झलक दिखाई। पर मेरी सुदृढ़ इच्छाशक्ति और कार्य करते हुए अर्जुन की तरह मछली की आँख देखने की प्रवृत्ति ने मनोबल और मज़बूत कर दिया। सब कुछ सामान्य हो गया।

पिछले 13 वर्षों में 'हिन्दी चेतना' ने हिन्दी साहित्य के कोष को कई विशेषांकों से समृद्ध किया है जिनमें उल्लेखनीय हैं डॉ. हरिवंश राय बच्चन, यशपाल, महाकवि प्रो. हरिशंकर आदेश, पंडित चन्द्रशेखर पाण्डेय, प्रेमचंद, डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. कामिल बुल्के, मदन मोहन मालवीय आदि। इनका भरपूर स्वागत हुआ और पाठकों तथा आलोचकों की सराहना मिली। इन नामों से ही पता चलता है कि 'हिन्दी चेतना' की टीम किसी वाद–विवाद, राजनीति या गुटबंदी, विचारधारा व विमर्श से परे हो कर स्वतंत्र सोच और विचार से कार्य करती है। प्रेम जनमेजय विशेषांक भी उसी का परिणाम है।

आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि गम्भीर साहित्यकारों की श्रृंखला में एक व्यंग्यकार पर विशेषांक क्यों? मित्रो! साहित्य में व्यंग्य एक गम्भीर विधा है। इसके माध्यम से व्यंग्य लेखक वे मुद्दे पाठकों तक सीधे पहुंचा सकते हैं जो कई लेखक कहानी और कविता से कह नही पाते। जिस दिन से पढ़ने के उपरांत गुढ़ने की समझ आई है, इस विधा की महत्ता को पहचानती हूँ और इस पृष्ठ यानि आख़िरी पन्ने तक पहुँचते–पहुँचते, इसमें छपे आलेखों से आप इसकी गंभीरता, स्वभाव और आवश्यकता से परिचित हो गए होंगे और साथ ही 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक, व्यंग्य को समर्पित प्रेम जनमेजय जी पर केन्द्रित विशेषांक के औचित्य से।

यह अंक आप को कैसा लगा? विनम्र निवेदन है कि आप अपनी राय अवश्य भेजें। आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा।

दीपों का पर्व आप सबके जीवन को प्रदीप्त करे।

मंगल कामनाओं के साथ

आपकी मित्र
सुधा ओम ढींगरा